राजकलश

राजकलश

[ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक

अमरबहादुरसिंह 'अमरेश'

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय

लखनऊ

मूल्य : ६ रु० ·५० न० पै०

प्रथम बार : सन् १९६० ई०

प्रकाशक : भारती - प्रकाशन, लखनऊ

मुद्रक : गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

महाप्राण 'निराला'जी के महान् चरित्र-नायक

कुल्लीभाट

को,

जिसने सर्व-प्रथम डलमऊ-दुर्ग का

परिचय हिंदी-जगत्

से

कराया

अपनी बात

औपन्यासिक इतिहास 'राना बेनीमाधव' के पश्चात् 'राजकलश' मेरा द्वितीय ऐतिहासिक उपन्यास है। इसे समाप्त कर अभी-अभी मेरी लेखनी ने विश्राम लिया है, फिर भी लगता है कि अंतस् में एक प्यास शेष है। उपसंहार के अंतिम शब्द अब भी मुझे झकझोर रहे हैं। वे कुछ पूछना चाहते हैं—भार शिवों के अंतिम उत्तराधिकारी उस छोटे-से शिशु 'राजकलश' को लेकर बूढ़ा रेवंत कहाँ गया? यह एक अजीब-सा प्रश्न है, जिसका उत्तर एक दंत-कथा के आधार पर यों है—

डलमऊ से थोड़ी दूर पर पखरौली (सुजीपुर)-नामक स्थान पर, जहाँ महाराज डालदेव का बलिदान हुआ था, वहीं, बलिदान-स्थल पर ही, दो प्रस्तर-मूर्तियाँ किसी शिल्पी द्वारा छेनी से काट-काटकर निर्मित की गईं। ये दोनो मूर्तियाँ राजा डाल और बाल की प्रस्तर-प्रतिमाएँ हैं। इन मूर्तियों से संपूर्ण जनपद भली भाँति परिचित है। किंतु इनके प्रतिष्ठित होने का समय कौन-सा था? इनका शिल्पी कौन था? ये शाह शर्की के शासन-काल में शीश-विहीन की गईं अथवा बाद में? इस विषय में इतिहास के पृष्ठ मौन हैं। कुछ दंत-कथाएँ हैं, जिनकी प्रमाणिकता पर यदि संदेह न किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि डलमऊ पर शाह शर्की का शासन हो जाने के पश्चात् यह असंभव था कि विनाश की चरम सीमा पर पहुँचने के बाद भार शिवों का राज्य वहाँ पुनः प्रतिस्थापित हो पाता। स्पष्ट है कि अपनी आन निबाहने के लिये उनके किसी वंशज ने इन प्रस्तर-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की होगी। यह एक खुली चुनौती थी, और उस शिल्पी का कठोर कर्तव्य था, जिसे मैंने

राजकलश की संज्ञा दी है। फिर क्या था, प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा का समाचार चारो ओर विद्युद्वेग से फैल गया। किसी आततायी से यह सब न देखा गया, और उसने इन प्रस्तर-प्रतिमाओं को शीश-विहीन कर उस चुनौती का उत्तर दे ही दिया। इन खंडित मूर्तियों को देखते ही नेत्र अपने आप छलछला उठते हैं, और ऐसा लगता है, मानो छ सौ वर्ष पुराना डलमऊ का इतिहास इन्हीं खंडित मूर्तियों में बोल रहा है।

डलमऊ की इस महान् ऐतिहासिक घटना के अतिरिक्त भी मुझे ऐसा लगता है, इस भू-भाग के अनेक भग्नावशेष पुकार-पुकारकर कुछ लिखने के लिये विवश कर रहे हैं। उजालकनगर (जायस), बहादुरनगर, गूढ़ा, बहाई, सातनपुरवा आदि स्थानों में ऐसे ऐतिहासिक टीले हैं, जिनके अंतराल में अनेक रत्न दबे पड़े हैं। केवल उन भग्नावशेषों को खोदनेवाले मज़बूत हाथ चाहिए।

इस उपन्यास में आए हुए अनेक पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं। जिनके नाम ऐतिहासिक नहीं हैं, वे जन-श्रुति एवं लोक-गाथाओं पर आधारित अथवा काल्पनिक हैं। 'बाबर सैयद' को 'तुग़लक सैयद' के नाम से भी स्मरण किया जाता है, अतः पुस्तक में उसके दोनो नामों को स्थान दिया गया है। इसी प्रकार राजा डालदेव को 'डाल' व 'डल' दोनो नामों से संबोधित किया गया है। क़िले का भेद लेने के लिये एक लड़की एवं एक लड़के का यहाँ आना और डलमऊ के क़िले में गुप्त रूप से रहना तथा शाह शर्की को संपूर्ण रहस्य बताना प्रचलित दंत-कथाओं पर आधारित है। कुछ दंत-कथाएँ ऐसी भी मिली हैं, जिनको उपन्यास के दृष्टि-कोण से मैंने मोड़ देकर लचीला बना लिया है। जैसे सलमा का, अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये, जाली पत्रों से ऊबकर राजा डल के पास स्पष्ट पत्र भेजना, और उन्हें सतर्क करना। यह बात उस समय की बताई जाती है, जब वह

युद्ध-स्थल में थे। मैंने इसके विपरीत सलमा से पत्र तो लिखवाया है, किंतु वह राजा डल तक पहुँच नहीं पाया। फिर भी सलमा के अंतर्द्वंद्व का जो मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है, उसका संबंध इसी लोक-कथा से है।

महाप्राण 'निराला'जी के 'कुल्ली भाट' में भी क़िले से संबंधित कुछ स्थल मिलते हैं। उनकी 'प्रभावती' की डलमऊ-क़िले की बारादरी में अवतारणा के पीछे इसी ऐतिहासिक घटना का संकेत छिपा हुआ है। यों उस घटना की पृष्ठ-भूमि इसी संकेत पर आधारित होते हुए भी भिन्न-सी प्रतीत होती है।

सर्वश्री रामेश्वरप्रसादजी एवं कन्हैयासिंहजी 'सरोज' से इस उपन्यास को संपन्न करने में बहुत बड़ा सहयोग मिला है, अतः मैं उनके प्रति आभारी हूँ। सन्मार्ग के भूतपूर्व संपादक श्रीविश्वनाथजी त्रिपाठी एवं श्रीविश्वंभरनाथजी मिश्र तथा राय अंबिकानाथसिंहजी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिनके परामर्श से मुझे यथेष्ट लाभ पहुँचा है। श्रीमती कमला राजपूत एवं श्रीमती शकुंतला श्रीवास्तव ने अपेक्षित लोक-गीत भेजकर बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है, अतः मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ।

आदरणीय वृंदावनलालजी वर्मा, पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदेवप्रसादजी गौड़, पं० कन्हैयालालजी मिश्र प्रभाकर, डॉ० रामविलासजी शर्मा एवं श्रीदलबहादुरसिंहजी, श्रीरमाशंकरजी त्रिपाठी का भी मैं ऋणी हूँ, जिनका सहज अपनत्व मेरे पथ का प्रकाश बन गया है। रायबरेली के अपने छोटे-से साहित्यिक परिवार के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं अपनी यह दूसरी ऐतिहासिक कृति 'राजकलश' अपने पाठकों के हाथों में इस विश्वास के साथ सौंप रहा हूँ कि वे मेरी त्रुटियों को क्षमा करते हुए इसे अपनाकर मेरे परिश्रम को सार्थक करेंगे।

वसंत-पंचमी २०१५
बछरावाँ, रायबरेली

'अमरेश'

पूर्वाभास

तीसरी शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग 'कुशन' एवं 'आंध्र'-राज्य-वंशों के विनाश के पश्चात् और गुप्त-साम्राज्य के उदय के पूर्व का समय भारतवर्ष के इतिहास में तमसा-पूर्ण युग कहा जाता है। महाराज समुद्रगुप्त के एक पीढ़ी पूर्व दक्षिणावर्त में वाकाटक-सम्राट् प्रवरसेन एक प्रतापी राजा थे। जिनके पोते रुद्रसेन से उसका पद समुद्रगुप्त ने प्राप्त किया था। उन दिनों बनारस कुशन-साम्राज्य के एक सिरे पर पड़ता था। इधर बघेलखंड एवं विंध्याचल तक भार शिवों का शासन था। वे बनारस में गंगा-तट पर अब तक दस अश्वमेध-यज्ञ कर चुके थे। यह स्थान आज भी दशाश्वमेध-घाट के नाम से प्रसिद्ध है। वाकाटक-सम्राट् प्रवरसेन ने अपने लड़के गौतमी-पुत्र का विवाह भार शिव-वंश के महाराज भवनाग की कन्या के साथ करके एक नई परंपरा का सूत्रपात किया था, जिसका उल्लेख तत्कालीन अनेक राजकीय लेखों में मिलता है। दोनो राज्यों के एक दूसरे के पड़ोसी होने के भी प्रमाण मिले हैं। भार शिवों के राज्य का प्रारंभ लगभग १५० ई० से माना जाता है।

भार शिव कौन थे? उनका यह नाम क्यों पड़ा? इसका बहुत ही रोचक इतिहास मिलता है, जिसके प्रमाण-स्वरूप फ्लीट ने अपनी पुस्तक Gupta Inscriptions के पृष्ठ २४५-४६ पर वाकाटक-इतिहास-लेखकों के एक ताम्र-पत्र का उदाहरण देते हुए लिखा है—"उन भार शिवों ने—जिनके राजवंश का आरंभ इस प्रकार हुआ था—'शिव-लिंग' को अपने कंधे पर वहन कर

शिव को भली भाँति तुष्ट किया था। उनका राज्याभिषेक भगीरथी के पवित्र जल से हुआ था। उन्होंने अपने पराक्रम से राज्य प्राप्त कर दस अश्वमेध-यज्ञ करके अवभृथ-स्नान किया था।"

उक्त ताम्र-लेख से स्पष्ट है कि शिव-लिंग का भार अपने कंधे पर उठाने से इस वंश का नाम भार+शिव='भार शिव' पड़ा। इससे इनके शैव होने के साथ-साथ धर्म-निष्ठ होने पर भी पूर्ण प्रकाश पड़ता है। कुछ इतिहासकार इन्हें 'नाग' भी मानते, तथा "भार शिवोमेके महाराज श्रीभवनागः"* का प्रमाण देते हैं। इनके नाम के अंत में 'नाग' शब्द लगना भी इसका प्रमाण है। इनके वंश में नागराज, रामचंद्र, शिशुनंदी, शिवनंदी एवं भवनंदी आदि प्रतापी राजा हुए हैं। धीरे-धीरे इनका राज्य मथुरा, एटा, क़न्नौज, फ़र्रुख़ाबाद, उन्नाव, प्रतापगढ़, इलाहाबाद एवं रायबरेली आदि थानों तक फैल गया।

कालांतर में इतिहास ने पल्टा खाया। गुप्त, मौर्य एवं हर्ष-साम्राज्य में ये 'भार शिव' यत्र-तत्र बिखर गए, तथा छोटे-छोटे दुर्ग बनाकर अपना राज्य करने लगे। इनका कोई एकछत्र शासन न रह गया, प्रत्युत अनेक राजा हो गए।

रायबरेली के भार शिव इन्हीं की वंश-परंपरा से संबंधित हैं, जो बैसवारा, गांडीव-प्रदेश, प्रतापगढ़, सुलतानपुर आदि ज़िलों में व्यापक रूप से फैले हुए थे। इनके दुर्ग स्थान-स्थान पर आज भी विद्यमान हैं। इलाहाबाद-ज़िले में कड़ेचंद का क़िला ऐतिहासिक दुर्ग है। यह कड़ेचंद भार शिव ही थे। कड़ेचंद एवं मानिकचंद ने क्रमशः कड़ा और मानिकपुर-नामक स्थानों की नींव डाली थी।

---

* अंधकार-युगीन भारत के आधार पर।

उजालकनगर (जायस) में महाराज उजालक का दुर्ग था। डलमऊ में महाराज डालदेव एवं बरेली (रायबरेली) में महाराज बालदेव के क़िलों के भग्नावशेष इनकी गौरवशाली परंपरा का स्मरण दिला रहे हैं।

इस उपन्यास के चरित्र-नायक महाराज 'डालदेव' का संबंध कुछ लोग क़न्नौज के राजा प्रतापचंद से बताते हैं, जो कि ९३० ई० में हुए थे। इसका उल्लेख रायबरेली-ग़ज़ेटियर में भी मिलता है, किंतु ऐसी बात नहीं है। ब्रह्मगौर राजा डालदेव एवं भार शिवों के राजा डालदेव, दोनो के नामों में समता होते हुए भी अंतर है। इस ऐतिहासिक तथ्य की यहाँ व्यापकता भी नहीं है। इस क्षेत्र में तो 'डाल-बाल' की जो लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, वे बिलकुल भिन्न हैं, और क़न्नौज के राजवंश से उनका कोई संबंध नहीं पाया जाता।

डलमऊ के राजा डल भार शिवों के अंतिम राजा थे। उनके वंशज आज भी यहाँ पाए जाते हैं, किंतु इनका अधःपतन हो चुका है। ये चार भाई थे। डाल, बाल, ककोर एवं रलमान। चारो भाइयों के चार दुर्ग भी थे। चारो ने अपने-अपने नाम से एक-एक स्थान आबाद किया था। यद्यपि डलमऊ के विषय में स्पष्ट हो चुका है कि यह राजा डाल का बसाया हुआ नहीं है, प्रत्युत इसे 'डालन'-नामक ऋषि ने आबाद किया था। ह्वेनसाँग भी इलाहाबाद से डौंडियाखेरा जाते हुए डलमऊ में रुका था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि डलमऊ का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। हाँ, बरेली (रायबरेली), ककोरन एवं पूरे रलमान को महाराज डल के अन्य तीन भाइयों ने बसाया था। इनमें महाराज डल सबसे बड़े एवं बाल सबसे छोटे थे। उस समय संपूर्ण बैसवारे में भरों का एकछत्र शासन था।

यवनों का आगमन इस देश में महाराज जयचंद के युग से ही

हो गया था। अंतर्वेद में वे काफ़ी उत्पात भी मचा चुके थे। महाराज जयचंद की सेना में 'केशराज'-नामक एक सामंत थे, जिनके पुत्र अभयसिंह एवं निर्भयसिंह ने अरगल की रानी की रक्षा यवनों से शिवराजपुर-घाट (फ़तेहपुर-ज़िला) में की थी। जिसके पुरस्कार-स्वरूप अरगल के राजा ने अपनी कन्या का विवाह अभयचंद से कर दिया, और दहेज में गंगा-पार बैसवारे का वह भाग दिया, जिसमें भार शिवों का आतंक था। अभयसिंह ने अभयपुर-नामक ग्राम बसाकर वहाँ शासन किया। बाद में उनके भी पैर उखड़ गए। भार शिवों के सम्मुख बैस राजपूतों की एक न चली। यह भाग स्वतंत्र हो गया। कई पीढ़ी बाद राजा सेढूराय ने भरों को पराजित किया। राजा सेढूराय की विजय में भर-सरदार रेवंत के विश्वासघात का भी उल्लेख मिलता है। राजा सेढूराय के पश्चात् भी डलमऊ के राजा डल का आतंक पूर्ववत् रहा।

राजा डल का बाबर सैयद की पुत्री सलमा का डोला माँगना एक इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। कहा जाता है, वह लड़की अत्यंत रूपवती थी। राजा डल ने आखेट के समय अपनी राज्य-सीमा के बाहर, गंगा-तट पर, कड़े के क़िले के पास, उस लड़की को अकस्मात् देख लिया था। वह उस पर मोहित हो गए थे। उन्होंने बाबर सैयद से लड़की का डोला माँगा, जिसका उल्लेख रायबरेली-ग़ज़ेटियर एवं डब्ल्यू० सी० बेनेट की रिपोर्ट में भी मिलता है। रायबरेली-ग़ज़ेटियर (पृष्ठ १६३) में लिखा है—

"...In the reign of Sultan Ibrahim Sharqi, who succeeded in 804 Hijri, Dal the Bhar chief, who lived in the fort of Dalmau, wished to obtain the hand of the daughter of Babar, a Saiyed. The Saiyed went to Sultan Ibrahim Sharqi and asked his ass is tance. The king

marched with a large army and having arrived on the day of the HoIi festival... . conquered the whole Bhar army . The tomb of the same 'Dal' is still standing about two miles from this town ."

इसी उद्धरण की पुष्टि डब्ल्यू० सी० वेनेट की रिपोर्ट में भी मिलती है—

"चौदहवीं शदी के आख़ीर में इस क़स्बा (डलमऊ) को भरों की क़ौम से, जो कि कुर्व-जवार में आबाद थी, कुछ ख़ौफ़ पैदा हुआ। इस क़ौम ने चार भाइयों को अपना हाकिम बनाकर परगनाज़ात बरेली और डलमऊ में अलग-अलग सल्तनत क़ायम कर ली थी। 'डल' और 'बाल' के क़िला डलमऊ और रायबरेली में थे। बयान किया जाता है, डल ने सैयद की लड़की के साथ कुछ ज़बरदस्ती करनी चाही। उस लड़की के बाप ने इब्राहीम शर्की से शिकायत की, जिस पर वह जौनपुर से इंतकाम लेने के लिये चढ़ आया। इस बादशाह से सिरादनपुर (सिरंदाजपुर) में बड़ी लड़ाई हुई। भरों ने डलमऊ में सख़्त मुक़ाबला किया। बाद में तमाम फ़ौज मारी गई।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि डलमऊ के राजा डालदेव के पतन का मूल कारण बाबर सैयद की लड़की सलमा थी। उसी लड़की के कारण इतने बड़े राज्य का विनाश हुआ। क़िला मटिया-मेट हुआ। भार शिवों का अस्तित्व सदा-सर्वदा के लिये विलीन हो गया। जिसकी ऐतिहासिक स्मृति को पुनर्जाग्रत् करने के लिये भर लोग आज भी होली नहीं मनाते। उनकी औरतें चूड़ी नहीं पहनतीं। पखरौली के निकट सुजीपुर में, जहाँ राजा डल का शीश काटा गया था, वहाँ, उन खंडित प्रस्तर-प्रतिमाओं पर दूध चढ़ाया जाता तथा सावन के महीने में मेला लगता है। डलमऊ का क़िला अब भी

लगभग सौ फ़ीट ऊंचा, गंगा के किनारे पर ध्वस्त पड़ा है। क़िले में स्थान-स्थान पर नाँदों, सुराहियों, कलशों एवं घड़ों के मोटे टुकड़े गड़े मिलते हैं, जो उनकी शानदार होली की परंपरा का स्मरण दिलाते हुए उस दुखद घटना की याद जाग्रत् कर देते हैं, जो उनके विनाश का कारण बनी।

'राजकलश' उपन्यास का कथानक इसी महान् ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, जो डलमऊ के अंतिम राजा के अंतिम प्रेम एवं प्रेम की अंतिम होली का प्रतीक है।

डलमऊ-दुर्ग का ध्वंस राजद्वार

[१]
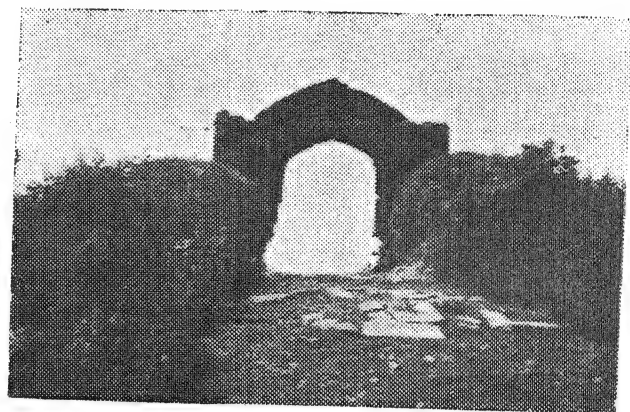
"देखो, चाँद निकल रहा है सलमा। आज की ईद मुबारक हो!"

"मेरी ईद तुम्हारी क़ब्र पर होगी।" सलमा ने अपने शब्दों को दुहराया।

राजा डल ने नौका पर पदार्पण करते हुए उत्तर दिया—"तुम्हारी ईद मेरी क़ब्र पर भले ही हो, किंतु मेरे लिये ईद का चाँद तुम्हीं रहोगी। ईद तो प्रतिवर्ष होगी, मगर ऐसा चाँद फिर देखने को न मिलेगा!"

सलमा ने कोई उत्तर न दिया। वह मौन, जड़वत् खड़ी रही। उसकी आँखों से अब भी चिनगारियाँ निकल रही थीं, मुख-मंडल तमतमा रहा था, और माथे पर पसीने की बूँदें छलक आई थीं।

*　　　　*　　　　*

चौदहवीं शताब्दी अपनी अंतिम साँसें ले रही थी!

इतिहास पल्टा खा रहा था!

और?

जौनपुर के शाह फ़ीरोज़ की मृत्यु के पश्चात् वहाँ का शासन भी छिन्न-भिन्न हो चुका था। सभी सूबेदार स्वतंत्र हो गए थे। चारो ओर एक विद्रोह-सा मचा हुआ था। भीषण उथल-पुथल के पश्चात् इब्राहीम शर्की जौनपुर के शाह हुए। उन्होंने एक बार पुनः राज्य को पुनर्गठित करने का प्रयास किया। 'बैस' राजपूतों एवं भार शिवों से उन्हें डटकर लोहा लेना पड़ा। कहीं विजय, कहीं पराजय, शाह थककर चूर हो गए थे। यही कारण था कि इस बार ईद का त्योहार वह जौनपुर से दूर—अपने ही राज्य के एक भाग

कड़े-मानिकपुर के क़िले में—मनाने आए थे। जौनपुर की गोमती नदी उन्हें शांति न दे सकी, इसलिये वह गंगा की उत्ताल तरंगों में शांति खोजने आए थे। कड़े का क़िला क्या था, मानो प्रकृति की मधुमयी हरीतिमा की गोद में श्वेत-वसन-धारी नादान शिशु लिपटा हो। दक्षिणी छोर पर गंगा की पावन लहरें उसे थपकियाँ दे रही थीं। शेष तीन ओर आम, महुआ, करील, रीयाँ एवं ढाक के सघन वृक्ष फैले हुए थे। क़िले के ऊपरी भाग पर शाह का झंडा लहरा रहा था, और जंगल में चारो ओर सैनिकों के शिविर पड़े थे।

शाह के साथ उनका विश्वास-पात्र सूबेदार बाबर सैयद भी सपरिवार क़िले के दक्षिणी भाग में डेरा डाले पड़ा था। उसके साथ उसकी पत्नी और इकलौती बेटी सलमा के अतिरिक्त सलीम-नामक एक नवयुवक भी था, जिसका विवाह, निकट भविष्य में, सलमा के साथ होनेवाला था।

सूबेदार बाबर सैयद क़िले के ऊपरी कक्ष में अकेले बैठे कुछ सोच रहे थे। पास ही एक तिपाई पर मदिरा की सुराही रक्खी थी, और उसी से मिला हुआ चाँदी का पात्र! उनकी मसनद से लगी फ़र्शी रक्खी थी, जिसकी चिलम की आग ठंडी हो चुकी थी, किंतु तंबाकू की सुबास संपूर्ण कक्ष को अब भी सुवासित कर रही थी। पास ही झरोखे से क़िले का वह भाग स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था, जहाँ राज्य-लिप्सा के वशीभूत होकर अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या की थी। बाबर सैयद सोचते-सोचते कुछ उद्विग्न हो उठे। उनके मन में अचानक ही यह भावना उठी कि वह इतिहास की पुनरावृत्ति करें, और शाह शर्की के साथ इस ऐतिहासिक दुर्ग में वही व्यवहार करें, जो अलाउद्दीन ने अपने चाचा के साथ किया था। किंतु वह ऐसा न कर सके। एक लंबी साँस छोड़कर उन्होंने पुकारा—

"सलमा !"

आवाज़ सुनकर नीचे से बेगम साहबा ने उत्तर दिया—"है नहीं।"

"क्या टहलने चली गई ?" सैयद साहब ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ" छोटा-सा उत्तर मिला।

सैयद साहब कुछ सोचते हुए बोले—"सलीम भी गया ?"

"नहीं।" बेगम साहबा ने उत्तर दिया—"वह शाह साहब के साथ शतरंज खेल रहा है।"

"तो क्या सलमा अकेली ही गई है ?"

"जी नहीं, हुसैन उसके साथ है।"

"अच्छा, ठीक है।" कहकर सैयद साहब उठ खड़े हुए। उन्होंने मदिरा का गिलास उठाकर दो-चार घूँट पिया, और फिर उसे यथा-स्थान रखकर मसनद के सहारे लेट गए।

संभवतः बेगम साहबा को यह ज्ञात न था कि आज उनकी इकलौती बेटी सलमा अकेली ही गंगा के तट पर टहलने गई है, क्योंकि सलीम और सलमा से आज दोपहर में ही खटपट हो गई थी। फल-स्वरूप वह शाह के साथ बैठकर शतरंज खेल रहा था, और वह अपने नियत समय पर टहलने चली गई। बेचारे हुसैन ने थोड़ी दूर तक तो उसका साथ दिया, किंतु सलमा ने उसे रास्ते से ही लौटा दिया। फिर भी हुसैन लौटा नहीं। वह वहीं गंगा के किनारे एक पीपल की जड़ पर बैठ गया। बंदूक डाल पर टाँग दी।

क़िले से पश्चिम की ओर, लगभग छ फ़र्लांग की दूरी पर, गंगा की धारा के मध्य में, उभरे हुए रेत के टीले पर, एक छोटा-सा तंबू गड़ा था। जिसका कुछ भाग जल में भीग रहा था, और शेष रेत की धवल, लहरियादार चादर पर लोट रहा था। तंबू के भीतर ही

एक छोटी-सी चौकी पड़ी थी, जिसके दो पाए जल में थे और दो रेत पर। पास के एक कक्ष में लंबा तख़्त पड़ा था। उस पर मदिरा की सुराही, गिलास एवं सलमा के श्रृंगार-प्रसाधन के उपादान रक्खे थे। वहीं एक चौकी पर एक विशाल दर्पण किसी का हसीन मुख देखने के लिये एक डोरी के सहारे खड़ा था। पास ही बेला के ताज़े फूलों का गजरा—जिसे सलमा के आने के पूर्व मालिन एक डलिया में सजाकर रख जाया करती थी—अपने ही सौरभ में डूब रहा था। आज एक पखवारे से, यहीं, इसी तंबू के कक्ष में, सलमा और सलीम का मदिरा की बेहोशी में प्रणय-व्यापार चलता था। दोनो किलोलें भरते, स्नान करते, रेत के कणों में लोटते और फिर एक दूसरे का हाथ पकड़े, झूमते-झामते रात बीतने पर क़िले की ओर चले जाते।

आज जब सलमा इस तंबू में प्रथम बार अकेली प्रविष्ट हुई, तो उसका मन भारी था। उसके अंदर पहुँचने पर तंबू का संरक्षक, एक वयोवृद्ध मुसलमान, अपनी आदत के अनुसार, उठकर कुछ दूरी पर चला गया। बरगद के पेड़ के नीचे, जो वहाँ से लगभग दो फ़र्लांग की दूरी पर था, लाठी टेकता हुआ जाकर बैठ गया। सलमा ने अंदर पहुँचकर अपना रेशमी काला बुर्क़ा लापरवाही से उतारकर चौकी पर पटक दिया। दुपट्टे को कमर में लपेट लिया, और अपने बालों की एक-एक लट बिखरा दी। बेले के फूलों के सौरभ से उसका मन पुलक उठा। वह आदमक़द आइने के सामने खड़ी होकर अपने बालों को सँवारने लगी। उलझे बाल सुलझ गए, किंतु सलमा ने उन्हें बाँधा नहीं, उन्मुक्त ही रहने दिया। अपने सुंदर केशों की काली छाया में अपना चाँद-सा मुख देखकर वह मुस्किरा उठी, और फिर फूलों का गजरा हाथ में लेकर, उसे नचाती हुई, चंदन की चौकी पर आकर बैठ गई। गजरा उसने चौकी पर रख दिया।

पैरों को लटकाकर वह जल की लहरों से खेलने लगी। उसके दोनो पैर धीरे-धीरे हिल रहे थे, और लहरों को रोक-रोककर नई लहरें उठा रहे थे। बेले के धवल पुष्पों का गजरा वहीं चौकी पर पड़ा-पड़ा सिहर रहा था।

सलमा लहरें उठाती रही, खेलती रही।

कुछ भूलने और कुछ भुलाने की कोशिश करती रही।

चौकी के सामनेवाले तंबू के द्वार के दोनो पट उसने उलट दिए थे। सामने गंगा की शुभ्र जल-राशि लहरों के साथ मचल रही थी। ऊपर शाह शर्की का झंडा वायु में लहरा रहा था। और, दूसरे तट पर भैंसों के झुंड गंगा के जल में शीश डुबा-डुबाकर लोट रहे थे। तट पर उगी हुई झाऊ की हरियाली में कुछ गाएँ चर रही थीं। बछड़े कुलाचें मार रहे थे। साँझ होने में अब अधिक देर न थी।

किनारे की शीतल वायु सलमा के सुलझे हुए बालों को उलझाने में व्यस्त थी।

सलमा अपने आप में डूबी जा रही थी। शरीर में मस्ती छाई हुई थी। न कोई शंका और न फ़िक्र। उन्मुक्त यौवन और यौवन में अल्हड़पन।

बहुत ही मादक समय था।

जब सलमा अस्त-व्यस्त दशा में लापरवाही से बैठी हुई जीवन की रागात्मक प्रवृत्तियों को जगा रही थी, उसी समय तंबू के पश्चिमी छोर पर तीन-चार नावें आकर रुकीं। उन सभी नावों में सशस्त्र सैनिक बैठे हुए थे। नावें इतनी धीर गति से आईं कि सलमा को कुछ भी आहट न मिली। नावों पर बैठे हुए सैनिक सतर्क थे, मगर कोई टस-से-मस नहीं हुआ। केवल एक व्यक्ति अपने सैनिकों को कुछ संकेत कर जल में उतर गया और धीरे-धीरे तंबू की ओर

बढ़ा। घुटने-घुटने पानी को पैरों से चीरता हुआ वह तंबू के द्वार के निकट आकर खड़ा हो गया।

सलमा अब भी निर्द्वंद्वता के साथ पैरों से लहरें उठा-उठाकर खेल रही थी। युवक ने धड़कते हृदय से झाँककर देखा—

अधखुला वक्ष, बिखरी हुई केश-राशि, सुंदर, सौम्य मुख-मंडल पर बड़ी-बड़ी, चपल, नशीली आँखें, जवानी का उन्माद और मद-होशी का आलम!

युवक कुछ क्षणों तक खड़ा-खड़ा अपलक इस रूप-राशि को देखता रहा। अब उसे पूर्ण रूप से विश्वास हो गया था कि यह रूप की रानी तंबू में अकेली ही है। उसने तलवार की मूठ पर हाथ रक्खा। शरीर काँप उठा, छाती धड़कने लगी, वह आगे बढ़ा, और द्वार पर खड़े होकर उसने धीरे से कहा—"क्या मैं अंदर आ सकता हूँ?"

एक अपरिचित व्यक्ति को अनायास ही सामने देखकर सलमा चौंक पड़ी, और हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। कमर में बँधे हुए रेशमी दुपट्टे से उसने जल्दी-जल्दी अपने शरीर को ढकने का प्रयत्न किया। युवक सामने खड़ा मुस्किरा रहा था।

सलमा की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। साँस फूल उठी। बोल बंद हो गया।

"घबराइए नहीं," युवक ने धीरे से कहा—"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

"दुष्ट, पाजी कहीं का।" सलमा का शरीर काँप उठा। उसने आवेश में कहा—"तुम्हें पता नहीं कि यह शाह शर्की का ज़नाना तंबू है? यह हिम्मत!! निकल यहाँ से, वर्ना........।"

"वर्ना क्या जान से मार दोगी?" युवक ने मुस्किराते हुए कहा—"मुझे पता है, यह शाह का ज़नाना तंबू है, मगर तुम इतना घबरा क्यों रही हो?"

"तो फिर क्यों घुस आया ?"

"तुम्हें देखकर।"

"पाजी कहीं का ! काफ़िर ! निकल यहाँ से।" सलमा तड़प उठी, और फेटे में कसी हुई अपनी कटार खींच ली।

युवक ने देखा कि सोलह वसंतों का पराग पीकर पनपे हुए सलमा के शरीर का एक-एक रोयाँ काँप रहा है, फिर भी वह शांत रहा। वैसी ही मुस्कान, वैसी ही सौम्य मुद्रा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह बोला। इस बार उसके स्वर में कुछ आवेश था।

"नादान लड़की, तू जिसे कटार दिखा रही है, समझती है, वह कौन है ?"

"काफ़िर ! चोर ! उचक्का !" क्रोध में सलमा बक गई।

"काफ़िर नहीं, चोर नहीं, उचक्का नहीं, डलमऊ का राजा डल है ! होश में आ। तेरे इस सौंदर्य के लिये, तंबू-क़नात नहीं, मेरा राज-भवन शोभा देगा ! गंगा के रेत में तरबूज़ पनपते हैं, हुस्न नहीं।" और उसने बढ़कर सलमा के हाथ से कटार छीन ली। नरम कलाई कसमसा उठी। एक चीख़ निकली और तंबू के भीतर ही समा गई। सलमा जड़वत् खड़ी रही। उसका चेहरा तपाए हुए ताँबे की तरह तमतमा रहा था। उसे अपनेपन का कुछ होश आया, और देखा उसके सामने राजसी पोशाक में, एक लंबा, छरहरा, स्वस्थ युवक खड़ा है, जिसका मस्तक चमक रहा है और आँखों का तेज माद-कता में डूबा हुआ है। वह सिहर उठी, और अपने को सँभालकर कुछ कहना चाहा, मगर स्वर न फूटा। वह भीतर-ही-भीतर तड़प-कर रह गई।

"डर गई ?" राजा डल ने अट्टहास करते हुए कहा—"पहले क्षत्राणी बनो, फिर कटार उठाओ !"

सलमा जल-भुनकर राख हो गई, और काँपती हुई अस्फुट, किंतु

कठोर शब्दों में बोली—"क्षत्राणी ? मैं क्षत्राणी बनूँगी, किंतु तुम्हारी लाश पर ! आज तुमने मेरी राज्य-सीमा का उल्लंघन कर, मेरे घर में आकर, मेरा अपमान किया है ! इस अपमान का बदला यदि मैं तुम्हारे क़िले की एक-एक ईंट से न ले लूँ, तो मैं बाबर सैयद की बेटी सलमा नहीं, किसी मेहतर की लड़की हूँ !"

सलमा की इस बात से राजा डल को सहसा होश आया। वह अपनी राज्य-सीमा से बहुत दूर चले आए थे। शिकार खेलते-खेलते उन्हें इस बात का ध्यान ही न रहा कि कब उनके राज्य की सीमा निकल गई और कब वह शाह शर्की के राज्य में प्रवेश कर गए। इस अनधिकार चेष्टा पर उन्हें जितना दुख था, उतना ही सलमा के रूप और साहस को देखकर प्रसन्नता भी। उनके चेहरे का रंग बदल गया। फिर भी उन्होंने अपनी भाव-भंगिमा को छिपाते हुए कहा—"सीमाएँ राज्य की ही हुआ करती हैं सलमा ! हृदय की नहीं।"

इतना कहकर उन्होंने सलमा के गले में चौकी पर पड़ी हुई बेले के फूलों की माला उठाकर छोड़ दी, और एकटक उसकी ओर देखने लगे।

सलमा ने फूलों का गजरा गले से नोचकर पैरों से रौंद डाला। मारे क्रोध के वह पागल-सी हो रही थी। उसने डल को मुस्किराते देखकर कहा—"बदतमीज़ ! चोट्टा !" निकल यहाँ से। नहीं तो तेरी बोटी-बोटी कटवा दूँगी।"

सलमा की इस बात से राजा का स्वाभिमान जागा। उन्होंने आवेश में कहा—"चोट्टा ?" चोट्टा मैं नहीं, तुम्हारे पुरखे हैं सलमा ! जिन्होंने पद्मिनी के अपहरण के लिये रत्नसिंह का बध किया। अरगल की रानी को अकेली पाकर शिवराजपुर में घेर लिया।

यदि मैं आज उसी का बदला तुमसे लूँ, तो तुम मेरा क्या करोगी? बोलो?" राजा डल ने सलमा की ओर क्रोध से देखकर कहा।

सलमा काँप उठी।

"...किंतु नहीं, मैं तुम्हें अकेली पाकर तुम्हारा अपहरण नहीं करूँगा।" कहते हुए राजा डल ने सलमा पर दृष्टि डाली। उसका शीश झुक गया था। राजा ने पुनः कहा—"तुम्हें अपनी राजरानी बनाऊँगा। चोरी से नहीं, केवल इसके बल पर!" कहते हुए एक झटके के साथ अपनी तलवार म्यान से बाहर खींच ली।

उस निर्जन प्रदेश में धीरे-धीरे अंधकार की काली चादर फैल रही थी। राजा डल ने आकाश की ओर देखा, दो-चार तारे निकल आए थे। वह सलमा की ओर वेधक दृष्टि से देखते हुए एक झटके के साथ बाहर निकल आए। जाते-जाते उन्होंने कहा—"वह देखो, चाँद निकल रहा है सलमा! आज की ईद मुबारक हो!"

"मेरी ईद तुम्हारी क़ब्र पर होगी।" सलमा ने अपने शब्दों को दुहराया।

नाव पर चढ़ते-चढ़ते राजा डल ने उत्तर दिया—"तुम्हारी ईद मेरी क़ब्र पर होगी, किंतु मेरे लिये 'ईद का चाँद' तुम्हीं रहोगी। ईद तो प्रति वर्ष होगी, मगर इस तरह का चाँद फिर देखने को न मिलेगा।"

सलमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन, जड़वत् खड़ी रही। उसका शरीर अब भी काँप रहा था।

राजा डल ने जैसे ही अपनी नाव पर पैर रक्खा, वैसे ही एक सनसनाती हुई गोली नाव से टकराई। राजा चौंक पड़े। उनके सैनिकों ने गोली का जवाब गोली से दिया; किंतु प्रत्युत्तर-स्वरूप उधर से फिर दूसरी गोली न आई।

वह अपने सैनिकों के साथ जल-मार्ग से डलमऊ की ओर चल पड़े।

यह गोली चलानेवाला हुसेन था, जो पीपल के पेड़ की ओट से

सब कुछ देख रहा था। मगर भय-वश उसकी सामने आने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। अब अवसर पाकर उसने राजा डल को अपना निशाना बनाया, किंतु बेकार! वार ख़ाली चला गया।

जब राजा डल और उनके सैनिक आँख से ओझल हो गए, तब हुसेन अपनी बंदूक़ सँभाले, डरता-डरता तंबू के पास आया, और सलमा को देखकर बोला—"सलमा बीबी, वह देखो चाँद निकल आया, ईद मुबारक हो!"

"भाड़ में जाय तेरी ईद और तू! अभी तक कहाँ था?"

"वहीं, पेड़ के नीचे, पड़ा-पड़ा चाँद की तलाश कर रहा था कि सबसे पहले मैं ही चाँद देखकर सलमा बीबी को मुबारकबाद दूँगा, मुँह मीठा कराओगी न? कितना सुंदर चाँद निकला है।"

सलमा ने हुसेन की गर्दन पकड़कर झकझोर दिया। और, फिर बोली—"ले, कर मुँह मीठा! कायर कहीं का, आज ही तुझे बर्ख़ास्त कराए देती हूँ।"

बर्ख़ास्तगी का नाम सुनते ही हुसेन के हाथों के तोते उड़ गए। वह सलमा के पैरों पड़ने लगा।

उसी समय क़िले के टीले से अज़ान का स्वर गूँजा। सब लोग ईद की नमाज़ पढ़ने के लिये चल पड़े। चाँद निकलते ही छोटा-सा क़िला पटाख़ों, तोपों की गरज और गोलों की आवाज़ में डूबने-उतराने लगा। सुमधुर पकवानों की सुरभि गंगा के कछार में छा गई। उल्लास-पूर्ण जन-रव सुरसरि की पावन लहरों में प्रतिध्वनित होकर उभरने तथा क़िले की दीवारों से टकराकर अपने आपमें समाने लगा।

ईद का चाँद मुस्किरा रहा था।

मगर उसकी छाया साफ़ न थी।

---

[२]

पूजा के फूल, अगरु, चंदन, नैवेद्य एवं गंगा-जल आदि सभी वस्तुएँ यथास्थान रखकर कंचुकी ने एक बार पुनः उनको ध्यान से देखा। फिर वह छोटी-सी चौकी पर आसनी बिछाकर अपने कक्ष की ओर चली गई।

कंचुकी डलमऊ के राजा डल की सबसे छोटी एवं धर्म-परायणा पत्नी थी। जब से वह पटरानी के रूप में दुर्ग में पधारी थी, तब से उसने राजा डल को भार शिवों के प्राचीन, पवित्र जीवन का स्मरण कराकर उन्हें पुनः शिव-उपासना की ओर उन्मुख किया था। विवाह के पूर्व मदिरा पान न करने की प्रतिज्ञा कराई थी। इसका कारण यह था कि अब भार शिवों में काफ़ी विलासिता आ गई थी। एक दिन जहाँ उनका शासन एकदम योगियों का-सा था—न शान, न शौकत, न आडंबर, न ढोंग, सब कुछ सात्विकता से परिपूर्ण था—उनके शासन के प्रतीक केवल 'शिव' ही माने जाते थे—आज वहीं शासन और जीवन का आधार मदिरा की बोतलें हो रही थीं। जहाँ वे पहले 'अश्वमेध यज्ञ' किया करते थे, सर्व राष्ट्रीय दृष्टि से साधु एवं त्यागी बने हुए थे, गंगा और शिव की उपासना करते थे, वहीं अब रस, राग एवं रति-रंग में डूबे रहते थे। इनके अंतिम राजा 'भवनाग' के पतन के पश्चात् भार शिवों का शासन छिन्न-भिन्न हो चुका था। मथुरा, आगरा एवं अवध में भार शिवों के स्थान पर यवन तथा कहीं-कहीं राजपूत-शासक राज्य करने लगे थे। रायबरेली, उन्नाव, गांडीव प्रदेश एवं अवध के अन्य जनपदों में

अब भी भार शिवों का शासन छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में जीवित था, किंतु वे सब नैतिक पतन की परा काष्ठा पर थे। इन राज्यों में सबसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली शासन डलमऊ का था, और यहाँ का क़िला एक अजेय दुर्ग समझा जाता था।

डलमऊ का दुर्ग जहाँ शक्ति में सबसे सुदृढ़ था, वहीं विलासिता में भी सबसे आगे। यहाँ शराब के लिये बोतलों और सुराहियों का नहीं, प्रत्युत हौज़ों का प्रयोग किया जाता था। क़िले में बड़े-बड़े हौज़-के-हौज़ भरे रहते थे। छोटे से बड़े तक सभी दिल खोल-कर पीते थे। स्वयं राजा डल का अधिकांश समय मदिरा की बेहोशी एवं सुंदरियों के बाहु-पाश में बीतता था। उनके अंतःपुर में दर्जनों रानियाँ थीं, जो राजा की वासना-तृप्ति की साधक-मात्र ही नहीं, उन्हें पतन की ओर ले जाने में भी सहायक थीं। यही दशा राजा डल के अन्य तीन भाइयों—बाल, ककोर एवं रलमान—की भी थी। जो क्रमशः बरेली (रायबरेली) ककोरन एवं रलमानपुर में अपना अलग-अलग राज्य स्थापित किए हुए शासन चला रहे थे। राजा डल के अंतःपुर में केवल कंचुकी ही एक ऐसी रानी थी, जो मदिरा से घृणा करती, विलासिता से दूर रहती और महाराज को पतन के गर्त में गिरने से बचाती रहती। यही कारण था कि वह अपने हाथ से पूजा की सामग्री सजाकर महाराज को शिव-पूजा की ओर बाध्य किया करती कि शायद उनके विचारों में परिवर्तन आ ही जाय।

पूजा का सामान सजाकर कंचुकी जब अपने कक्ष में आई, तो उसने देखा कि उसके कक्ष में महाराज पहले से ही विराजमान हैं। कंचुकी ने अभी-अभी स्नान किया था। उसके केश भीगे हुए थे। उनसे पानी की बूँदें टपक रही थीं। उसने अपनी धवल साड़ी के छोर से भीगे बालों को ढककर महाराज को प्रणाम किया, और उनके

चरणों के पास आकर बैठ गई। महाराज ने कंचुकी का हाथ पकड़ उसे अपनी गोद में उठा लिया, और स्नेह से उसके भीगे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—"कंचुकी, एक बहुत बड़ी विपत्ति आनेवाली है!"

कंचुकी जैसे सोते से चौंक पड़ी हो। अपने हाथ की कोमल उँगलियों से महाराज के स्वर्ण-कुंडलों को स्पर्श करती हुई बोली—"कैसी विपत्ति महाराज?"

कंचुकी का प्रश्न सुन महाराज थोड़ा मुस्किराए, और फिर बोले—"बाबर सैयद की बेटी ने मुझे चुनौती दी है, क़िले की एक-एक ईंट गिरवाने की!"

"और तुमने एक औरत की चुनौती स्वीकार कर ली?" कंचुकी ने पुतलियाँ नचाते हुए व्यंग्य किया।

"क़रता भी न, तो क्या करता, सुलतान शर्की के दाहने हाथ बाबर सैयद की बेटी जो ठहरी!"

"यदि आप इसी भाँति औरतों की चुनौती स्वीकार करते फिरते हैं, तो मेरी भी कीजिए, मैं भी तो रेवंत की लड़की हूँ।"

"बोलो, बोलो!" महाराज ने विहँसते हुए कहा—"तुम्हारी भी चुनौती स्वीकार है!"

"मैं दुर्ग में बने मदिरा के एक-एक हौज़ को मटियामेट करना चाहती हूँ!" यह कहकर कंचुकी ने महाराज की ओर निहारा, वह मुस्किरा रहे थे। कंचुकी की पलकें झुक गईं। महाराज हँस पड़े, और उन्होंने कंचुकी को अपनी बलिष्ठ बाहों में कसकर दबा लिया। बेचारी पिसकर रह गई। उसके गुलाबी कपोल, काँपते अधरों का स्पर्श पाकर आरक्त हो उठे। कंचुकी लाज के मारे लाल पड़ गई। वह अपने को छुड़ाकर बाहर आँगन में निकल आई। आँगन में पहुँचते ही उसे पूजा की सामग्री का ध्यान आया। वह

फिर लौट पड़ी। द्वार पर से ही उसने महाराज को संबोधित करके कहा—"अरे, जाकर पूजा तो कीजिए!"

"कर चुका!" महाराज ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया।

"कब?"

"अभी-अभी पूजा ही तो कर रहा था! तुम्हें नहीं मालूम?"

कंचुकी पुनः लाज से गड़ गई। उसने शरमाते हुए दबी ज़बान से पूछा—"और स्नान?"

"बिना स्नान के कहीं पूजा होती है?"

कंचुकी रूठ गई। तुनककर क़िले के ऊपरी कक्ष में चली गई। वहाँ जाकर वायु के उन्मुक्त झोकों में बाल सुखाने लगी। यह क़िले का सबसे ऊपरी भाग था। जहाँ से कहा जाता है, कड़े के क़िले का दीपक दिखाई पड़ता था, क्योंकि कड़े-मानिकपुर का क़िला भी इतना ही ऊँचा था।

कंचुकी के चले जाने के पश्चात् महाराज स्नानागार में गए। रात-भर की थकान एवं परेशानी गंगा-जल का शीतल स्पर्श पाकर दूर हो गई। स्नान से निवृत्त होकर उन्होंने सूखे वस्त्र पहने। चरण-पादुकाएँ धारण कर वह धीरे-धीरे शिव-मंदिर की ओर चले। पूजन-सामग्री यथास्थान रक्खी थी। महाराज आसनी पर बैठकर पूजा करने लगे। परिचारिका सावित्री वहीं खड़ी रही।

जब महाराज पूजा करने में निमग्न हो गए, तो कंचुकी धीरे-धीरे ऊपर से नीचे की ओर उतरने लगी। सहसा उसकी दृष्टि राजपथ से क़िले के मुख्य द्वार की ओर आते हुए एक घुड़सवार पर पड़ी, जो बड़ी ही तीव्र गति से द्वार में प्रवेश कर रहा था। कंचुकी जल्दी-जल्दी नीचे उतरी, और सीढ़ियों के मध्य भाग में आकर खड़ी हो गई। उसने हाथ के इशारे से सावित्री को ऊपर आने का संकेत किया। सावित्री ने शीश हिलाकर संकेतात्मक ढंग से बताया

कि महाराज पूजा कर रहे हैं, मैं नहीं आ सकती। कंचुकी ने पुनः संकेत किया, सावित्री ने झाँककर महाराज की ओर देखा। वह ध्यान-मग्न थे। वह मुस्किराती हुई दबे-पैरों ऊपर चढ़ने लगी। सावित्री जब निकट पहुँची, तो कंचुकी ने उसे चुप रहने का इशारा किया, और उसका हाथ पकड़ उसे ऊपरी छत पर ले गई। घुड़-सवारकी ओर संकेत करके बोली—"देख सावित्री, यह कौन आ रहा है?"

"होगा कोई, मैं क्या जानूँ।" सावित्री ने घुड़सवार की ओर ध्यान से देखकर कहा—"ऐसे तो हज़ारों नित्य ही आया-जाया करते हैं।"

"तू नहीं पहचानती?"

"नहीं, सभी आने-जानेवालों का शजरा मेरे पास थोड़े रक्खा है।" कहने को तो सावित्री कह गई, मगर उसकी छाती ज़ोर-ज़ोर से धड़क रही थी। मन प्रसन्नता से पुलक रहा था, और नयनों में चिर-मिलन की अभिलाषा मादकता बनकर छलक उठी थी।

कंचुकी ने सावित्री के गाल पर चपत लगाते हुए कहा—"जा, नीचे से पता लगा आ।"

"मैं नहीं जाती पता लगाने। यह मर्दों का काम है।" कहती हुई सावित्री सीढ़ियों पर गेंद की भाँति उछलती यथास्थान आकर खड़ी हो गई। महाराज अभी पूजा ही कर रहे थे।

"छोटी रानी, इस तरह परिचारिकाओं को मुँह नहीं लगाया जाता।" राजा डल की बड़ी रानी वासुमती ने, जो कि कंचुकी से मन-ही-मन जला करती थी, अपने ऊपरी कक्ष से सावित्री एवं कंचुकी की बातें सुनकर व्यंग्याघात किया।

कंचुकी बड़ी रानी की विष-भरी बातें सुनकर कुछ भी न बोली। केवल धीरे से उतरकर अपने कक्ष में चली गई। रानी वासुमती

कहती रहीं—"महाराज देखेंगे, तो तलवार के घाट उतार देंगे, उन्हें इस तरह का छिछोरापन पसंद नहीं।"

कंचुकी ने अपने कक्ष में जाकर सूखे हुए बालों को अगरु एवं धूप से सुरभित करके उन्हें सँवारकर बाँध लिया। फिर उसने कक्ष से ही सावित्री को पुकारा। सावित्री न बोली। कंचुकी ने झाँककर देखा, तो सावित्री ग़ायब थी।

कंचुकी स्वयं उठी और महाराज के कक्ष में जलपान का सामान सजाकर रख आई। पूजा के पश्चात् जब महाराज बाहर निकले, तो सीधे अपने कक्ष में चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने जलपान किया, और पुनः लेटकर विश्राम करने लगे। उसी समय सावित्री ने महाराज के हाथों में एक मुहरबंद लिफ़ाफ़ा लाकर रख दिया, और स्वयं बाहर निकल गई। आँगन में बैठकर सावित्री आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

महाराज ने लेटे-ही-लेटे पत्र खोला। यह पत्र किसी और का नहीं, उनके छोटे भाई राजा बाल का था, जिसे उन्होंने अपने रायबरेली के क़िले से भेजा था।

पत्र में लिखा था—

"........आपको भली भाँति ज्ञात है कि अरगल के राजा पुंडीरदेव ने अपनी पत्नी एवं कन्या को शिवराजपुर में यवनों की कामपिपासा से बचानेवाले अभयचंद-नामक बैस राजपूत को अपनी कन्या के साथ-साथ पुरस्कार-स्वरूप इस जनपद के १४०० ग्राम दहेज में दे दिए थे। फल-स्वरूप अभयचंद ने रत्नसेन की सहायता से भार शिवों के राज्य पर अपना आधिपत्य करना चाहा, किंतु हमारे पूर्वजों की रण-कुशलता के समक्ष उनकी एक भी न चली। अभयचंद को अपना राज्य छोड़कर गंगा-पार भागना पड़ा। इसके बाद उसके पुत्र कर्नराय ने पुनः शीश उठाया, किंतु हमारी संग-

ठित शक्ति के समक्ष उसे भी मुँह की खानी पड़ी। आपको यह जानकर दुख होगा कि आज अपनी गौरवशाली परंपरा अपने ही वंश के एक विश्वासघाती सरदार द्वारा नष्ट हो चुकी है। आश्चर्य न कीजिए, अपने वंश, अपनी सेना और अपने शासन के साथ आत्मघात करनेवाला और कोई नहीं, आपका ससुर एवं आपकी प्रिय रानी कंचुकी का पिता—रेवंत है। जिसने हमारे गुप्त रहस्यों को कर्नराय के लड़के सेद्धराय से बताकर हमारी सेनाओं में कटवा दिया। हमारे क़िले को लुटवा लिया। हमारा सर्वनाश करा दिया। कल तक जिन क़िलों में हमारा झंडा फहरा रहा था, आज उन्हीं की छाती पर सेद्धराय का विजय-ध्वज लहरा रहा है। हमारे वंशज स्थान छोड़कर पूरब की ओर भाग रहे हैं। स्वयं मेरी आधी से अधिक सेना युद्ध-स्थल में काम आई है। भार शिवों के राज्य का सूर्य अस्त हो रहा है। उसकी अंतिम ज्योति के रूप में अब केवल आपका ही दुर्ग शेष है, किंतु उस दुर्ग के भी बचने की अब कौन आशा? जिस दुर्ग की छाया में रेवंत-जैसे ग़द्दार एवं विश्वास-घाती की बेटी 'कंचुकी' शरण पा रही है। रेवंत को मैं जीवित या मृत किसी भी रूप में पकड़ने के लिये प्रयत्नशील हूँ।

"अब आप स्वयं सोचें-समझें और जैसा उचित हो, करें किंतु मेरे विचार से कंचुकी का क़िले में रहना किसी समय विनाश का कारण हो सकता है।"

जनपद के पश्चिमांचल में भार शिवों के अधःपतन एवं रेवंत के विश्वासघात से महाराज डल को एक झटका-सा लगा। गर्म निःश्वास छोड़कर उन्होंने पत्र पुनः लिफ़ाफ़े में भरकर रख दिया।

सावित्री बाहर जैसी की तैसी बैठी स्वयं अपने ही विचारों में डूबी हुई थी। रह-रहकर उसका मन पुलक उठता था। वह बार-बार चुपके से महाराज की ओर झाँक लिया करती थी। अब की

बार जब उसने निहारा, तो महाराज ने देख लिया। उन्होंने धीरे से पुकारा—"सावित्री!"

"आई महाराज" कहती हुई सावित्री शीश झुकाकर उनके समक्ष खड़ी हो गई।

"यह पत्र कौन लाया है?"

"मैं नहीं जानती।" सावित्री ने शीश झुकाए ही उत्तर दिया। उसका मुख लज्जा से लाल हो गया था।

"तू नहीं जानती, तो द्वारपाल से पूछकर बता," कहते हुए महाराज ने करवट बदली।

"महाराज" सावित्री ने धीरे से कहा—"पूछ तो मैं लूँगी, मगर पत्र-वाहक का नाम लेने में इसके बाद भी संकोच ही रहेगा।" कहकर सावित्री अपने आपमें सिमट गई।

ओ हो! महाराज प्रसन्नता से उछल पड़े और बोले—"यह बात है! यही तो मैं सोच रहा था कि सावित्री इतनी शरमाई हुई क्यों है। गजराज आया है? जा, उठ। उसके खाने-पीने का प्रबंध कर। अब तुझे रात-भर के लिये अवकाश देता हूँ, और सुन, बड़ी रानी को यहाँ भेजती जाना।"

सावित्री आँखों में लाज और हृदय में पुलक छिपाए हुए कक्ष से बाहर निकल गई। ऊपर जाकर उसने रानी वासुमती को राजा का संदेश सुनाया। फिर वह जल्दी-जल्दी रानी कंचुकी के कक्ष में घुस गई। अंदर से कक्ष के कपाट बंद कर लिया।

गजराज सावित्री का पति था। जो राजा बाल के पत्र-वाहक के रूप में कार्य करता था। सावित्री से वह बहुत कम मिल पाता था। इसी प्रकार कभी-कभी महीने-दो महीने में पत्र लेकर जब आता, तो सावित्री की उदासी दूर हो जाती।

सावित्री को भीतर से कपाट बंद करते देखकर रानी ने पूछा—"क्या बात है सावित्री, आज बहुत प्रसन्न लग रही है।"

छोटी रानी की बात सुनकर सावित्री मुस्किराई और फिर धीरे से उनके कान में बोली—"वह आए हैं।"

"कौन, गजराज ?"

सावित्री ने केवल शीश हिला दिया।

"कब आए ?" रानी ने मुस्किराते हुए पूछा।

"अभी-अभी, पत्र लेकर।"

"अच्छा।" कंचुकी ने एक निराली अदा के साथ कहा—"लेकिन तू पहचान कैसे गई ? सभी आने-जानेवालों का शजरा तो तेरे पास रहता नहीं।"

"तो आप ही बताइए ?" सावित्री ने लजाते हुए उत्तर दिया—"मैं कैसे कहती कि यह घुड़सवार कौन आ रहा है।" कहते-कहते सावित्री का मुख लाज से लाल पड़ गया।

"धीरे-धीरे बोल" कंचुकी ने एक बेधक दृष्टि सावित्री के चेहरे पर छोड़ते हुए कहा—"नहीं तो रानी वासुमती फिर बरस पड़ेंगी।"

"बादल ही नहीं हैं, तो बरसेगा कौन ?"

"क्यों, कहाँ गए ?"

"महाराज के कक्ष में बंद हैं।"

"सचमुच ?"

"हाँ, हाँ।"

और फिर दोनो एक दूसरे की ओर देखकर हँस पड़ीं। कंचुकी ने हँसते हुए कहा—"लो अब तेरी बारी है, तू भी अपने कक्ष में जाकर बंद हो जा।"

छोटी रानी का इतना कहना था कि सावित्री को मुँह माँगी मुराद मिल गई। वह कक्ष के कपाट खोलकर तेज़ी से बाहर निकल गई। उसे इस प्रकार जाते देखकर कंचुकी ने हँसते हुए कहा—"सावित्री, पानी ही बरसाना, बिजली न गिरा देना !"

सावित्री कुछ बोली नहीं, केवल मुस्किराकर रह गई।

रंग-विरंगे वस्त्र पहने सब लोग ईद की ख़ुशी मना रहे और गले मिल रहे थे—अपनी-अपनी बाहों में एक दूसरे को समेटते हुए मुबारकवाद दे रहे थे। किंतु इनमें से एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो अपनी तक़दीर पर बैठा आँसू बहा रहा था। वह था हुसेन।

अभी कुछ क्षण पहले वह भी ख़ुश था। प्रातः सबके साथ ईद-गाह तक गया था। उसने नमाज़ भी सबके साथ ही पढ़ी थी। किंतु ईदगाह से वापस आते ही उसे बर्ख़ास्तगी का परवाना क्या मिला कि ईद उसके लिये अभिशाप बनकर रह गई।

परवाना पाने के बाद हुसेन थोड़ी देर वहीं खड़ा सोचता रहा और फिर मुँह लटकाए धीरे-धीरे क़िले के उस कक्ष की ओर चला, जहाँ सैयद साहब का परिवार ठहरा हुआ था। हुसेन आज पाँच-छ वर्षों से बाबर सैयद एवं उनके परिवार के अंग-रक्षक के रूप में कार्य कर रहा था। ज़नानख़ाने से लेकर सूबेदार साहब के दरबार तक सब जगह उसका प्रवेश था। वह सबका विश्वास-पात्र भी था। वह जिस ख़ूबी से बंदूक़ चला सकता था, उसी ख़ूबी से झाड़ू भी लगा सकता था।

संक्षेप में वह अकेला ही सैयद साहब के परिवार के लिये 'पीर-बावर्ची-भिस्ती-ख़र' सब कुछ था; किंतु था उद्दंड। कुछ मुँहफट भी था। विवेक तो उसके स्वभाव के लिये कल्पना की वस्तु थी। जो मन में आया, कह डाला। जो विचार में उठा, कर डाला। यही हुसेन का रूप था। फिर भी उसके दुर्गुण अन्य गुणों के सामने दब जाते थे। इसी से वह सबका विश्वासपात्र था।

जब हुसेन क़िले की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहा था, तभी रास्ते में

आता हुआ सलीम मिला। उसे देखते ही हुसेन ने बाँहें फैलाकर कहा—"कहाँ चले सलीम भैया ! आओ, गले तो मिल लें।" किंतु सलीम उसकी ओर मुख़ातिब न हुआ। वह अपने रास्ते चला गया। हुसेन मन मसोस कर रह गया। सलीम से उसे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। मुख से बोलना तो दूर रहा, उसने उसकी ओर देखा तक नहीं। जब वह सूबेदार साहब के कक्ष के द्वार पर पहुँचा, तो उस समय द्वार खुला हुआ था। उसे देखते ही बेगम साहबा ने अंदर से साँकल चढ़ा लेने का आदेश दिया। नौकरानी सदरुन ने झपटकर दरवाज़ा बंद कर लिया। हुसेन बाहर ही खड़ा रहा। जो सदरुन रातो-दिन हुसेन के पैर दबाने को तैयार रहा करती थी, आज उसने उसकी ओर देखना भी गुनाह समझा।

हुसेन ने परवाना पाने के बाद सोचा था कि वह सूबेदार साहब के पास जाकर अपनी ग़लती की माफ़ी मँगेगा। यद्यपि उसने कोई ग़लती नहीं की थी। फिर भी, सलमा बीबी का नाराज़ हो जाना ही क्या कम था। मगर सब कुछ बेकार ! वह उलटे पैरों लौट पड़ा। गैलरी से होकर पगडंडी पर आया और क़िले के दक्षिणी छोर पर जाकर खड़ा हो गया। उसका सिर चकरा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो ये पेड़ घूम रहे हैं। क़िला, धरती और आकाश सभी घूम रहे हैं। उसने दोनो हाथों सिर ज़ोर से दबा दिया, आँखें बंद कर लीं और वहीं बैठ गया। परवाना हाथ से अब उसकी शेरवानी की जेब में जा चुका था। उसने आँखें खोलकर देखा, मानो गंगा की लहरें उसे खाने को दौड़ रही हैं। वह आँखें मूँदकर चिल्ला उठा—"या अल्लाह !" और फिर वहीं लेट गया।

शाह शर्की ईदगाह से वापस आने के बाद से ही 'दीवाने-आम' में बैठे थे। यह कक्ष, जिसे दीवाने-आम कहा जाता है, आज बहुत दिनों बाद खोला गया था। कुछ लोगों का तो यह

अनुमान है कि अलाउद्दीन ने जब अपने चाचा का वध करके सरदारों, सूबेदारों एवं मुसाहिबों के साथ अपने सुलतान होने के उपलक्ष में जलसा किया था, तब से आज तक यह 'दीवाने-आम' खुला ही नहीं। यह क़िले के पूर्वी भाग का एक अंश-मात्र है। इसकी लंबाई लगभग बीस ग़ज़ एवं चौड़ाई पंद्रह ग़ज़ से कुछ अधिक ही होगी। दीवारें पतली, लखौरी ईंटों से बनी हुई हैं। बाहर से देखने में यह मिट्टी का एक टीला-सा दिखाई पड़ता है, किंतु इसमें अंदर सुंदर पच्चीकारी है। दीवारें मटमैले मुलतानी रंग से पुती हुई हैं, जिनमें स्थान-स्थान पर चित्र लगे हैं। इन चित्रों में से अधिकांश चित्र यवनों के भारत-विजय से संबंधित हैं। बीच-बीच में कुछ चित्र ऐसे भी हैं, जो गुप्त कालीन शैली के धूमिल प्रतिबिंब-से प्रतीत होते हैं। फ़र्श पर एक पतला मख़मली कालीन बिछा है। जिसमें नए-नए वस्त्र पहने शाह को मुबारकवाद देनेवाले अनेकों व्यक्ति बैठे हैं। एक-एक आदमी क्रमवार उठकर गद्दी तक आता और शाह से गले मिलता तथा अदब के साथ बाहर निकल जाता है। शाह के पास ही तुग़लक सैयद, सलीम और कड़े के सूबेदार अर्ज़ा-उद्दीन एवं शरफुद्दीन बैठे हैं। मिलनेवालों का क्रम घंटों से चल रहा है। बाहर बाजे बज रहे हैं। धीरे-धीरे सभी मिलनेवाले शाह के प्रति शुभकामनाएँ अर्पित करते हुए बाहर निकल गए। कड़े के सूबेदार दूसरे कक्ष में जाकर फ़क़ीरों को मिष्टान्न एवं वस्त्र वितरित करने लगे। केवल सलीम और सैयद साहब शाह शर्की के पास बैठे रहे।

इनकी ओर मुख़ातिब होकर शाह ने कहा—"सैयद साहब, ईद की यह रौनक़ कड़े के अलावा और कहाँ नसीब होती! क्या ज़िंदा दिली है यहाँ की आबोहवा में! कितनी शांति है यहाँ के जंगलों में!" इतना कहकर वह सैयद साहब की ओर देखने लगे।

सैयद साहब ने हाँ-में-हाँ मिलाते हुए उत्तर दिया—"परवरदिगार, यही मैं भी सोच रहा था कि यहाँ की आबोहवा से हमारी ईद में एक नहीं, चार चाँद लग गए हैं।" सैयद साहब के इतना कहते ही सबके अधरों पर मुस्कान खेल गई।

उसी समय दीवान-ए-आम में हुसेन ने प्रवेश किया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। आँखों से आँसू के स्रोत फूट निकलने को तड़प रहे थे। हुसेन ने शाह को झुककर सलाम किया, और वह यथास्थान खड़ा हो गया। उसका शीश झुका हुआ था तथा आँखें धरती की ओर देख रही थीं। शाह ने हुसेन के उदासी-भरे चेहरे को देखकर पूछा—"हुसेन, आज तुम्हारे चेहरे पर इतनी मनहूसियत क्यों है?"

हुसेन कुछ बोला नहीं, प्रत्युत्तर में उसने वही बर्खास्तगी का परवाना, शेरवानी की जेब से निकालकर, शाह के सामने रख दिया।

शाह ने परवाने को पढ़ा, और सैयद की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखकर कहा—"यह आपका हुक्म है?"

सैयद का चेहरा लाल पड़ गया। उन्होंने अपने को सँभालते हुए कहा—"जहाँपनाह, का ख़याल ठीक है, मेरा ही है।"

शाह साहब चुप हो गए। सैयद ने मौनता भंग करते हुए कहा—"परवरदिगार, इसने वह गुस्ताख़ी की है, जिसका कोई जवाब नहीं। इसने शाही ख़ानदान की इज़्ज़त लूटने की कोशिश की है। हमारी आबरू पर कीचड़ उछाला है। इसकी इस बदतमीज़ी की सज़ा, सज़ा-ए-मौत थी, मगर ईद होने की वजह से मैंने इसकी जान बख़्श दी, बकरीद होती, तो इसे सबसे पहले मैं ही ज़बा करता।"

शाह की समझ में कुछ भी न आया। उन्होंने हुसेन की ओर तेज़ निगाहों से देखकर पूछा—"क्यों, यह तुम्हारी हरकत?" किंतु

हुसेन जैसे-का-तैसा शीश झुकाए खड़ा रहा। उसकी आँखों में आँसू छलक आए थे।

सैयद साहब ने जलती आँखों से हुसेन की ओर देखा और फिर शाह को संबोधित करते हुए कहा—"हुज़ूर, यह आज पाँच-छ साल से मेरे घर में लड़के की तरह रह रहा है, मगर मैं नहीं जानता था कि यह मेरे ही घर में डाका डालने की कोशिश करेगा। कल सलमा को अकेली पाकर........" कहते-कहते सैयद साहब रुक गए, और फिर गंभीर होकर बोले—"यदि मेरी बेटी इतने पाक विचारों, बुलंद ख़यालों की न होती, तो मेरी आबरू यह ख़ाक में मिला देता। शाहे आलम! इसकी सज़ा मौत भी कम है।"

हुसेन एक बारगी चौंक पड़ा। उसका झुका हुआ शीश ऊपर उठा। उसने धीरे से शाह की ओर देखकर कहा—"जहाँपनाह, यह ग़लत है।"

"ग़लत है?" सैयद साहब ने प्रश्न किया—"झूठा कहीं का, कल तू सलमा के साथ गया था या नहीं?"

"गया था" हुसेन ने उत्तर दिया—"महज बेगम साहबा के कहने से।"

"तो तूने उसके साथ छेड़ख़ानी नहीं की?"

"नहीं।"

"नहीं।" सैयद साहब ने हुसेन के शब्दों को दुहराया। फिर शाह को संबोधित करते हुए कहा—"हुज़ूर, जब सलमा को अकेली पाकर इसने इसके साथ ग़ुस्ताख़ाना बर्ताव करना चाहा, तो मेरी बेटी ताड़ गई, और उसने हाथ में जूती लेकर इसे खदेड़ दिया। यह मारे शर्म के वहीं पीपल के पेड़ के नीचे चाँद निकलने तक बैठा रहा। सलमा के साथ तंबू तक जाने की इसकी हिम्मत न पड़ी।"

अब हुसेन को कुछ होश आया। जिस लड़की को वह अपनी बहन-

बेटी की तरह समझे, वह इतना बड़ा कुचक्र रचे ?" हुसेन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने अपने को दृढ़ करके कहा—"जहाँपनाह ! गुस्ताख़ी माफ़ हो। सलमा मेरी लड़की की तरह है। मैं खुदा की क़सम खाकर कहता हूँ कि उसने अपना पाप छिपाने के लिये मेरे ऊपर यह इलज़ाम लगाया है। वह शाही खानदान की लड़की है। उसकी इज़्ज़त भी बचाना मेरा काम है। लेकिन सलमा की कल की हरकत मुझे अच्छी नहीं लगी। परवरदिगार ! मैं फिर माफ़ी माँगता हूँ। मैंने अपनी आँख से देखा है कि एक आदमी, जिसके साथ तीन-चार नावों पर सिपाही भरे थे, शाम होते ही सलमा के तंबू में घुस गया, और घंटों घुसा रहा। मेरे तो मन में आया कि मैं जाकर इस आदमी का गला घोंट दूँ। सलमा का भी क़त्ल कर दूँ, मगर मैं अकेला था। वे सैकड़ों थे। फिर भी मैंने जब वह तंबू से निकलकर नाव पर चढ़ रहा था, तो उसे अपनी बंदूक़ का निशाना बनाया। मगर वह बच गया और भाग निकला। उसके आदमियों ने भी मुझ पर गोली चलाईं। मगर उस पीपल के पेड़ ने मेरी जान बचा ली और गोलियाँ उसी में टकरा-टकराकर समा गईं। उस आदमी पर मेरा इस तरह गोली चलाना सलमा बीबी को अच्छा न लगा। उन्होंने मेरे ख़िलाफ़ यह जाल रचकर मुझे दो रोटियों के लिये मुहताज़ बना दिया। अगर आपको मेरी बात पर यक़ीन नहीं, तो खुद देख लें; अब भी उस पीपल के पेड़ में गोलियाँ धँसी पड़ी हैं। वही मेरी बात की सबूत हैं। इसके बाद यदि परवरदिगार मुझे मौत की भी सज़ा देते हैं, तो वह मुझे मंज़ूर है।" कहते हुए हुसेन ने अपना माथा टेक दिया।

शाह ने एक बार सैयद साहब की ओर देखा, उनका चेहरा पीला पड़ गया था।

हुसेन ने शाह के क़दमों में शीश झुकाते हुए कहा—"शाहे आलम की ही ख़िदमत में यह देह पली है, और उसी में ही जायगी,

मगर हुसेन शाही ख़ानदान की इज़्ज़त पर धब्बा न लगने देगा।"

शाह ने पुनः सैयद की ओर निहारा। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उन्होंने हुसेन का परवाना अपने हाथ में लेकर उसे चले जाने का आदेश दिया।

सैयद साहब थोड़ी देर तक जड़वत्, किं कर्तव्य-विमूढ़-से बैठे रहे, और फिर अचानक ही एक झटके के साथ उठकर खड़े हो गए। उन्होंने शाह को शीश झुकाकर सलाम किया, और पैर पटकते हुए बाहर निकल गए। उनका हाथ तलवार की मूँठ पर था। वह सलमा की बोटी-बोटी काटने जा रहे थे। शाह ने एक बार सूबेदार साहब की ओर देखा। फिर वह सलीम की ओर मुख़ातिब हो गए। सलीम की मुखाकृति फीकी पड़ गई थी। सलमा के प्रति उसका हृदय घृणा से भर गया था। वह अब सलमा की छाया तक से नफ़रत करने लगा था। शाह साहब उठकर अपने कक्ष की ओर चल पड़े। सलीम भी उन्हीं के साथ बाहर निकल आया।

हुसेन जब दीवान-ए-आम से बाहर आया, तो शातिर ने उसकी पीठ ठोंकी। उसे गले से लगाकर कहा—"जियो, हुसेन! तुमने मेरा काम बना दिया। अब देखता हूँ, बेटा सलीम सलमा से मुहब्बत करते हैं, या नफ़रत!"

हुसेन शातिर का प्रोत्साहन पाकर फूल उठा। सचमुच उसने परिस्थिति ही बदल दी थी। उसने गर्व से शातिर का हाथ पकड़-कर कहा—"मुँह मीठा कराओ।" शातिर उसे अपने शिविर की ओर लेकर चल पड़ा। दोनो ख़ूब ख़ुश थे।

शातिर शाह शर्की की फ़ौज की टुकड़ी का सरदार था। उसके पिता फ़ीरोज़ तुग़लक के सेना-नायक थे। उनकी शाही ख़ानदान में अच्छी इज़्ज़त एवं धाक थी। उनके पतन के बाद शातिर की वह हालत तो न रही, किंतु अब भी वह उसी शान के साथ जीवन

बिता रहा था। उसका विवाह अभी नहीं हुआ था। वह एक स्वस्थ, निर्भीक एवं ख़ूबसूरत जवान था, और बचपन से ही सलमा के प्रेमियों में से था। सलमा से उससे पटती भी ख़ूब थी। आज भी वह सलमा के प्रेम की आग छाती में छिपाए हुए जी रहा था। मगर सलीम ने उसके प्रेम-महल को खँडहर बना दिया था। बचपन में भले ही शातिर का प्रवेश तुग़लक सैयद के घर में रहा हो, सलमा की उसकी दोस्ती रही हो, किंतु जवानी में अब सलीम उस पर अधिकार कर बैठा था। शातिर केवल बाहर-ही-बाहर चक्कर काटकर अपनी तपन बुझा लिया करता। इसका कारण यह था कि सलीम सैयद साहब का अज़ीज़दार था। उसका घर-बाहर सब जगह प्रवेश था। मगर शातिर बेचारा एक टुकड़ी का नायक-मात्र ही था, जिसकी न शाह तक उतनी पहुँच और न सैयद के घर में प्रवेश!

सलीम यद्यपि यह बख़ूबी जानता था कि शातिर सलमा के प्रेमियों में से है, और कच्चा प्रेमी भी नहीं। सलमा भी उसको कुछ-न-कुछ चाहती ही है। इसी से वह सलमा को एक क्षण के लिये भी अकेली न छोड़ता था। इधर शातिर भी यह चाहता था कि सलमा सलीम के हाथ न लगे, चाहे बरबाद हो जाय। इसके लिये वह बड़े-से-बड़ा षड्यंत्र रचने को तैयार था।

आज जब हुसेन क़िले के दक्षिणी छोर पर बर्ख़ास्तगी का परवाना लिए उदास पड़ा था, तो शातिर ने जाकर पूछा—"कहो हुसेन, यह मनहूसियत कैसी?" हुसेन ने आँखों के आँसू पोछकर उसके हाथ पर परवाना रख दिया। शातिर ने उसे पढ़ा और फिर कारण पूछा। उसने सब बता दिया, और रुँधे कंठ से कहा—"बोलो, मैं अब क्या करूँ?"

शातिर हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—"पगले कहीं के, यह भी कोई हुक्मनामा है! तू शाह साहब के पास जा।"

"मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ?"

"देख, मैं बताता हूँ।" शातिर ने एक नई योजना बनाकर उसे समझा दिया, और फिर मस्ती से कहा—"इन बदमाशों से इस तरह काम नहीं चलता, इनके लिये तो 'मियाँ की जूती, मियाँ का सिर' चाहिए।"

शातिर की योजना सफल हुई। उसने वह दृश्य सैयद साहब को दिखा दिया कि उनकी मूँछें नीची हो गईं। हज़रत सलीम भी जान गए कि जिस पर वह क़ुरबान हो रहे हैं, वह किसी दूसरे पर फ़िदा है।

अपनी इस अभूतपूर्व सफलता पर शातिर को अत्यधिक प्रसन्नता थी। वह आत्मविभोर होकर हुसेन की पीठ ठोंक रहा था। दोनो ख़ुशी-ख़ुशी तंबू में आए। शातिर ने हुसेन को मिठाई खिलाई। पान दिया। एक बार फिर उसे कसकर बाँहों में बाँध लिया।

हुसेन भी अपनी विजय पर कम प्रसन्न न था। फिर भी वह आश्चर्य-चकित था, और उन रहस्यों को समझ नहीं पा रहा था, जो कल से घटित हो रहे थे।

उसने शातिर से पूछा—"अच्छा शातिर, यह बताओ कल आया कौन था ?"

"कहाँ ?"

"वहीं, गंगा के किनारे, तंबू में।"

"अच्छा !" शातिर ने आँखें मटकाते हुए कहा—"बेटा, तुम जानो, तुम्हारी सलमा जाने, मैं क्या जानूँ।"

"तुम जानते हो," हुसेन ने शातिर की हथेली दबाते हुए कहा। शातिर प्रत्युत्तर में केवल मुस्किराकर रह गया।

वास्तव में बात यह थी कि इधर जब से शाह शर्की कड़े आए थे, तब से सलमा और सलीम गंगा के किनारे तंबू में आनंद मना

रहे थे। यह बात शातिर को खटक रही थी। वह यह नहीं चाहता था कि उसकी माशूका के साथ उसका प्रतिद्वंद्वी इस प्रकार ऐशो-आराम करे। फल-स्वरूप उसने सलमा के रूप, यौवन की प्रशंसा करके गुप्त रूप से राजा डल को सूचित कर दिया था। इस सूचना के पीछे सलीम की हत्या एवं सलमा के अपहरण की चाल छिपी थी। दुर्भाग्य-वश सलीम उस दिन गंगा-तट पर टहलने गया ही नहीं। राजा डल ने सलमा का अपहरण भी नहीं किया। शातिर की योजना अधूरी ही रह गई। इसलिये वह राजा डल पर भी नाराज़ था। किंतु आज उसका मन काफ़ी शांत था, क्योंकि एक नया गुल खिलाकर किसी-न-किसी प्रकार वह अपने लक्ष्य के निकट पहुँच चुका था।

इधर राजा डल भी सलमा के रूप, यौवन और आकर्षक व्यक्तित्व के प्रति प्रभावित हो चुके थे।

जब हुसेन और शातिर तंबू में बैठे थे, तो उन्होंने देखा कि सूबेदार अजीजुद्दीन और सलीम एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बातें करते मानिकपुर की ओर चले जा रहे हैं।

---

[४]

सावित्री ने अपने कक्ष में, जिसे एक छोटी-सी कोठरी ही कहना उचित होगा, पहुँचकर सांध्य-दीप जलाया। कमरे को साफ़ किया। सामान यथास्थान रक्खा। धूल-भरी चारपाई की गर्द को मोटे डंडे से झाड़ा और उस पर एक गंदा, मटमैला कालीन छोड़ दिया। संदूक़ खोलकर एक सफ़ेद चादर निकाली। उसे कालीन के ऊपर बिछाकर वह बाहर निकल गई। पास ही अन्य परिचारिकाओं एवं नौकरों की कोठरियाँ थीं। किंतु वह किसी भी कोठरी में नहीं गई। सीधे, कोठरियों को पार करती हुई, वह क़िले के फाटक पर जा पहुँची। फाटक से मिली हुई नंदू द्वारपाल की कोठरी थी। कोठरी में दीपक जल रहा था। कपाट बंद थे। अंदर का धुआँ एवं प्रकाश खिड़की से बाहर निकल रहा था। सावित्री थोड़ा-सा ठिठकी और फिर द्वार की साँकल खटखटाती हुई बोली—"नंदू दादा।"

"कौन?" नंदू ने हाथ की अंतिम रोटी तवे पर छोड़ते हुए कहा।

"मैं हूँ।" सावित्री ने कहा—"द्वार तो खोलो।"

"आया बेटी।" नंदू ने बढ़कर द्वार खोल दिया। सावित्री कोठरी में घुस गई। कोठरी के अंदर का मँडराता हुआ धुआँ द्वार खुलते ही बाहर निकल पड़ा। सावित्री आँखें मींचती हुई पास की चारपाई पर पैर टेककर खड़ी हो गई। नंदू की आँखों से धुएँ की कड़ुवाहट से पानी बह रहा था, और वह बार-बार आँखें मींच रहा था।

"बैठ बेटी, धुआँ तो बहुत है।" कहकर नंदू ने सावित्री की ओर देखा। वह अब भी चारपाई पर पैर टेके खड़ी थी। नंदू ने

धीरे से कहा—"आज दिन में फ़ुरसत ही नहीं मिली, इसी से इस समय यह झंझट करना पड़ा, अन्यथा मैं दोपहर में ही दोनो वक़्त का खाना बनाकर रख देता हूँ। बार-बार की परेशानी से छुट्टी मिली रहती है।"

"तुम्हें इस जीवन में कभी भी फ़ुरसत न मिलेगी", सावित्री ने खीझकर कहा—"कितनी बार कह चुकी हूँ कि भाभी को ले आओ, और आराम से रहो। मगर तुम हो कि........अरे, उधर तो देखो, बटलोही की दाल में मेंढक बोल रहे हैं!" कहती हुई सावित्री हँस पड़ी।

नंदू ने चौंककर चूल्हे की ओर देखा, गमछे के छोर से आँखें पोंछीं, और कटोरी का गरम पानी दाल में छोड़ते हुए कहा—"हाँ बेटी, ध्यान ही नहीं रहा। देखो न, दाल जल गई।" और वह चिमचे से दाल के कुछ कण निकालकर चुटकी से मसलने लगा।

"किसका-किसका ध्यान रहे।" सावित्री ने व्यंग्य किया—"घर का कि फाटक का, रोटी का कि दाल का, अपना कि मेहमानों का; सभी का भार तो तुम्हारे ऊपर है। अच्छा, मैं चली।" कहती हुई सावित्री उठ खड़ी हुई। उसे जाते देखकर नंदू ने कहा—"जा रही हो सावित्री ?"

"हाँ, अब चली, मुझे भी यही 'कर्म' करना है।" सावित्री ने यों ही कह दिया।

"अच्छा जाओ" नंदू बोला—"गजराज का खाना न बनाना, उसका भी मैंने बना लिया है। आता ही होगा। गंगा-तट पर किसी महात्मा के पास गया है।"

'महात्मा' का नाम सुनते ही सावित्री जल-भुनकर राख हो गई, और रुखाई से बोली—"जब वह तुम्हारी कोठरी में नहीं मिले, तभी मुझे संदेह हो गया था कि वह औघड़ बाबा के पास लड़का-लड़की

माँगने गए होंगे। उनके सोने का भी यहीं प्रबंध कर देना, समझे! मेरे यहाँ जगह नहीं है।" कहती हुई सावित्री भी बाहर निकल गई। थोड़ी दूर चलकर फिर उल्टे पैरों लौट आई, और बोली—"नंदू दादा!"

"कह न, क्या कहती है?"

"कान में सुनो।" सावित्री ने शरमाते हुए कहा।

"मै नहीं सुनता" नंदू बोला—"जो कुछ कहना है, कह, कोई बहरा थोड़े हूँ।"

सावित्री मुस्किरा उठी और फिर धीरे से बोली—"एक तकिया दे दो।"

नंदू ने सावित्री की ओर मुस्किराते हुए देखा। सावित्री ने पलकें धरती की ओर झुका लीं। नंदू उठा और उसने बिछावन के नीचे से एक पुराना तकिया निकालकर सावित्री को दे दिया। वह उसे बग़ल में दबाकर इठलाती हुई अपनी कोठरी में चली गई।

थोड़ी रात बीतने पर गजराज औघड़ बाबा के दरबार से वापस आया। उसने आते ही नंदू से अपने घोड़े के दाना-पानी के विषय में पूछा। नंदू ने लोटे में पानी भरकर उसे देते हुए कहा—"लो, हाथ-पैर धोओ, भोजन तैयार है, घोड़े का प्रबंध हो चुका है। वह घुड़सार में सुरक्षित है।"

गजराज ने कपड़े उतारे। हाथ-पैर धोए, और फिर लकड़ी के पाटे पर बैठकर थाली की प्रतीक्षा करने लगा।

नंदू ने गजराज की थाली परोसकर खिसका दी। थाली अपनी ओर खींचकर गजराज ने कहा—"अपनी थाली भी परोस लो, तब दोनो साथ-साथ बैठकर खायँ।" नंदू ने अपनी थाली परोसी, अचार निकाला, और फिर दोनो बैठकर खाने लगे। बातचीत के दौरान में नंदू ने बताया कि सावित्री आई थी, तुम्हें पूछ रही थी।

"तो तुमने क्या कहा ?" गजराज ने चौंकते हुए पूछा।

"कहा क्या !" नंदू बोला—"यही बताया कि कहीं टहलने गए हैं।" नंदू गजराज के मन का भाव ताड़ गया था।

नंदू के इस उत्तर से गजराज को विश्वास नहीं हुआ। उसके मन में संदेह उत्पन्न हो गया। वह अच्छी तरह जानता था कि सावित्री 'औघड़-बाबा' का नाम लेने से ही आग-बबूला हो जाती है। वह मौन हो गया तथा मन-ही-मन कुछ सोचने लगा।

भोजन करके गजराज सावित्री की कोठरी की ओर चला, और नंदू अपनी ड्यूटी बदलने के लिये फाटक पर चला आया।

जब गजराज सावित्री की कोठरी में पहुँचा, तो उसने देखा, मंद-मंद दीपक जल रहा है। चारपाई बिछी हुई है। सावित्री बैठी पान लगा रही है। उसे देखते ही सावित्री उठकर खड़ी हो गई। गजराज चारपाई पर बैठ गया। सावित्री ने पान लपेटा और गजराज को देते हुए कहा—"माँग आए बेटा-बेटी !"

प्रत्युत्तर में गजराज केवल मुस्किराकर रह गया।

पान का एक बीड़ा अपने मुख में रखकर दूसरा सावित्री की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"लो, तुम भी खाओ।"

"मैं नहीं खाती।" आँखें मटकाती हुई सावित्री बोली—"तुम्हीं खाओ।" किंतु गजराज न माना। उसने पान का बीड़ा सावित्री के मुख में ठूँस दिया। सावित्री अपने आपमें सिमटकर रह गई। लजाती हुई धीरे-से बोली—"तुम यहीं आराम करो, मैं अभी आती हूँ।"

जब तक गजराज कुछ उत्तर दे कि वह कोठरी से बाहर निकल गई। गजराज लेट गया।

अपनी कोठरी से निकलकर सावित्री क़िले के भीतर चली गई। महाराज के शराब पीने के कमरे में, जिसका नाम उन्होंने 'मधु-

कक्ष' रक्खा था, पहुँचकर उसने दीपक जलाया। सुराही भरी। सुरा-चषकों को साफ़ किया, उन्हें यथास्थान रक्खा। पान लगाया। उन्हें गीले कपड़े में लपेटकर तश्तरी में रख दिया। अगरु से कमरे को सुवासित किया। एक बार पुनः सब वस्तुओं को ध्यान से देखकर वह बाहर निकल आई। यह उसका दैनिक कार्य था।

जब वह कक्ष के द्वार बंद करके बाहर की ओर जा रही थी, तब उसने सुना कि महाराज और रानी वासुमती धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। कक्ष का द्वार बंद था। धीमी-धीमी आवाज़ बाहर निकल रही थी।

सावित्री दरवाज़े के पास सिमटकर खड़ी हो गई, और बातें सुनने लगी। महाराज कह रहे थे—"अब तुम्हीं कोई उपाय सोचो, मेरी तो समझ में कुछ नहीं आता!"

वासुमती खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर धीरे से बोली—"महाराज, यह कोई ज़रूरी नहीं कि जिसका बाप ग़द्दार निकल जाय, उसकी लड़की भी धोख़ेबाज़ ही होगी। कंचुकी पर इस प्रकार का संदेह करना व्यर्थ है।" यह बात बड़ी रानी ने ऊपर से ही कही थी, मन के भीतर कुछ और ही था। वह भली भाँति जानती थीं कि महाराज कंचुकी को कितना अधिक प्यार करते हैं।

"हाँ, यह बात तो ठीक है।" महाराज ने उदास मुद्रा में कहा—"यदि कंचुकी ने भी विश्वासघात किया, तब?"

"तब क्या?" बड़ी रानी ने कहा—"मैं कहीं चली थोड़े जाती हूँ, एक बार में ही काँटे को मसलकर रख दूँगी।"

महाराज मुस्किराकर वासुमती की ओर देखने लगे। उसका चेहरा कठोर हो गया था। छिपा हुआ आंतरिक प्रतिशोध उभर आया था, और वह कह रही थी—"यों तो कंचुकी में कोई ऐसी बात नहीं, किंतु एक दुर्गुण अवश्य है।"

"क्या कहा ?" महाराज ने चौंकते हुए पूछा—"दुर्गुण !"

"हाँ।" बड़ी रानी ने उत्तर दिया—"वह निर्लज्ज है। आपके रनिवास में और भी तो रानियाँ हैं, मगर उनकी छाया तक कोई नहीं देख पाता ! मझली रानी लक्ष्मी का मुँह मैंने स्वयं आज तक ठीक से नहीं देखा। कितने सदाचार से रहती हैं वे सब ! मगर कंचुकी ! हे भगवान् !" कहकर बड़ी रानी ने एक लंबी साँस ली, और फिर महाराज की ओर देखकर कहा—"क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता ! कहीं छत पर, कहीं आँगन में ! ऐसे घूमा करती है, जैसे वह रानी नहीं, यहाँ की लड़की हो। आज छत पर सावित्री से हँस-हँसकर परिहास कर रही थी। मैंने दोनो को बहुत डाँटा। आप स्वयं सोचिए, कहीं परिचारिकाओं से परिहास किया जाता है ! ऐसा लगता है, जैसे सावित्री परिचारिका नहीं, उसकी बहन हो, सहेली हो।"

"सावित्री के साथ क्या हुआ ?" महाराज ने जैसे सोते से जागकर पूछा। वह कुछ सोच रहे थे।

"कुछ नहीं।" बड़ी रानी ने कहा—"रानी रानी की भाँति रहे, परिचारिका परिचारिका की तरह। छत पर चढ़कर आने-जानेवालों से दृष्टि-विलास करने से क्या लाभ !" इतना कहकर बड़ी रानी ने महाराज की ओर देखा। उनके चेहरे का रंग बदल रहा था। वह भाँप गई। बातों को मोड़ देती हुई बोली—"फिर भी इसमें कोई ऐसी बात नहीं। कंचुकी में अभी बचपन है। धीरे-धीरे गंभीरता आ ही जायगी। मगर सावित्री को तो सोचना चाहिए। मेरी भी परिचारिका है। अन्य रानियों के भी हैं। क्या हिम्मत कि शीश उठाकर बात करें।"

इस पर महाराज कुछ न बोले। उन्होंने बातों का क्रम बदलते हुए कहा—"छोटे राजा ने जो पत्र भेजा है, उसे तुमने पढ़ ही लिया।

इसमें अवश्य ही कुछ-न-कुछ रहस्य है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि कंचुकी रेवंत की ख़बर पाते ही अवश्य कुछ करेगी।"

"ऐसा न सोचिए!" बड़ी रानी ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"वह कुछ न करेगी। हाँ, सावित्री को आप अवश्य डाँट दीजिए।"

सावित्री यह सुनते ही काँप कर रह गई।

"यह कार्य तुम्हीं पर रहा।" महाराज ने कहा—"और कंचुकी की भी गति-विधि सतर्कता-पूर्वक देखती रहना। यदि कुछ संदेह जान पड़े, तो इसकी भी वही दशा करना, जो अमिता की की थी।"

प्रत्युत्तर में बड़ी रानी ने धीरे से कहा—"आप विश्वास कीजिए। अमिता की तरह इसे विष देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि पड़ी भी, तो मैं कहीं चली थोड़े जाती हूँ।" इतना कहकर वह चुप हो गई। महाराज उठ खड़े हुए।

"अमिता!" सावित्री के मस्तिष्क में एक झटका-सा लगा। कितनी भोली थी वह! गांडीव प्रदेश के राजा इंद्रसेन की एकलौती बेटी! मगर इसी पापिनी के कारण उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ा। अमिता का लंबा-छरहरा शरीर, लंबा मुख, हिरनी की-सी चंचल आँखें, और लंबे-सुनहरे केश! सावित्री की आँखों में उसका स्वरूप नाच उठा। यों उसका नाम शशिकिरण था, किंतु वह जहाँ रूपवती थी, वहाँ वीरांगना भी। जितना प्रेम उसे शृंगार से था, उतना ही अस्त्र-शस्त्रों से भी। संगीत और नृत्य में तो वह पारंगत थी ही। एक ही नारी में विविध गुणों एवं अमित रूपों को देख महाराज ने उसका नाम रख दिया था अमिता! और, तब से अमिता अमिता ही रही, शशिकिरण न हो पाई।......

उसी समय कक्ष का द्वार खुला। सावित्री दबे-पैरों निकल गई।

महाराज बाहर निकले, और 'मधु-कक्ष' की ओर चले गए। बड़ी रानी यथास्थान बैठी रहीं।

सावित्री का मन बहुत भारी हो उठा था। कुछ इन लोगों की बातें सुनकर और कुछ अमिता के स्मरण से। उसका हृदय धड़क रहा था। बड़ी रानी की नीचता पर उसे रह-रहकर क्रोध आ रहा था। वह चुपचाप बाहर निकल आई। जब वह बाहर जा रही थी, तब उसने देखा, गैलरी में कोई बेहोश पड़ा है। ध्वस्त-व्यस्त वस्त्र, बिखरे बाल, बेसुध शरीर, नशे में आरक्त मुख-मंडल—यह मझली रानी लक्ष्मी थी, जो मदिरा के नशे में अपने कक्ष तक नहीं पहुँच पाई थी। गैलरी में ही बेहोश होकर गिर पड़ी थी।

सावित्री ने लक्ष्मी की ओर देख घृणा से मुख फेर लिया। वह मन-ही-मन खीझकर कहने लगी—"यह हैं रानी लक्ष्मी!" जिनका आज तक मुख ही वासुमती ने नहीं देखा। चुड़ैल कहीं की!" वह दूसरे रास्ते से निकल गई।

रानी लक्ष्मी वहीं पड़ी रही।

जब सावित्री अपने कमरे में पहुँची, तो उसका मन घृणा, विद्वेष एवं आशंकाओं से परिपूरित था। गजराज अभी तक जग रहा था। कोठरी में डीयट पर रक्खा दीपक टिमटिमा रहा था। सावित्री को देखकर गजराज ने पूछा—"बड़ी देर लगा दी सावित्री! कहाँ रहीं?" यह सुनकर सावित्री ने बनावटी रोष दिखाते हुए कहा—"क्या बात है, नींद नहीं आ रही है?"

"नहीं।" गजराज ने कहा—"अकेले कहीं नींद आती है?"

"अच्छा!" सावित्री ने व्यंग्य किया—"यह क्यों नहीं कहते कि मस्तिष्क में औघड़ बाबा का मरघट-घाट घूम रहा है। डर तो नहीं गए?"

गजराज केवल मुस्किरा कर रह गया।

सावित्री ने कपड़े बदले। उतारे हुए वस्त्रों को यत्न से खूँटी पर टाँग दिया। वह गजराज के पैरों के पास आकर बैठ गई।

"थके होंगे, लाओ पैर दबा दूँ!" सावित्री ने गजराज के पैर अपनी ओर खींचते हुए कहा। गजराज उठ बैठा। वह अपने पैरों को समेटते हुए बोला—"रहने दो पैर दबाने को, ये सुंदर-सुंदर हाथ..........."

"अच्छा! अच्छा!! सावित्री ने मुँह बनाया। रहने दीजिए तारीफ़ करने को। वर्ष-भर में दो-चार बार आ गए, तारीफ़ कर दिया, और चलते बने।"

गजराज मुस्किरा उठा। सावित्री के कपोलों पर दृष्टि गड़ाकर बोला—"तो चलो न, वहीं रहो; यह उलाहना ही मिट जाय।"

"मैं नहीं जाती!" सावित्री ने आँखें मटकाते हुए कहा—"यहाँ छोटी रानी हैं, नंदू भैया हैं। वहाँ कौन है? तुम्हीं न यहीं चले आओ।"

"मैं जानता हूँ, छोटी रानी को तुम छोड़ नहीं सकतीं।" गजराज बोला—"तो मैं ही छोटे राजा को क्यों छोड़ दूँ?"

"न छोड़ो बाबा, कौन छुड़ाता है तुम्हारे छोटे राजा को।" सावित्री ने बात बदलते हुए कहा—"आज क्या समाचार लाए?"

"आज का समाचार बहुत ख़राब है!" गजराज ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मैं भी तो कुछ सुनूँ?" सावित्री ने उसका हाथ हटाते हुए प्रश्न किया।

गजराज ने हाथ खींच लिया, और सावित्री की नरम-नरम कलाई दबाकर उसने पूछा—"कुछ खाना-पीना भी होगा?"

"पीने का नाम न लीजिए।" सावित्री ने गंभीर होते हुए कहा—"खाना तो खा ही चुके हो।"

"मैं तो खा चुका।" गजराज बोला—"और तुम ?"

"मेरे भूख नहीं है।"

"और प्यास ?"

"छिः ! सावित्री ने मुँह बनाया।" गंदी चीज़ों का भले आदमी पान नहीं करते।"

"अच्छा, अच्छा।" गजराज ने व्यंग्य से कहा—"मैं समझता हूँ कि छोटी रानी ने तुम्हें भगतिन बना डाला है, अब केवल तिलक और एक कमंडलु की ज़रूरत है। हाथ में सुंदर रुद्राक्ष की माला भी हो। ठीक है न !"

"मैं तिलक, माला, कमंडलु कुछ नहीं जानती।" सावित्री ने रोष से कहा—"अगर श्रीमान्‌जी को पीना है, तो चले जाइए, हौज़ में मदिरा भरी है। मगर गैलरी से न जाना।"

"क्यों ?"

"वहाँ एक चुड़ैल पड़ी है।" कहती हुई सावित्री मुस्किरा उठी, और फिर आँचल के छोर से चाभियों का गुच्छा खोलकर गजराज की ओर फेंकती हुई बोली—"यह लीजिए हौज़ के द्वार की चाभी। मगर यहाँ न आना, मैं तुम्हारे सोने का प्रबंध नंदू दादा की कोठरी में किए देती हूँ।" कहती हुई सावित्री उठ खड़ी हुई। वह उठकर बाहर जाना ही चाहती थी कि गजराज ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। मदिरा-पान के लिये वह न जा सका।

सावित्री उसकी बलिष्ठ बाहों में दबकर रह गई। वह शरमाती हुई बोली—"यह क्या शैतानी कर रहे हो ! आज का समाचार तो बताओ। मैं जानती हूँ, इस कोठरी में आने पर तुम्हारा दिमाग़ ठीक नहीं रहता।"

"बड़ा ग़ज़ब हो गया सावित्री !"

"क्या हुआ ?" सावित्री ने उसके बालों से खेलते हुए पूछा।

"बहुत बड़ा षड्यंत्र रचा गया है ?"

"षड्यंत्र !" सावित्री ने गजराज के बालों से हाथ हटाते हुए पूछा—"किसके विरुद्ध ?"

"हाथ क्यों हटा लिया।" गजराज बोला—"उसी तरह उँगलियाँ बालों में उलझा लो, तब बताऊँ।"

"धत् !" सावित्री के मुँह से अचानक ही निकल गया। अपनी भूल को मन-ही-मन महसूस करती हुई वह गजराज की ओर देखने लगी। गजराज मुस्किरा रहा था। सावित्री की शरमाई-सी हथेली पुनः उसके बालों में उलझ गई।

गजराज ने मादक स्पर्श पाकर मद-भरी आँखों से एक बार सावित्री की ओर देखा, और सावित्री ने गजराज की ओर। दोनो की प्यासी निगाहें एक-दूसरे की आँखों में समाकर रह गईं। दोनो मुस्किरा उठे। दोनो के शरीर में बिजली का-सा प्रकंपन हुआ। चपला चमककर दोनो को चकाचौंध कर गई। उसी चकाचौंध में गजराज ने सावित्री के अरुण कपोल और लाल कर दिए।

"यह हरकत !" सावित्री रूठ गई। "जो मैं पूछती हूँ, वह तो बताते नहीं, बेकार के काम बहुत आते हैं।"

"क्या बताऊँ सावित्री !" गजराज ने धड़कते हृदय को आश्वस्त करते हुए कहा—"बहुत ख़राब समाचार है।"

"ख़राब समाचार है, ख़राब समाचार है !" सावित्री ने खीझकर कहा—"कुछ समाचार भी तो सुनूँ कि ख़राब समाचार है, बस, हो गया ! मुझे तो ऐसा लगता है, आपका मन स्वयं ख़राब हो गया है। है न यही बात ? बोलो !" सावित्री ने गजराज की ठुड्डी पकड़कर उठाते हुए कहा।

गजराज प्रत्युत्तर में केवल मौन ही रहा। उसने सावित्री की भाव-भंगिमा प्यासे नयनों से देखते हुए एक ही झटके में गमछे के छोर से दीपक बुझा दिया। छोटी-सी कोठरी में अँधेरा सायँ-सायँ करने लगा।

"यह क्या किया?" सावित्री ने चौंककर पूछा।

"कुछ तो नहीं।" गजराज ने उसे अपनी बाहों में भरते हुए उत्तर दिया।

"फिर वही बदमाशी!" कहती हुई सावित्री अपने को छुड़ाने लगी।

"कैसी बदमाशी?" गजराज ने अपने जलते होंठ सावित्री के अधरों पर रखकर उसे अपनी ओर खींच लिया। सावित्री उसके वक्षःस्थल में समा गई। उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ गए थे।

रात काफ़ी हो चुकी थी। आस-पास की कोठरियों में सन्नाटा छाया था। पहरेदार क़िले के चारो ओर चक्कर काट रहे थे, चिल्ला रहे थे। गजराज सावित्री को धीरे-धीरे बता रहा था—"मध्य जनपद में भार शिवों का पतन हो गया है। अब उनके क़िलों पर बैस-वंश के राजा सेढ़ूराय का झंडा लहरा रहा है। हज़ारों पराजित भार शिवों के दल-के-दल यहाँ आ रहे हैं। कहा जा रहा है, छोटी रानी के पिता रेवंत ने शत्रुओं से गुप्त रहस्य बताकर भार शिवों का सर्वनाश करा दिया, किंतु यह प्रचार-मात्र है, वास्तविकता कुछ और ही है।

"वास्तविकता क्या है?" सावित्री ने उत्कंठा से प्रश्न किया।

"रेवंत बेचारा बदनाम अवश्य कर दिया गया है, मगर वह दोषी नहीं। इसमें संपूर्ण दोष छोटे राजा का है। उन्हीं के षड्यंत्र से राज्य-क़िला—सब चौपट हो गया; और कलंक लगा रेवंत पर! वह साफ़ बच गए।

"छोटे राजा ने यह सब क्यों किया ?" सावित्री ने आश्चर्य से पूछा ।

"कंचुकी रानी से बदला लेने के लिये ।"

"क्या कहा, कंचुकी रानी से बदला लेने को ! छोटी रानी ने उनका क्या बिगाड़ा है ?"

"हाँ-हाँ, कंचुकी रानी से बदला लेने को ! तुम्हें यह नहीं मालूम कि छोटे राजा बाल कंचुकी रानी से, महाराज के साथ विवाह होने के पूर्व से ही, प्रेम करते थे, और उसे अपनी रानी बनाना चाहते थे । उनके इस प्रस्ताव को रेवंत और कंचुकी दोनो ने ठुकरा दिया था । प्रेम एकांगी था । छोटे राजा जितना उस पर प्राण न्योछावर करते थे, उतना ही वह उनसे घृणा करती थी ।

"यह क्यों ?" सावित्री ने प्रश्न किया ।

"कंचुकी रानी का स्वभाव तो तुम जानती ही हो", गजराज ने गंभीर होते हुए कहा—"कितना संयम, कितनी पवित्रता और कितनी निर्मलता है उसके जीवन में । भला ऐसी लड़की शराब पीकर बेहोश रहनेवाले व्यक्ति को अपने पति के रूप में कैसे स्वीकार करती ?"

"तो क्या जिन्हें स्वीकार किया है, वे दूध के धोए हैं ?" सावित्री ने व्यंग्य से कहा ।

"इसमें कंचुकी रानी का क्या दोष ?" गजराज उसकी शंका का समाधान करते हुए बोला—"यदि कोई पुरुष किसी नारी को धोखे से फँसा लावे, तो इसमें किसका दोष है ?"

"मैं तुम्हारी बात नहीं समझी ।" सावित्री ने कहा—"पहेली न बुझाओ, साफ़-साफ़ बात कहो ।"

"देखो सावित्री !" गजराज बोला—"विवाह के पूर्व राजा डल ने इस बात की प्रतिज्ञा की थी कि मैं मदिरा-पान न करूँगा,

और शिवों के पुराने आदर्शों पर चलूँगा, तभी कंचुकी रानी ने उनसे विवाह किया था। अब विवाह हो जाने के पश्चात् महाराज यदि अपने वचनों को पूरा न करें, तो महारानी कंचुकी का क्या अपराध!'

"पुरुष-जाति की यही तो शोभा है।" सावित्री ने व्यंग्य करते हुए कहा—"छोटी रानी के रूप और यौवन के वशीभूत हो महाराज ने प्रतिज्ञा की, शपथ खाई, और जब उन्हें पा गए, तो सब कुछ भूल गए। तुम लोगों का यही आदर्श तो मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"यह आवश्यक नहीं कि तुम्हें सब बातें अच्छी ही लगें।" गजराज ने उसे छेड़ते हुए कहा।

"मुझे भले ही न अच्छी लगें, मगर दुनिया को तो अच्छी प्रतीत हों।"

"दुनिया भी ऐसी ही है सावित्री!" गजराज बोला—"'यथा राजा, तथा प्रजा' दुनिया का राजतंत्र में इतना ही अस्तित्व है।"

"आगे कहो।" सावित्री बोली—"शासन-पद्धति एवं नीति-शास्त्र पर मैं व्याख्यान नहीं सुनना चाहती, जो बता रहे थे, वही बताओ।"

"अच्छा, सुनो।" गजराज ने कहा—"नाराज़ न हो, वही बताता हूँ। वास्तव में बात यह है कि उक्त घटना के बाद से छोटे राजा कंचुकी रानी से जलन रखते हैं। इतनी जलन कि कोई अपने शत्रु से भी नहीं रखता। वह उसे किसी-न-किसी प्रकार मिटाना चाहते हैं। वह नहीं चाहते, उनके जीते-जी उनकी प्रेमिका किसी दूसरे के पास रहे। चाहे वह उनका बड़ा भाई ही क्यों न हो। यह उसी का परिणाम है, ग़द्दारी की उन्होंने स्वयं और बदनामी हुई

रेवंत की। तुम तो रेवंत दादा को अच्छी तरह जानती हो कि वह कितने आदर्श पुरुष हैं। वह इतना बड़ा अपराध नहीं कर सकते थे, यदि छोटे राजा उन्हें धोखे से मदिरा पिलाकर बेहोश न करवा देते। बेहोशी की दशा में रेवंत दादा राजा सेढूराय के हाथ लग गए, और उनसे उन्होंने क़िले का संपूर्ण रहस्य बता दिया—"इतना कह-कर गजराज ने सावित्री की ओर निहारा। वह अत्यंत गंभीर हो गई थी। गजराज ने धीरे से कहा—"और अब कंचुकी रानी को मिटाने के लिये महाराज को पत्र लिखा है।"

"तुम्हें कैसे मालूम कि पत्र लिखा है!" सावित्री ने एक लंबी साँस छोड़ते हुए पूछा।

"श्यामा ने बताया है।" गजराज मुस्किराते हुए बोला—"तुम जानती हो कि उनकी अंतरंग परिचारिका श्यामा है, और श्यामा मुझसे कोई बात छिपाती नहीं।"

श्यामा का नाम सुनते ही सावित्री के अधरों पर मुस्कान नाच उठी। वह आँखें नचाकर बोली—"हाँ-हाँ, श्यामा तुमसे क्यों छिपावेगी, वह तो तुम्हारी·······।"

"चुप!" गजराज ने सावित्री का मुँह दबाते हुए कहा—"श्यामा ने मुझे काफ़ी सावधान कर दिया है, और यह भी कहा है कि कंचुकी रानी का अहित न होने पावे। अब इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। तुम छोटी रानी के साथ-साथ छाया की भाँति रहना, अन्यथा हो सकता है, वह बेचारी राजसी षड्यंत्रों का शिकार हो जाय।"

"महाराज कोई बुद्धू थोड़े ही हैं, वह छोटे राजा के षड्यंत्रों को ख़ूब समझते होंगे।"

"नहीं सावित्री!" गजराज बोला—"वह कुछ भी नहीं जानते। उन्हें इस बात की भी ख़बर नहीं कि छोटे राजा कंचुकी रानी से

प्रेम करते थे। यह सब बहुत ही गुप्त रूप से, महाराज की आँख बचाकर, हुआ था। केवल बड़ी रानी वासुमती ही इन सब रहस्यों से परिचित हैं या फिर श्यामा, क्योंकि श्यामा कंचुकी रानी की सहेली थी।"

सावित्री मौन हो गई। उसकी आँखों के समक्ष शाम का वह दृश्य एकबारगी नाच उठा, जब रानी वासुमती महाराज से मंत्रणा कर रही थी। उसने एक लंबी साँस छोड़कर कहा—"श्यामा से कह दीजिएगा कि वह निश्चिंत रहे। जब तक सावित्री जीवित है, छोटी रानी का बाल बाँका न होगा।"

"तुमसे यही आशा थी।" कहकर गजराज उठ बैठा, और बाहर निकल आया। शुभ्र-नीला आकाश तारों से जगमगा रहा था। ओस की बूँदों से हरी-हरी घास भीग चुकी थी। सप्तर्षि-मंडल ध्रुवतारे की आधी प्रदक्षिणा कर चुका था। गजराज लौट आया, और चारपाई पर लेटकर सो गया।

सावित्री को रात-भर नींद न आई। उसकी आँखों में अमिता के विष पान की घटना नाच रही थी। एक-एक दृश्य स्मृति-पटल पर स्वप्न-से उभर और विलीन हो रहे थे। उधर रात ढल रही थी।

"तो क्या कंचुकी रानी की भी यही दशा होगी?" उसने अपने आप प्रश्न किया, और चौंककर उठ बैठी।

गजराज प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा था। सावित्री थोड़ी देर तक बैठी रही, और फिर उठकर बाहर निकल गई।

प्रभात होने में अब अधिक देर न थी।

---

[५]

तुग़लक सैयद हाथ में नंगी तलवार लिए अपने कक्ष में विराजमान थे। उनका चेहरा तमतमा रहा था। अधर फड़क रहे थे। भुजाएँ तड़फड़ा रही थीं। आँखें अंगार बरसा रही थीं। संपूर्ण शरीर में एक प्रकंपन-सा था, और रह-रहकर ऐसा लग रहा था, मानो वह सामने खड़ी सलमा को चबा जाना चाहते हैं।

कक्ष के संपूर्ण द्वार बंद थे। साँझ होने ही वाली थी। नमाज़ की अज़ान के पहले ही सैयद साहब कुछ-न-कुछ निर्णय कर देना चाहते थे। आज उनकी तलवार उनके ही पाले-पोसे रक्त की प्यासी हो रही थी। वह अपने ही हृदय के टुकड़े के ख़ून से अपना हाथ रँगने जा रहे थे। सलमा उनके सामने नत-मस्तक खड़ी थी। रोते-रोते उसके सौम्य मुख-मंडल पर कुछ-कुछ सूजन-सी आ गई थी। नयनों के कोर कट गए थे। पलकें फूल आई थीं, और उनसे रह-रहकर आँसू छलक रहे थे। उन उमड़ते हुए आँसुओं को वह दुपट्टे के छोर से सैयद की आँख बचाकर पोंछ लेती थी।

"सलमा !" सैयद साहब ने गंभीर आवाज़ में पुकारा।

सलमा मौन रही।

"इस तरह आँसू बहाने से कोई फ़ायदा नहीं।" सैयद ने गरजकर कहा—"बोलती क्यों नहीं, तूने शाही ख़ानदान की इज़्ज़त पर दाग़ लगाया है। मैंने तुझे जितनी आज़ादी दे रक्खी थी, तूने उसका नाज़ायज फ़ायदा उठाया है। तेरी इन नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त हरकतों का फ़ैसला मैं नहीं, मेरी तलवार करेगी। देख इधर !"

सलमा काँप उठी। उसकी आँखों के आँसू और तेज़ हो गए थे।

इसके पेश्तर कि मैं तेरे ऊपर हाथ उठाऊँ," सैयद साहब ने कुछ रुककर आवेश में कहा—"तुझे दो बातों का जवाब देना होगा।" इतना कह सैयद साहब ने सलमा की ओर देखा। सलमा की मासूम पलकें थोड़ा ऊपर उठीं। भोलापन सिहरकर रह गया।

सैयद साहब ने उसी वेग के साथ कहा—"हुसेन के ऊपर छेड़खानी करने का तूने झूठा इलज़ाम क्यों लगाया ? समझती है, शाह शर्की की सल्तनत में झूठा इलज़ाम लगाने की सज़ा क्या है ?"

सलमा अब भी पूर्ववत् मौन रही। सैयद साहब ने उसकी ख़ामोशी पर झुँझलाते हुए कहा—"सज़ा-ए-मौत !" क़ानून यह नहीं देखता कि कौन किसका बाप है, और कौन किसकी लड़की ! समझी ! कल तक जिस तलवार से मैंने दुश्मनों के शीश उतारे थे, आज वही तलवार तेरी गर्दन चाक करने को तड़प रही है। बोल, कल तेरे तंबू में कौन आया था ?" कहते हुए सैयद साहब सलमा के ऊपर आँखों से चिनगारियाँ बरसाने लगे।

यह असंभावित बात सुनते ही सलमा की रूह फ़ना हो गई। उसे ऐसा लगा, जैसे उसे किसी षड्यंत्र का शिकार बनाया जा रहा है। उसके होंठों में कंपन हुआ, बंद अधर खुल गए।

उसने रुँधे कंठ से भर्राई आवाज़ में कहा—"मैंने हुसेन पर कोई इलज़ाम नहीं लगाया—न झूठा, न सच्चा।" इतना कहकर उसने पुनः शीश झुका लिया। आँखों के आँसू फ़र्श पर टपक पड़े।

"क्या कहा ?" सैयद साहब ने बादलों की-सी गुरु-गंभीर गर्जना करते हुए पूछा—"आज शाही दरबार में उसने जो कुछ कहा है, क्या वह ग़लत है ?"

"मैं नहीं जानती, उसने क्या कहा ?" सलमा ने विनम्र स्वर से उत्तर दिया।

सैयद साहब ने कुछ सोचकर पुनः प्रश्न किया—"कल रास्ते में उसने तेरे साथ छेड़ख़ानी की थी ?"

"नहीं।"

"तो फिर अपनी वाल्दा से यह बात कहकर उसे क्यों बर्ख़ास्त कराया ?"

"मैंने वाल्दा से केवल बर्ख़ास्तगी के लिये कहा था, और कुछ नहीं।" सलमा के इस उत्तर से सैयद को अपने ऊपर झुँझलाहट आई। उन्होंने ज़ोर से पुकारा—"सदरुन !"

"आई सरकार।"

"यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं, बेगम साहबा को भेज दे।"

अब तक सलमा आश्वस्त हो चुकी थी। वह यह भी समझ चुकी थी कि उसके ख़िलाफ़ एक भीषण षड्यंत्र का सूत्रपात हो चुका है। वह उसका डटकर सामना करने के लिये अपने में साहस भर रही थी। उसी समय कक्ष का द्वार खुला। बेगम साहबा आ उपस्थित हुईं। उन्होंने सैयद साहब की ओर देखकर धीरे से कहा—"मुझे याद किया है ?"

"हाँ।" सैयद साहब ने बैठने का इशारा करते हुए पूछा—"इसने कल तुमसे क्या कहा था हुसेन की बाबत ?"

"यही कि हुसेन बदमाश है, घर में रखने क़ाबिल नहीं।" बेगम साहबा ने खड़े-खड़े उत्तर दिया।

"और तुमने मुझसे क्या कहा था ?" सैयद साहब ने बड़ी-बड़ी आँखें निकालते हुए पूछा।

"बेगम साहबा कुछ ठिठकीं, फिर बोलीं—"जब यह शाम को वापस आई, तो इसका चेहरा उतरा हुआ था। आँखों में आँसू थे।

देह में हरारत चढ़ी हुई थी। न इसने खाना खाया, न पानी पिया। केवल अपने बिस्तरे पर मुँह ढाँपे पड़ी रही। मैंने बहुतेरा मनाया, वजह पूछी, मगर यह न बाली, न डोली। अब मैंने ज़िद की, तो महज़ इतना कहा—"हुसेन बदमाश है, इसे बर्ख़ास्त करा दीजिए। मैंने समझा, सयानी लड़की है, आज अकेली ही हुसेन के साथ गई थी। आदमी का कौन ठिकाना? हो सकता है, हुसेन ने कुछ छेड़-ख़ानी की हो। शर्म के मारे कुछ न बताती हो। बाद में इसने यह भी बताया कि हुसेन तंबू तक इसके साथ गया भी नहीं। रास्ते में ही पीपल के पेड़ के नीचे बैठा रहा। इन्हीं सब वजूहातों से मैंने यह नतीजा निकाला कि शायद हुसेन ने सलमा को परेशान किया हो, नहीं तो सलमा उसे 'बदमाश' क्यों कहती? और यही सब मैंने आपसे बता दिया। चूँकि सलमा ने आज तक कभी हुसेन की शिकायत नहीं की। इसी से आज मैंने उस मुए को घर के भीतर भी नहीं घुसने दिया। क्यों, बात क्या है, जो आप इतना परेशान हैं?" कहकर बेगम साहबा ने सैयद साहब की ओर देखा।

"वाह रे नतीजा, और वाह री अक़्ल!" सैयद साहब खीझ उठे—"तुम लोगों ने अजीब तमाशा मचा रक्खा है। न आगे सोचती हो, न पीछे। जो मन में आया, कह दिया। जो चाहा, नतीजा निकाल लिया। दिमाग़ से यह न सोचा कि इसका नतीजा क्या होगा?"

बेगम साहबा के स्पष्टीकरण से सैयद साहब का आवेश कुछ ठंडा पड़ गया था। बात उनकी समझ में आ चुकी थी। उन्होंने बेगम साहबा की ओर देखकर कहा—"समझती हो इसका नतीजा क्या निकला?"

प्रत्युत्तर में बेगम साहबा सैयद साहब का मुख ताकने लगीं। सैयद साहब उनकी यह दशा देखकर बोले—"हुसेन ने शाही दरबार में,

सलीम की मौजूदगी में, शाह से बताया कि सलमा के तंबू में शाम को कोई आदमी आया था, और घंटों घुसा रहा। जब वह जाने लगा, तो मैंने उस पर गोली चलाई, मगर वह बचकर भाग निकला। न-जाने क्यों सलमा को मेरा गोली चलाना अच्छा न लगा, और उसने मुझे बर्ख़ास्त करा दिया, क्योंकि मैंने उसके........" कहते-कहते सैयद साहब की ज़बान बंद हो गई। फिर उन्होंने ज़ोरे से पूछा—"बोल, क्या यह सच है? मुझे तो इस पर यक़ीन नहीं हो रहा है?" हुसेन की इस गुस्ताख़ी पर सलमा तड़प उठी। सैयद साहब के एक-एक शब्द उसके कलेजे को पार कर गए। वह एक क्षण हत-प्रभ-सी सैयद साहब का मुख ताकती रही, और फिर एक लंबी-साँस छोड़कर बोली—"अब मैं शौक़ से मरने को तैयार हूँ, लेकिन पहले यह तलवार आप मुझे दे दीजिए, मैं हुसेन की बोटी-बोटी काटकर रख दूँ!"

सैयद साहब चौंक पड़े। उन्होंने बेगम साहबा की ओर देखा, और बेगम साहबा ने सलमा की ओर। वह आवेश में कह रही थी—"मुझे तंबू में अकेली पाकर जब डलमऊ का वह काफ़िर राजा डल मेरे साथ ज़बरदस्ती करने घुसा, तब यह हरामी का बच्चा पीपल के पेड़ के नीचे बैठा मस्ती ले रहा था। सब कुछ देखते हुए भी टस-से-मस न हुआ। अब बातें बघारता है....!"

"क्या कहा? राजा डल!" सैयद ने चौंककर पूछा।

"जी हाँ।" सलमा बोली—"राजा डल नहीं, चोट्टा डल। कल मेरे तंबू में घुस आया, और मेरा अपहरण करना चाहा, मगर इस कटार ने मेरे ख़ानदान की इज़्ज़त बचा ली, नहीं तो आज मैं शायद डलमऊ के क़िले में होती।" कहती हुई सलमा तमतमा उठी, और कटार निकालकर बोली—"मेरी इज़्ज़त बचानेवाली यह है! उस

काफ़िर को मैंने इसी के बल से निकाल बाहर किया। वह सेना और सिपाहियों के होते हुए भी मेरी परछाईं तक न छू सका! चलते-चलते मैंने उससे कह दिया कि इस अपमान का बदला मैं तुम्हारे क़िले की एक-एक ईंट गिरवाकर लूँगी। तुम्हारी क़ब्र पर ईद मनाऊँगी। वह मुझे हमला करने की चुनौती देकर चला गया।" इतना कहकर सलमा सैयद साहब की ओर देखने लगी। उसकी साँस फूलने लगी थी।

अपनी वीरांगना बेटी की मर्दानगी पर सैयद साहब का चेहरा खिल उठा। उन्होंने प्रेम से सलमा को छाती से लगाते हुए कहा—"जिओ बेटी! तुम्हारी इस बेइज़्ज़ती का बदला तुम्हारा बाप ज़रूर लेगा।" फिर वह सलमा की पीठ थपथपाते हुए बोले—"ख़ुदा का शुक्र है, शाही ख़ानदान की इज़्ज़त बच गई, नहीं तो तू अकेली उसका क्या बिगाड़ सकती थी। सुना है, उसके साथ, कई नावों पर, सिपाही भी थे?"

"जी हाँ।" सलमा कुछ गर्व से बोली—"तीन नावें सिपाहियों से खचाखच भरी थीं, और सब बंदूकें लिए थे।"

"या ख़ुदा!" सैयद साहब ने लंबी साँस खींचकर कहा—"और वह सुअर का बच्चा हुसेन बैठा रहा?"

"जी हाँ। जब वे जाने लगे, तब इसने गोली चलाई, मगर तब क्या फ़ायदा था?" सलमा ने आवेश में कहा—"वह वक़्त तो शाही ख़ानदान की इज़्ज़त पर क़ुर्बान हो जाने का था। कोई राजपूत होता, तो प्राणों पर खेल जाता, मगर यह हुसैन! क्या कहूँ इस पाजी को, कुछ कहा नहीं जाता।"

"हाँ बेटी!" सैयद ने कुछ गंभीर होकर कहा—"राजपूत क़ौम में यही तो एक ख़ुसूसियत है। देखूँगा उस बदमाश को! बोटी-बोटी काटकर रख दूँगा!"

संध्या हो रही थी। क़िले में अज़ान का स्वर गूँज उठा।

सैयद नमाज़ पढ़ने चल पड़े। उनकी घरेलू परेशानी तो दूर हो चुकी थी, मगर एक नई समस्या सामने आ गई थी। अंदर-ही अंदर वह यह समझते थे कि राजा डल को हराना कोई हँसी-खेल नहीं। उनका दिमाग़ उलझन में पड़ गया। भरों की जाति बहुत ही लड़ाकू होती है, और यह डल! या ख़ुदा! शाह शर्की भी उसके नाम से काँपते हैं। ६२६ हिजरी की वह घटना सैयद साहब की आँखों के सामने नाच उठी, जब बदरुद्दीन ने भार शिवों को मिटाकर डलमऊ पर क़ब्ज़ा करना चाहा था, किंतु उसके मंसूबे मन में ही दफ़न हो गए थे, और वह क़िले के उत्तर-पूर्व में बनी क़ब्र में सदा के लिये सो गया था।"* सैयद साहब काँप उठे। इस घटना के उपरांत किसी भी बादशाह की डलमऊ के क़िले पर हमला करने की हिम्मत न पड़ी। यह अजेय दुर्ग अपनी शान, मर्यादा एवं प्रतिष्ठा के साथ आज भी गर्व से सीना ताने खड़ा है।

"इसके बाद?" सैयद साहब ने अपने आपसे प्रश्न किया, और वह पुनः विचारों में बहने लगे—"जूनाशाह के सिपहसालार फ़ीरोज़ ने जौनपुर, जो कि उनका ही बसाया हुआ था, जाते समय डलमऊ में प्रवेश किया। उन्होंने भी इस क़िले को हथियाना चाहा। मगर उनकी भी हिम्मत न पड़ी। वह जीवन-पर्यंत डलमऊ के क़िले को हड़पने का स्वप्न देखते रहे, मगर उनका वह स्वप्न सत्य न हुआ। और आज? आज फिर वही समस्या आ पड़ी। सोचते-सोचते सैयद साहब मस्जिद तक पहुँच गए। उन्होंने अपना मन एकाग्र किया। हृदय को पवित्र बनाने का कोशिश की, और फिर वज़ू करके ख़ुदा की इबादत में लग गए।

सैयद साहब के चले जाने के बाद सलमा कक्ष के बाहर आँगन

---

* यह क़ब्र आज भी डलमऊ के क़िले के खँडहरों में विद्यमान है।

में आई, हाथ-मुँह धोया। कपड़े बदले। क़ुरान शरीफ़ निकाला, और आँगन में चटाई बिछाकर बैठ गई। दीपक का मंद-मंद प्रकाश दुर्ग की मटमैली दीवारों को आलोकित कर रहा था। सलमा ने अपनी मा को पुकारते हुए कहा—"अम्मी, चलो न, आज क़ुरान शरीफ़ न सुनोगी?"

अम्मी अभी तक अपने ही विचारों में डूबी हुई थीं। बोलीं—"आ रही हूँ बेटी, तू चटाई तो बिछा।"

"आओ न, चटाई बिछी है।" सलमा ने मधुर कंठ से कहा।

उसी समय सदरुन ने रसोई-घर से पुकारा—"सलमा बीबी!"

"कहो न, क्या कहना है?" सलमा ने खीझते हुए पूछा।

"सलीम मियाँ कह गए हैं कि मैं सूबेदार साहब के साथ मानिकपुर जा रहा हूँ। तीन-चार दिनों तक न आ सकूँगा।"

"अच्छा, सुन लिया, और कुछ?" सलमा ने क़ुरान शरीफ़ के पन्ने उलटते हुए कहा।

"और कुछ तो मुझसे कहा नहीं, इतना ही कहा था, सो तुमसे बता दिया।"

"अच्छा, अच्छा। मैंने सुन लिया, तू अपना काम कर।" सलमा ने क़ुरान शरीफ़ के पाँचवें पारे 'वल्मुहसनात' के 'सूरे-निसा' पर दृष्टि गड़ाते हुए उत्तर दिया।

सदरुन चुप हो गई, और चपातियाँ बनाने लगी। उसका मन आज घर के किसी काम में न लग रहा था। हुसेन रहता था, तो यही सब काम वह बिजली की तरह करती थी। मगर आज! ऐसा लगता था कि घर की किसी चीज़ से उसे मुहब्बत ही नहीं है। न खाना बनाने के लिये जल्दी, और न खाने की फ़िक्र! पलकों में हुसेन की मूर्ति झूम रही थी।

सलमा कुछ देर मौन रही। फिर अपनी मा की ओर देखकर

बोली—"अम्मी, परसों मैंने तुम्हें चौथे पारे का 'सूरे-निसा' सुनाते हुए बताया था कि यह मदीने में उतरी है, और उसमें १७७ आयतें और २४ रुकू हैं। यह औरतों के बारे में है। आज मैं तुम्हें पाँचवें पारे का 'सूरे-निसा' सुनाती हूँ।"

इसके बाद उसने अरबी में पढ़कर उसका उर्दू अनुवाद अपनी अम्मी को सुनाते हुए कहा—"ऐसी औरतें, जिनका ख़ाविंद ज़िंदा है, उनको लेना भी हराम है। मगर जो क़ैद होकर तुम्हारे हाथ लगी हों, उनके लिये तुम्हें ख़ुदा का हुक्म है, और इनके अलावा दूसरी सब औरतें हलाल हैं, जिन्हें तुम माल (मिहिर) देकर क़ैद (निकाह) में लाना चाहो, न कि मस्ती निकालने को। फिर जिन औरतों से तुमने मज़ा उठाया हो, उनसे जो मिहिर ठहरा हो, उनके हवाले करो। ठहराए पीछे आपस में, राज़ी होकर, जो और ठहरा लो, तो तुम पर कोई अज़ाब नहीं। अल्लाह जानकार, हिकमतवाला है!"

और तुममें से जिनको मुसलमान बीवियों से निकाह करने की ताक़त (मिहिर आदि के कारण) न हो, तो, ख़ैर, बाँदियाँ ही सही, जो तुम मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ जायँ, बशर्ते कि ईमान रखती हों, और अल्लाह तुम्हारे ईमान को ख़ूब जानता है। तुम आपस में एक हो। पसबंदीवालों की इजाज़त से उनके साथ निकाह कर लो। मगर दस्तूर के बमूजिब, उनके मिहिर उनके हवाले कर दो। शर्त यह है, क़ैद (निकाह) में लाई जायँ, बाज़ारी औरतों-जैसा संबंध न हो, और न छिपकर मुहब्बत करती हों। मगर क़ैद (मिहिर) में आने के पीछे कोई काम करे, तो जो सज़ा बीवी को, उसकी आधी लौंडी को।"

इतना कहकर सलमा ने सदरुन की ओर निहारा। वह बनाती तो चपाती थी, मगर उसके कान इधर ही थे। सलमा उसे देखकर

मुस्किराईं, और फिर आगे पढ़ने लगी—"लौंडी से निकाह करने की इजाज़त उसी को हो, जिसको तुममें से पाप (में फँस जाने) का डर है। अगर (उसके बिना) संतुष्ट रहो, तो तुम्हारे हक़ में अच्छा है। अल्लाह माफ़ करनेवाला, मेहरबान है।"

"सदरुन !" सलमा ने रुकू समाप्त करते हुए पुकारा। सदरुन ने रसोई-घर के द्वार पर आकर पूछा—"कहो बीबी, क्या हुक्म है ?"

"हुक्म मेरा नहीं, अल्लाह का है। कुछ सुना क़ुरान में ! उसी के हिसाब से चला कर।" कहती हुई सलमा मुस्किराकर सदरुन की ओर देखने लगी।

"चलती तो हूँ।" सदरुन ने दबी ज़बान में उत्तर दिया।

"कहाँ चलती है चुड़ैल !" सलमा ने व्यंग्य किया—"हुसैन से, जो तेरा दोस्त है, या तो निकाह कर या दोस्ती छोड़ !"

सुनकर सदरुन जल-भुनकर ख़ाक हो गई। मन में तो आया, कह दे—"आप ही कहाँ चलती हैं। सलीम को लिए गंगा के........" मगर उसका मुँह न खुला। बाँदी जो ठहरी।

वह भुनभुनाकर रसोई-घर की ओर मुड़ गई।

सलमा और उसकी अम्मी बैठी हँस रही थीं। रात में सलमा ने अपनी अम्मी से संपूर्ण घटना का विवरण अक्षरशः बता दिया। किस तरह राजा छल आया ! उसने कैसी-कैसी बातें कीं। सलमा ने उसका किस तरह मुँह-तोड़ उत्तर दिया। सब कुछ सुन चुकने के बाद अम्मी गंभीर हो गईं, और सलमा उनके मुख की ओर ताकने लगी। अम्मी कुछ सोच रही थीं। सलमा मौन थी।

---

[६]

कड़े के क़िले से मानिकपुर क़स्बे की दूरी यों तो कुछ भी नहीं है। दोनो एक दूसरे स्थान से दिखाई पड़ते हैं। दोनो में इतना तादात्म्य है कि दोनो स्थानों के नाम संयुक्त रूप से प्रयुक्त होने लगे। हो सकता है, दोनो का कभी अलग-अलग अस्तित्व रहा हो, किंतु अब वे इतना घुल-मिल गए हैं कि उनका एक साथ स्मरण न करने पर ऐसा लगता है, मानो कुछ छूट गया। कड़ा अब कड़ा न रहकर 'कड़े-मानिकपुर' हो गया है। फिर भी जल-मार्ग से दोनो की दूरी डेढ़ मील से कम न होगी। कड़े का क़िला, जहाँ कभी भारशिवों का राज्य था, और उनके प्रतापी राजा 'कड़ेचंद' ने उसे बनवाया था, बस्ती से पूर्व की ओर पड़ता है। क़िले से एक फ़र्लांग की दूरी पर गंगा की धार दक्षिण की ओर कुछ मुड़ती-सी प्रतीत होती है। प्रवाह के बाएँ तट पर ऊँचे-ऊँचे कगार हैं, और उन्हीं कगारों के ऊपर गगनचुंबी दुर्ग !

सूबेदार अज़ीज़ुद्दीन एवं सलीम बातें करते-करते पैदल ही वहाँ से चल पड़े थे। अज़ीज़ुद्दीन साहब मानिकपुर के सूबेदार न थे, फिर भी लोग उन्हें सूबेदार ही कहा करते थे। यह उपाधि उन्हें कब मिली, किसने दी, इसके विषय में किसी को कुछ भी ज्ञात न था। फिर भी वे सूबेदार थे, भले ही पद से न रहे हों, किंतु नाम से तो थे ही। वहाँ के वास्तविक सूबेदार शरफ़ुद्दीन साहब थे।

जनाब अज़ीज़ुद्दीन साहब रईस-तबीयत के मस्त आदमी थे। आत्मप्रशंसा करना उनके जीवन का प्रथम ध्येय था। वह शायर भी थे, और बातूनी भी। शायरी उनकी तभी चलती थी, जब वह थोड़ी-सी पी लेते थे। बातें तो सदैव ही चला करती थीं। उनके

रहन-सहन और ठाट-बाट के सामने सूबेदार की कोठी की रौनक़ फीकी पड़ गई थी—यह उनका अपना विचार था। रास्ते में वह सलीम को अपने खेत, अपना बाग़, अपना बग़ीचा और अपना कुआँ दिखाते हुए चले आ रहे थे। यद्यपि सलीम को उनकी इन बे-सिर-पैर की बातों में कोई आनंद नहीं आ रहा था, फिर भी वह 'हाँ-में-हाँ' मिलता चल रहा था।

थोड़ा आगे बढ़ने पर एक परती भू-खंड की ओर उँगली उठाकर उन्होंने पूछा—"इस ज़मीन में एक ईदगाह बनवाया जाय, तो कैसा रहे?"

"है तो मौक़े से।" सलीम ने भूमि की ओर देखकर कहा—"सूबेदार साहब, ईदगाह यहाँ ख़ूब जँचेगा, ज़रूर बनवाइए!"

सूबेदार साहब थोड़ा-सा मुस्किराए, और बोले—"शाह से इसकी बाबत बातें करनी हैं। अगर वे मदद दे दें, तो अगले साल बनवा डालूँ, मगर हैं वह परले सिरे के कंजूस! क्यों सलीम साहब, आपका क्या ख़याल है?"

"जी हाँ।" सलीम बोला—"आपका ख़याल दुरुस्त है। शाह साहब को इन चीज़ों का बहुत कम शौक़ है। केवल* 'अटाला-मस्जिद' को ही उन्होंने पूरा कराया है।

"शाह? सूबेदार साहब ठहाका मारकर हँसे—"वह तो पूरा बुद्धू है। उससे अच्छा तो सैयद है। क्या शाही तबियत पाई है सैयद ने! उसकी दरियादिली देखते ही बनती है, क्यों?" सूबेदार साहब ने सलीम का रुख़ जानना चाहा।

"जी हाँ!" सलीम ने तपाक से उत्तर दिया। ऊपर से ज़रूर

---

* अटाला-मस्जिद जौनपुर की एक दर्शनीय ऐतिहासिक इमारत है, जिसे सन् १३७८ ई० में ख़्वाजा कामिलख़ाँ ने बनवाना प्रारंभ किया था, और शाह शर्की ने उसे सन् १४०८ में पूरा कराया था।

'दरियादिल' नहीं, 'बहरे-हिंद' हैं। मगर भीतर से........" कहते-कहते सलीम रुक गया, और फिर बोला—"इतना ज़हर तो मैंने किसी आदमी के पेट में नहीं देखा।"

"अच्छा, यह बात है ?" सूबेदार साहब चौंककर बोले—"मगर मालूम नहीं पड़ता।"

"जी हाँ।" सलीम बोला—"यही तो ख़ूबी है। मालूम तो तभी पड़ेगा, जब आप उसके साथ कुछ दिन रहें। आप शायद नहीं जानते कि वह मेरे वालिद के ख़ालाज़ात भाई हैं, मगर उनके मरते ही मेरी आधी जायदाद उन्होंने हड़प ली।"

"तब तो पक्का हरामी है !"

"जी हाँ। और सुनिए।" सलीम ने कहा—"इस पर भी तुर्रा यह कि मुझे अपने लड़के से कम नहीं मानते !" कहता हुआ सलीम हँस पड़ा।

सूबेदार साहब थोड़ा मुस्किराए, और फिर सलीम का हृदय टटोलते हुए बोले—"मैं एक तरकीब बताऊँ ?"

"बताओ।" सलीम ने कहा।

"उसने तुम्हारी आधी जायदाद हड़प ली, तुम उसकी पूरी हज़म कर जाओ। होशियारी तो तभी है। उसके कोई आगे-पीछे तो है नहीं। बस, वही अकेली लड़की है। उसी पर हाथ साफ़ करो, पूरी जायदाद तुम्हारी है।"

"बात तो ठीक है, मगर वह लड़की मेरे क़ाबिल नहीं।" सलीम ने अपने हाथ मसलते हुए उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"बात यह है," सलीम ने धीरे से कहा—"वह किसी दूसरे की मुहब्बत में गिरफ़्त है।"

"सच।" सूबेदार साहब ने आश्चर्य से पूछा, और फिर कहा—

"वह देखो, मेरा घर है। हाँ, फिर क्या हुआ?" सलीम ने बताना शुरू किया।

बातें करते-करते दोनो आदमी द्वार पर आकर रुक गए। सलीम की बात अधूरी ही रह गई। बैठक का द्वार खुला था। दोनो बैठक में प्रविष्ट हुए।

"बैठिए सलीम साहब!" सूबेदार साहब ने सलीम को बैठने का संकेत करते हुए ज़ोर से पुकारा—"जुम्मन!"

जुम्मन एक फटा पायजामा पहने, हाथ से शेरवानी का छोर पकड़े, अदब से आकर खड़ा हो गया। पुरानी तुर्की टोपी उसकी सुंदरता में चार चाँद लगा रही थी। सूबेदार साहब ने इशारे में ही जुम्मन से कुछ कहा। उसने भी सिर हिलाया। तभी सूबेदार साहब ने उसे दो उँगलियाँ दिखाईं। सहसा जुम्मन खुश हो गया, और थिरकता हुआ कमरे के बाहर निकल गया। जुम्मन की शक्ल-सूरत और अदाएँ देखकर सलीम ने सूबेदार साहब से कहा—"जनाब, यह आदमी है या लंगूर!"

"लंगूर ही है साला!" कहते हुए सूबेदार साहब हँस पड़े—"लेकिन है बड़े काम का।"

"यह तो इसकी शकल ही बताती है।" सलीम ने व्यंग्य करते हुए कहा।

सूबेदार साहब विहँसकर रह गए। उसी समय जुम्मन ने चाँदी के दो गिलासों में मदिरा लाकर रख दी। सूबेदार साहब ने फ़रशी की ओर इशारा किया, और वह चिलम लेकर बाहर चला गया।

सलीम और सूबेदार साहब, दोनो ने ख़ूब छककर मदिरा-पान किया। थोड़ी देर बाद अपनी-अपनी चारपाई पर लेटकर बातें करते हुए तंबाकू पीने लगे। धीरे-धीरे नशा अपना रंग दिखाने लगा। सलीम ने मस्ती में कहा—"सूबेदार साहब, शायद आपको

याद न होगा, मैं एक बार पहले भी आपके दौलतख़ाने में आ चुका हूँ। तब छोटा-सा ही था।"

"हाँ-हाँ, याद है।" सूबेदार साहब ने कहा—"जब मेरी पहली बीवी का इंतक़ाल हुआ था, तभी न ?"

"हाँ, तभी।" सलीम ने कहा—"उस समय आप पर बड़ी मुसीबत गुज़री थी। उनकी गोद में छोटी बच्ची भी तो थी, उसका क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ?" सूबेदार साहब हँसकर बोले—"लड़कियाँ और बबूल के पेड़ एक-से होते हैं; पालो-पोसो, तब भी तैयार, न पालो-पोसा, तब भी तैयार। है न सही बात ? ठीक यही हाल ज़ुबेदा का भी रहा।

"अब तो सयानी हो गई होगी ?"

"जी हाँ, इसी साल उसकी शादी करनेवाला था, मगर कर न सका।"

"क्यों ?" सलीम ने पूछा।

"यह न पूछो।" कहते हुए सूबेदार साहब उठकर बैठ गए, और बोले—"पहली बीवी के मरने के बाद मैंने दूसरी शादी की, मगर उसके कोई औलाद ही नहीं हुई। मजबूर होकर उसे तलाक़ दे दिया। पिछले साल फिर तीसरी शादी की, अब उससे कुछ उम्मीद हो चली है। महीने-दो-महीने की ही देर है। उसी की वजह से ज़ुबेदा की शादी रुक गई, क्योंकि बच्चे की ख़ुशी में मुझे शानदार जलसा करना है। दोनो एक साथ थोड़े हो पाते।" सूबेदार साहब का नशा रंग दिखा रहा था, और वह कहते जा रहे थे—ईख का चूसना और बाँसुरी का बजाना एक साथ नहीं होता सलीम साहब ! दो में से एक ही होगा।"

सलीम विहँस उठा। उसे मुस्किराता देखकर सूबेदार साहब

बोले—"जनाब, आप हँसते हैं, मैं सही बात कह रहा हूँ। ख़ुदा का शुक्र है कि इतनी तंदुरुस्त, हसीन और होशियार औरत मुझे मिल गई। हो भी क्यों न ? नाज़िम बदरुद्दीन साहब की लड़की जो ठहरी !" कहकर सूबेदार साहब गर्व से सलीम की ओर देखने लगे।

"बदरुद्दीन साहब ?" सलीम ने चौंककर पूछा।

"जी हाँ, जिन्होंने काकोरी तक शाह का झंडा फहरा दिया था।"

सलीम से अब न रहा गया। उसने पूछा—"तो क्या आपकी शादी राहत बीबी से हुई है ?"

"हाँ।" सूबेदार साहब ने कहा—"आप क्या जानें उसे ?"

"अरे वाह !" सलीम ने उत्तर दिया—"आपको पता भी है, राहत मेरे मामू की ख़ाला की लड़की की लड़की है। वह मुझे अच्छी तरह जानती है।"

"यह अच्छा रहा !" सूबेदार साहब ने क़हक़हा लगाया—"ज़ोरू का भाई, और दौलत पराई घर बैठे मिल जायँ, तो क्या कहना।"

सलीम झेंप गया। उसने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा—"क्या बताऊँ सूबेदार साहब, उन दिनों मैं सैयद चचा के साथ जौनपुर में था। शादी में भी शरीक नहीं हो पाया। यही वजह है कि आपको पहचान न सका। माफ़ कीजिएगा !"

सूबेदार साहब फिर हँस पड़े, और झूमकर बोले—

"क़ाज़ी ने किया बैठ के मयख़ाने में इंसाफ़ !
ज़ोरू के सौ, तो साले के दो-सौ क़सूर माफ़ !"

एक बार उन्होंने सलीम की ओर देखकर फिर अट्टहास किया, और ज़ोर से पुकारा—"ज़ुम्मन !"

जुम्मन दौड़ता हुआ सामने आकर खड़ा हो गया। उन्होंने इशारा किया। जुम्मन शायद समझ नहीं पाया, और खड़ा-खड़ा उनका मुँह ताकता रहा। सूबेदार साहब यह देखकर बरस पड़े।

"अबे लंगूर के बच्चे! मुँह क्या ताकता है? जा, बेगम साहबा से बता दे कि सलीम आया है।"

यह सुनते ही जुम्मन उल्टे पैरों भग चला। गया और बेगम साहबा से ताली पीट-पीटकर बताने लगा।

शाम को गोश्त और चपाती खाकर दोनो आदमी आराम करने लगे। सूबेदार साहब तो अपने ही कमरे में रहे, मगर सलीम के लिये सदर दरवाज़े से मिला हुआ वह कमरा ख़ाली कराया गया, जो सिर्फ़ मेहमानों के लिये ही खुलता था। सूबेदार साहब के सदर दरवाज़े के दोनो ओर दो कमरे थे, जिनका संबंध अंदर मकान से भी था। एक कमरा बैठक-ख़ाना था, दूसरा मेहमान-ख़ाना। सलीम के कमरे से मिला हुआ, पीछे की तरफ़, ज़ुबेदा का कमरा था। दोनो कमरों के बीच में एक दरवाज़ा था, जिसकी साँकल भीतर से थी। सलीम को इस बात की ख़बर न थी कि यह किसका कमरा है। नशे में मस्त वह अपने पलँग पर जाकर लेट गया। वह लेटा हुआ कुछ सोच ही रहा था कि पीछे के कमरे में चूड़ियाँ खनकीं। सलीम का सिर अपने आप ऊपर उठ गया। उसने देखा, कमरे में दीपक जल रहा है, और ज़ुबेदा बैठी पान लगा रही है। सलीम उसे एकटक देखता रहा। ज़ुबेदा पान लगाती रही। उसका सिर झुका हुआ था। सलीम की इस हरकत की उसे ख़बर न थी। सलीम से न रहा गया। उसने ज़ोर से खखारा! ज़ुबेदा का सिर ऊपर उठा। सलीम मुस्किरा उठा। वह जल-भुनकर ख़ाक हो गई। झपटकर उसने द्वार बंद कर साँकल चढ़ा दी। सलीम करवट बदलकर लेट रहा। नशा अब पूरी मस्ती पर था।

ज़ुबेदा को इस बात की ख़बर पहले से ही हो गई थी कि ये हज़रत उसकी छोटी चाची के भाई जनाब सलीम साहब हैं। अब उसे इस बात का भी विश्वास हो गया कि सलीम साहब पक्के शोहदे भी हैं। उसने मन-ही-मन संकल्प किया कि वह इनकी इस बदतमीज़ी का जवाब अवश्य देगी। उसे क्या पता कि इस समय सलीम साहब आपे में नहीं हैं। उनके सिर पर शराब का भूत सवार है।

ठीक उसी प्रकार सूबेदार साहब की बैठक से मिला हुआ, पीछे की ओर, बेगम साहब का कमरा था। सलीम के चले जाने के बाद, वह चिल्ला-चिल्लाकर शेर पढ़ते रहे, और जुम्मन ताली पीट-पीटकर दाद देता रहा। बेगम साहब हाथ में पान लिए रात-भर ज़ंजीर खटखटाती रहीं, मगर द्वार न खुला, तो न खुला। हारकर वह लौट गईं, और बिस्तर पर लेटकर ख़ुर्राटे भरने लगीं। जुम्मन भी ताली पीटते-पीटते थक गया, मगर सूबेदार साहब का मुख न बंद हुआ। पान लगे रक्खे ही रहे। जुम्मन को ध्यान ही नहीं कि सलीम को पान खिलाना है। थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद ज़ुबेदा भी तश्तरी पटककर लेट गई, और आँखें बंद कर लीं।

प्रातःकाल जब सलीम की आँख खुली, तो वह उठकर सूबेदार साहब के कमरे में गया। कमरा बाहर से बंद था। सूबेदार साहब ग़ायब थे। सलीम ने जुम्मन से पूछा, तो पता चला कि वह सबेरे ही कछार की ओर चले गए हैं, वहाँ बटेरें पड़ती हैं।

"कब आएँगे ?"

"मैं क्या जानूँ ?" कहकर जुम्मन तालियाँ पीटने लगा।

सलीम झुँझलाकर अपने कमरे में चला गया। शौच आदि से निवृत्त होकर जब वह बाहर बैठ गया, तब जुम्मन मियाँ फिर आ धमके। जुम्मन को देखते ही सलीम का पारा गरम हो गया, किंतु

जुम्मन ने विना इसकी परवा किए संकेतों से बताया कि बेगम साहबा याद कर रही हैं। सलीम जुम्मन को साथ लेकर ज़नानख़ाने की ओर चल पड़ा, मगर जुम्मन ने उसका पूरा साथ नहीं दिया। वह दहलीज़ से ही लौट आया, और तालियाँ बजाता हुआ बाहर निकल गया। सलीम भीतर चला गया।

आँगन में पलँग पर एक पुराना, मोटा-सा क़ालीन बिछा हुआ था। चारपाई के पास भूमि पर एक चटाई बिछाए राहत बैठी थी। वह एक रेशमी पायजामा और कुर्ता पहने थी। सिर पर केसरिया रंग की ओढ़नी थी, जो उसका आधा मस्तक ढके थी। राहत की बड़ी-बड़ी रतनारी आँखें पीली पड़ गई थीं। फिर भी उसके निस्तेज मुखमंडल पर मुस्कान खेल रही थी। शरीर अत्यंत क्षीण था। सलीम को देखते ही उसने पलकें नीची कर लीं, और धीरे से कहा—"आओ, सलीम भैया, बैठो।"

सलीम पलँग पर बैठ गया। उसने बैठते ही राहत के शरीर पर एक दृष्टि फेंकी। राहत को देखते ही उसे यह अनुभव हुआ कि उसके शरीर का आकर्षण, चेहरे की चमक, यौवन एवं लावण्य—सभी कुछ नष्ट हो चुका है। शरीर इतना कृश है, मानो यक्ष्मा की रोगिणी हो। सलीम ने एक लंबी साँस ली। उसे सूबेदार साहब पर क्रोध आ रहा था, जिन्होंने फूल-सी सुकुमार कली की यह दशा कर डाली? उसे उनकी गर्भिणी होनेवाली बात भी असत्य ही प्रतीत हुई, क्योंकि राहत के शरीर में उसके कोई चिह्न न थे। सलीम को इस प्रकार अपनी ओर ताकते देख राहत ने पूछा—"कहो भैया, तुम्हारी वालद कैसी हैं?"

"वह अब नहीं रहीं।" सलीम ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—"इसी साल अल्लाह को प्यारी हुईं।"

"या ख़ुदा!" राहत ने करुणार्द्र होकर कहा—"मैं दो साल

से उन्हें नहीं देख सकी थी। अल्लाह मरहूमा को मग़फ़िरत दे!"

सलीम नत-मस्तक बैठा रहा। राहत कह रही थी—"जब से मैं यहाँ आई हूँ, भैया, मरी जा रही हूँ। घर का सारा काम मुझे ही करना पड़ता है। न कोई नौकर, न चाकर! एक हिजड़ा जुम्मन है, क्या कहूँ उसे—न मर्द, न औरत। दिन-भर तालियाँ पीटता रहता है। सूबेदार साहब पूरे सूबेदार हैं! लँगोटी में फाग खेला करते हैं। न घर की फ़िक्र, न बीवी की, न बच्चों की। लड़की सयानी हो चुकी है, मगर अभी उनके कान में जूँ तक नहीं रेंगी।"

उसी समय ज़ुबेदा ने कमरे के अंदर से ज़ंजीर खटखटाई। राहत घूमकर देखने लगी। फिर धीरे से बोली—"चली नहीं आती! कोई ग़ैर थोड़े ही बैठा है। अपने ही घर के आदमी हैं।"

राहत की आवाज़ सुनकर ज़ुबेदा हाथ में मिठाई की तश्तरी और गिलास में पानी लिए हुए आकर खड़ी हो गई। उसे देखते ही राहत ने कहा—"सलीम भैया, यही है ज़ुबेदा!" और फिर ज़ुबेदा को संबोधित करते हुए कहा—"दे दे सलीम भैया को। शरमाती क्यों है?"

सलीम ने झुकी पलकों से ज़ुबेदा की ओर देखा। गोरा-गोरा सुंदर मुख, मुस्किराती हुई हिरनी की-सी आँखें, काले-काले केशों पर काली, रेशमी ओढ़नी; जिसमें सलमे और सितारे टँके हुए थे। रेशमी सलवार और कुर्ता। कली अभी पूर्ण रूप से खिल न पाई थी, फिर भी शरीर के पुष्ट अवयवों से यौवन बरबस निखरा पड़ रहा था।

ज़ुबेदा ने मुस्किराकर तश्तरी सलीम की चारपाई पर रख दी। सलीम ने राहत की ओर देखा, और फिर ज़ुबेदा को लक्ष्य कर कहा—"मैं इन्हें जानता हूँ। जब ये छोटी-सी थीं, तभी मैं वालिद के साथ यहाँ आया था। उन्हीं दिनों इनकी वालदा का इंतक़ाल

हुआ था। अब तो यह काफ़ी सयानी हो चुकी हैं।" इतना कहकर उसने पुनः ज़ुबेदा की ओर देखा।

ज़ुबेदा की शरमाती आँखें चमककर रह गईं।

सलीम नाश्ता करने लगा। ज़ुबेदा वहीं खड़ी रही। जब वह नाश्ता कर चुका, तो राहत ने ज़ुबेदा से पान लगाने को कहा। ज़ुबेदा अपने कमरे में चली गई। उसने पान पहले से ही लगाकर रख दिए थे। तश्तरी लेकर लौट आई, और सलीम की चारपाई पर रखकर खड़ी हो गई। सलीम पान खाकर एक बेधक दृष्टि ज़ुबेदा पर छोड़ता हुआ खड़ा हो गया, और राहत से बोला—"मैं ड्योढ़ी पर चल रहा हूँ, आप घर का इंतज़ाम देखिए, फिर बातें होंगी।"

उसे जाते देख राहत ने कहा—"अभी तो रहोगे न सलीम भैया?"

सलीम ने ठिठकते हुए उत्तर दिया—"सूबेदार साहब आ जायँ, तो बताऊँ। फिलहाल अभी तो हूँ ही।" वह बाहर निकल गया।

"कितना सीधा लड़का है!" राहत ने ज़ुबेदा से कहा। ज़ुबेदा मुस्किराती हुई अपने कमरे में चली गई।

दोपहर का खाना लेकर जब ज़ुबेदा सलीम के कमरे में पहुँची, तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। ज़ुबेदा ने चटाई पर गोश्त और चपाती की तश्तरियाँ रखते हुए कहा—"उठिए जनाब, खाना हाज़िर है।"

सलीम उठकर बैठ गया।

"हाथ-मुँह धोओगे या ऐसे ही!"

सलीम ने मुस्किराते हुए सिर हिला दिया। ज़ुबेदा ने हाथ-मुँह धुलाया। सलीम चटाई पर बैठ गया। ज़ुबेदा वहीं खड़ी रही। सलीम ने देखा कि एक रकाबी में गोश्त रक्खा है, और दूसरी में दो नरम-नरम चपातियाँ! उसने चपातियों को टटोलते हुए ज़ुबेदा से कहा—"कितनी मुलायम चपातियाँ हैं!"

"जी हाँ।" ज़ुबेदा ने तपाक से उत्तर दिया—"इसलिये कि ये मुलायम हाथों से बनाई गई हैं—यही कहना चाहते हैं न आप?"

"हाँ, हाथों का असर चपातियों पर पड़ता ही है!"

"तो जनाब!" ज़ुबेदा ने आँखें मटकाते हुए कहा—"ये आपकी बहनजी की बनाई हुई हैं। इस असर को आप ही जान सकते हैं!"

"यही तो मैं भी सोच रहा था।" सलीम ने तिरछी आँखों से ज़ुबेदा की ओर देखते हुए शरारत से कहा—"यदि तुम्हारी बनाई होतीं, तो शायद और भी मुलायम होतीं।"

ज़ुबेदा कटकर रह गई। उसे कोई उत्तर न सूझा।

दोनो की घुली-मिली बातें सुनकर अंदर से राहत चिल्लाई—"ज़ुबेदा, खड़ी-खड़ी क्या कर रही है, और चपातियाँ तो ले जा।"

"चाचीजी!" ज़ुबेदा ने ज़ोर से कहा—"ये कह रहे हैं कि आज हमें भूख नहीं है, हम अब कुछ न लेंगे।"

यह सुनते ही सलीम ने हकबकाकर ज़ुबेदा की ओर देखा। वह अपनी ओढ़नी का छोर दाँतों से दबाए हँस रही थी।

"आज तो बिलकुल नहीं खाया!" अंदर से राहत की आवाज़ आई।

"हाँ चाची, कह रहे हैं पेट ख़राब है।" ज़ुबेदा ने अपनी हँसी रोकते हुए किसी प्रकार कह ही डाला।

अभी सलीम ने आधा पेट भी नहीं खाया था। ज़ुबेदा ने उसे बेवक़ूफ़ बना दिया। वह हँसा भी, परेशान भी हुआ, झुँझलाया भी, और विवश हो, हाथ-मुँह धोकर चारपाई पर लेट गया। ज़ुबेदा ने हँसते हुए सलीम की ओर निहारा, और फिर धीरे से कहा—"कितनी मुलायम चपातियाँ हैं!"

सलीम ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा, मगर वह छिटककर कमरे के बाहर निकल गई।

थोड़ी देर में वह पान लेकर फिर आई। सलीम आँखें मूँदे पड़ा था। ज़ुबेदा ने कहा—"सो गए क्या?"

"नहीं तो।"

"मैंने कहा शायद पेट का दर्द ज़्यादा उभर आया हो!" कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। सलीम कुढ़कर रह गया। ज़ुबेदा ने पान की तश्तरी बढ़ाते हुए कहा—"पान लीजिए।"

सलीम ने एक हाथ से पान का बीड़ा उठाया, और दूसरे से ज़ुबेदा की ओढ़नी का छोर पकड़कर कहा—"लो, तुम भी खाओ।"

"अच्छा जी!" ज़ुबेदा ने ओढ़नी को एक झटका देते हुए कहा—"जान न पहचान, बड़ी बी सलाम!" सुबह जान-पहचान हुई, दोहपर में पान खिलाने लगे। यह हरकत मुझे पसंद नहीं। आने दीजिए अब्बा को।"

और वह रूठ-सी गई।

अब्बा का नाम सुनकर सलीम काँपकर रह गया। ओढ़नी का छोर उसके हाथ से अपने आप छूट गया। ज्यों ही उसने पान खाने के लिये अपना दाहना हाथ ऊपर उठाया, ज़ुबेदा ने झपटकर, पान का बीड़ा छीनकर अपने मुँह में रख लिया, और हँसती हुई बाहर निकल गई।

सलीम हक्का-बक्का-सा बैठा रहा।

ज़ुबेदा जब घर पहुँची, तो राहत ने पूछा—"पान दे आई?"

"हाँ चाची, खाना भी खिला आई, और पान भी दे आई।" फिर सिर झुकाकर धीरे से कहा—"उनका पेट ठीक नहीं है।"

सलीम पड़ा-पड़ा यह सब सुन रहा था। वह किससे कहे कि उसे न खाना ही मिला और न पान ही। कहता है, तो कहते नहीं बनता, नहीं कहता, तो भूखा रहा नहीं जाता।

अजीब लड़की से पाला पड़ा है।

---

[७]

महाराज डल अपने राजसिंहासन पर विराजमान थे। उनके बड़े-बड़े, काले-घुँघराले केशों पर स्वर्ण-मुकुट जगमगा रहा था, जिसके नीचे, उन्नत ललाट पर, केशर का टीका शोभायमान था। महाराज कानों में रत्न-जटित कुंडल पहने थे, और हाथों में हैमी-बलय ! वह केशरिया उत्तरीय धारण किए हुए सौम्य, गंभीर एवं प्रसन्न-चित्त मुद्रा में सिंहासनारूढ़ थे। सन्निकट ही वयोवृद्ध महामंत्री, सेनापति एवं अन्य सरदार यथास्थान बैठे थे। बाहर, राजदरबार से थोड़ी दूर, सहस्रों भार शिव एकत्र थे, जो बीच-बीच में महाराज की जय बोल रहे थे। ये सब जनपद के मध्य-भाग से, राजा सेद्धराय से पराजित होकर शरणार्थी के रूप में, यहाँ आए थे। इनमें से अधिकांश सैनिक थे, शेष आस-पास के ग्रामों की भयभीत जनता। सभी उदास, खिन्न एवं प्रपीड़ित दृष्टि-गोचर हो रहे थे। वातावरण कोलाहलमय था।

इन हज़ारों भार शिवों के अन्न-वस्त्र एवं प्रवास की समस्या महाराज के सामने थी। इसी समस्या के समाधान के लिये राज-दरबार में सभी उच्च परामर्शदाता एवं बलाधिकृत उपस्थित थे। प्रातःकाल से ही परामर्श होते-होते जब अपराह्न तक कोई रास्ता न निकला, तो महामंत्रीजी ने परामर्श देते हुए कहा—"महाराज ! यदि आप उचित समझें, तो मुझे एक सुझाव प्रस्तुत करने की आज्ञा प्रदान करें।"

"अवश्य।" महाराज ने मुस्किराते हुए महामंत्री को सुझाव रखने की आज्ञा दी।

सभी उपस्थित सभासदों का ध्यान महामंत्री की ओर आकृष्ट हुआ। थोड़ी देर मौन रहकर महामंत्री गुरु-गंभीर वाणी में बोले—"आप सभी सभासद् इस बात से पूर्णरूपेण परिचित हैं कि अपने ही वंश के एक विश्वासघाती सरदार ने अपने ही दुर्ग एवं अपनी ही राज्य-सत्ता को मलियामेट कर दिया। परिणाम-स्वरूप आज सहस्रों भार शिव असहाय हो शरणार्थी के रूप में हमारे दुर्ग में पड़े हैं। वे हमसे जीवन-यापन का साधन चाहते हैं, किंतु इतने अधिक आदमियों के लिये एक साथ ही साधन प्रस्तुत करने का अर्थ है—संचित राजकोश को रिक्त कर देना।"

इतना कहकर महामंत्री मौन हो गए। दो क्षण तक सन्नाटा रहा। वह पुनः महाराज की ओर देखकर बोले—"महाराज, यदि हम उन्हें शरण नहीं देते, तो भार शिवों की गौरवशाली परंपरा में कलंक लगाते हैं। हमारे सामने बड़ी विकट समस्या है। इसका समाधान यों ही ढूँढ लेना कोई सरल कार्य नहीं। आज कई दिनों से मैं इस पर विचार कर रहा हूँ, किंतु मुझे कोई ऐसा पथ नहीं दिखाई देता, जिससे राज्य-कोश बच जाय, और इनके जीवन-यापन की समस्या भी सुलझ जाय। ऐसी स्थिति में यदि आप लोग मुझे आज्ञा दें, तो मैं महाराज से निवेदन करूँ कि वे स्वयं इसका कोई समाधान ढूँढ़ें, और अपने सत् परामर्श द्वारा हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलें।"

"हम सब आपके प्रस्ताव से सहमत हैं।" उपस्थित सभासदों ने एक स्वर से महामंत्री की बात का समर्थन किया। महामंत्री आशान्वित नेत्रों से महाराज के मुख की ओर एकटक देखने लगे।

महाराज के शरीर में एक प्रकंपन-सा हुआ। वह विहँस उठे। महामंत्री की ओर देखकर बोले—"महामंत्रीजी, आपके प्रस्ताव की अवहेलना मैं नहीं कर सकता, किंतु आपका इस प्रकार अपने उत्तर-

दायित्व से पीछा छुड़ाने का अर्थ है, मुझे बंधन में बाँध देना, अतः जो कुछ सुझाव मैं दूँगा, वह मेरा अपना सुझाव न होकर उपस्थित सभासदों की इस सभा का ही सुझाव समझा जाय। जिससे हममें से कोई भी इस कठिन उत्तरदायित्व से अलग न होने पाए।" इतना कहकर महाराज मुस्किरा उठे। उनके इस कथन पर सभी के अधरों पर मुस्कान खेलने लगी। महाराज ने एक दृष्टि संपूर्ण दरबार पर फेंकते हुए कहा—"मेरे विचार से ये सभी सजातीय शरणार्थी सेना में भरती कर लिए जायँ, और इस सेना का शांति-कालीन उपयोग किया जाय।" इतना कह वह चुप हो गए।

"मैं इसका अर्थ नहीं समझ सका!" महामंत्रीजी बोल उठे।

महाराज ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए गंभीर स्वर में कहा—"सेना में भरती कर लेने से इनके पुनर्वास, भोजन एवं वस्त्र की समस्या का समाधान हो जायगा। रही राज्य-कोश की बात, तो इस सेना का उपयोग निर्माण-कार्यों में किया जाय। इस प्रकार हमें जो धन निर्माण-कार्यों में व्यय करना है, वह इन्हीं पर ख़र्च होगा। इससे एक ही धन-राशि से निर्माण-कार्य भी हो जायगा, और सैन्य-शक्ति भी सुदृढ़ हो जायगी।"

"धन्य है!" सभी एक स्वर से बोल उठे। महामंत्री आत्म-विभोर हो गए। सभी सभासदों ने महाराज के इस सुझाव पर उन्हें एक स्वर से साधुवाद दिया।

महाराज का सुझाव उद्घोषक ने जाकर उपस्थित भार शिवों को सुनाया। प्रस्ताव सुनते ही दुर्ग में 'महाराज की जय' का घोष गूँज उठा। जय-घोषों के बीच दरबार समाप्त हुआ। महाराज अंतःपुर में चले गए।

साँझ की सिंदूरी-छाया गंगा के जल पर पड़ रही थी। जय-घोषों

की प्रतिध्वनि क़िले की दीवारों से टकराकर वापस लौट रही थी। संपूर्ण क़िले का वातावरण कोलाहलमय था।

महाराज ने अंतःपुर में पहुँचकर राजसी वस्त्र बदले। संध्या की दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हो शयन-कक्ष की ओर चले, और वहीं पलकें मूँदकर लेट गए। उस दिन नौका-विहार के समय सलमा से हुई एक-एक बात, एक-एक दृश्य उनकी आँखों में नाचने लगा। उसका सौम्य-शीतल मुख-मंडल महाराज के सामने नाच उठा—बिखरे केश, अंगार उगलती आँखें, मुख पर पसीने की बूँदें, हाथ में कटार, सभी दृश्य एकबारगी झूम उठे। "मेरी ईद तुम्हारी क़ब्र पर होगी" स्वर कानों में गूँज उठा। वह दीर्घ एक निःश्वास छोड़, करवट बदलकर लेट रहे।

आँगन में बने शिव-मंदिर की स्फटिक-चौकी पर बैठी कंचुकी संध्या कर रही थी। उसके तन पर श्वेत वस्त्र थे। सामने वेदी पर जलता हुआ अगर-धूम्र संपूर्ण दुर्ग को सुवासित कर रहा था। बड़ी-बड़ी कमल की पंखुड़ियों-जैसी सौम्य पलकें बंद थीं। वह ध्यान-मग्न बैठी थी। कुंचित केशों की दो-एक लटें अरुण कपोलों पर झूल रही थीं, किंतु उसे उन्हें हटाने का ध्यान न था। वह आत्मसात् में लीन थी।

महाराज ने अपनी बंद आँखें खोलीं। एक गर्म निःश्वास उनके जलते अधरों से टकराकर निकल गई।

"सलमा!" उनके होठ बुदबुदाए—"क्या ही अच्छा होता कि मैंने तुम्हारा अपहरण कर लिया होता। तुम आज मेरे अंतःपुर की रानी होतीं। तब देखता तुम मेरी क़ब्र पर ईद मनातीं या मैं तुम्हारे रूप-यौवन पर होली!" सोचते सोचते वह उठ बैठे। उन्होंने धीरे से पुकारा—"सावित्री!"

सावित्री 'मधु-कक्ष' को सजा रही थी। महाराज की आवाज़

सुनकर दौड़ पड़ी। छूम-छनन् की ध्वनि से संपूर्ण कक्ष गूँज उठा।

"यह क्या बला है?" महाराज ने उसके पैरों की ओर देखकर कहा।

"कुछ तो नहीं!" सावित्री ने नत-मस्तक हो उत्तर दिया। आज उसने कड़े-छड़े पहन रक्खे थे।

महाराज उसके कड़ों-छड़ों की ओर देखकर मुस्किरा उठे, और फिर बोले—"मधु-कक्ष तैयार है?"

"हाँ, महाराज!" सावित्री ने लजाते हुए उत्तर दिया।

"तो फिर चल!" कहते हुए महाराज खड़े हो गए।

सावित्री दबे पाँव से मधु-कक्ष की ओर चली। इस बार उसने अपने पैरों को भरसक साधा कि कड़ों-छड़ों से आवाज़ न निकले, फिर भी कक्ष कंपायमान हो उठा। जब महाराज 'मधु-कक्ष' की ओर जाने लगे, तो उन्होंने कंचुकी की वह सौम्य मुद्रा देखी, जो एक तापस-बाला को भी पराजित कर रही थी। उन्होंने उसके पावन सौंदर्य को पलकों में भर लिया। और मधु-कक्ष की ओर चले गए।

कंचुकी अपनी 'संध्या' समाप्त कर जब कक्ष की ओर जाने लगी, तो महाराज ने सावित्री को संकेत किया। वह उसे बुला लाई। कंचुकी मधु-कक्ष में आकर महाराज के सम्मुख बैठ गई। सावित्री धीरे से द्वार बंद कर, बाहर निकल गई।

महाराज ने मदिरा का चषक कंचुकी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लो, आज थोड़ी-सी तुम भी पियो।"

कंचुकी की देह में आग लग गई। फिर भी वह संयत रही। उसने दोनो हाथ जोड़कर, सिर झुकाते हुए कहा—"महाराज, मुझे मेरे धर्म से विचलित न करें, मैं क्षमा चाहती हूँ।"

"धर्म!" महाराज ने अट्टहास किया—"धारणाद्धर्म्म इत्याहु!" कहकर उन्होंने कंचुकी की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

"ठीक है, महाराज!" कंचुकी बोली—"जिसके द्वारा धारण हो, वह धर्म है, किंतु मैं नारी हूँ, और नारी-धर्म की परिभाषा ही कुछ और है।"

"नारी का क्या धर्म है?" मदिरा का चषक यथा-स्थान रखते हुए महाराज ने प्रश्न किया।

"जो पुरुष का अधर्म है, वही नारी का धर्म है।"

"अर्थात्?"

"पुरुष के अधर्म से ही नारी-धर्म का सृजन हुआ है।" कंचुकी ने गंभीरता से उत्तर दिया।

"यह कैसे?"

"उसी प्रकार, जैसे 'असत्' से 'सत्' हुआ।"

महाराज निरुत्तर हो गए। थोड़ी देर तक मौन रहने के पश्चात् उन्होंने आवेश में कहा—"तुम जा सकती हो।"

कंचुकी महाराज के चरणों में सिर झुकाकर कक्ष के बाहर निकल गई। जब वह बाहर निकलने लगी, तो महाराज ने व्यंग्य से कहा—"अपने इस धर्म की परिभाषा अपने तक ही सीमित रखना।" उनकी वाणी में कुछ रोष था।

"आज्ञा शिरोधार्य है।" कहकर कंचुकी अपने कक्ष की ओर चली गई।

सावित्री द्वार पर सहमी-सी खड़ी रही।

महाराज थोड़ी देर तक कुछ सोचते हुए बैठे रहे, फिर अचानक कक्ष से बाहर निकल आए। आज उन्होंने मधु-पान नहीं किया। उनका मन भारी हो गया था।

"विश्वासघातक बाप की ग़द्दार बेटी!" उनके ओठ बुदबुदाए—"बताऊँगा तुझे।" वह सीढ़ियों पर चढ़ते हुए ऊपर बड़ी रानी वासुमती के कक्ष की ओर चले। सावित्री उनके पीछे-पीछे थी।

बड़ी रानी के कक्ष के द्वार बंद थे। परिचारिका मालती द्वार पर बैठी थी। महाराज को देखते ही हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। महाराज ने, उस पर एक वेधक दृष्टि छोड़ते हुए, सावित्री से कक्ष के द्वार खोलने का संकेत किया। सावित्री ने बढ़कर द्वार खोल दिया। रानी ग़ायब थीं। महाराज ने आश्चर्य-चकित होकर मालती से पूछा—"बड़ी रानी कहाँ गईं?"

"मैं नहीं जानती, महाराज! मुझसे कुछ बताया नहीं। यही कहा कि मैं अभी आ रही हूँ।" परिचारिका मालती ने धड़कते हृदय से कहा।

"हूँ!" महाराज की क्रोधमयी हुंकार भरी। उनकी त्योरियाँ चढ़ गईं। वह तत्काल ही वापस लौट पड़े, और मँझली रानी लक्ष्मी के कक्ष की ओर बढ़े। कक्ष के द्वार बंद थे। रानी मदिरा के मद में बेहोश पड़ी थीं। परिचारिका शकुंतला ग़ायब थी।

"देख तो सावित्री!" महाराज ने कहा—"लक्ष्मी क्या कर रही है।"

सावित्री ने द्वार खोलकर देखा। रानी लक्ष्मी अर्ध-नग्नावस्था में बेसुध पड़ी थीं। उनकी आँखें बंद थीं। चेहरा आरक्त था। बाल बिखरे हुए थे। उनकी यह दशा देखकर सावित्री सहम गई। उसने जल्दी से रानी का आँचल ठीक किया। शरीर के अधखुले अवयवों को ढका। फिर धीरे से महाराज से कहा—"रानी की तबियत ठीक नहीं प्रतीत होती।"

सावित्री के मुख से इतना सुनते ही महाराज अंदर प्रविष्ट हुए।

"यह दशा!" उन्होंने खीझकर कहा। "उस दिन वासुमती कह रही थीं कि यह इतनी लज्जावती हैं कि कभी कोई इनकी छाया तक नहीं देख पाता, और रात में जब मैंने पता लगाया, तो परकोटे

में बेहोश पड़ी मिलीं। और आज? उफ़्!" महाराज ने लंबी साँस ली।

"ये सब चुड़ैल हैं, चुड़ैल, जो मेरे दुर्ग में शरण पा रही हैं।" कहते-कहते उन्होंने लक्ष्मी का हाथ पकड़कर झकझोर दिया। लक्ष्मी रानी थोड़ा कुनमुनाईं। हाथ झिटककर आँचल का छोर बाहर फेंक दिया, और फिर करवट बदलकर लेट गईं। महाराज ने क्रोध में आकर उनके पलँग पर ज़ोर से पैर का आघात किया, और बाहर निकल गए।

सावित्री भी उनका आदेश पाकर अपनी कोठरी में चली गईं। महाराज अपने शयनागार में चले आए। क्रोध से उनका शरीर फड़क रहा था। मुख-मंडल आरक्त था, और नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

थोड़ी रात बीतने पर कंचुकी रानी उठीं, और दबे पाँव, डरते-डरते, महाराज के कक्ष की ओर चलीं। उस समय वह प्रगाढ़-निद्रा में निमग्न थे। कंचुकी ने उनके मस्तक पर हाथ रक्खा। मस्तक जल रहा था। वह सिरहाने खड़ी होकर उनके मस्तक पर केशर एवं चंदन का लेप करने लगीं। मलय स्पर्श के साथ-साथ आँचल की वायु पाकर महाराज की चेतना जगी। उन्होंने धीरे से पुकारा—"सलमा!"

सलमा का नाम सुनकर कंचुकी थोड़ा चौंकी। उसकी आँखों में वह घटना झूम उठी, जिसे महाराज ने उसे बताया था। उसने धीरे से कहा—"सलमा नहीं, मैं हूँ।"

"कंचुकी!" महाराज ने आँखें खोल दीं।

"हाँ।" कंचुकी ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया।

"तुम बिना मेरी आज्ञा के यहाँ क्यों आई?" महाराज ने आवेश में आकर उसकी आँखों में आँखें डालते हुए कहा।

कंचुकी के नयन छलछला उठे। उसने अपने आँसुओं को आँचल के छोर से पोछते हुए कहा—"अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा माँगने!"

"कैसी क्षमा?" महाराज गरज उठे।

"आज मैंने आपसे बड़ी धृष्टता की है, मुझे क्षमा कर दीजिए।" कहती हुई कंचुकी बिलख पड़ी। महाराज का हृदय उसके आसुओं को देखकर डोल उठा, किंतु उन्होंने अपने को सँभालते हुए कहा—"कंचुकी, नारी-जीवन की भी कोई सीमा है। तुम सदैव उन सीमाओं का उल्लंघन करती हो। तुम्हें संभवतः यह ज्ञात नहीं कि सीमाएँ ही नारी-जीवन को मर्यादित रखती हैं!"

"नारी-जीवन का अर्थ ही बंधन है महाराज, मैं इस बंधन से अलग नहीं।"

"तुम्हारे विचार से नारी-जीवन का अर्थ बंधन है, किंतु मेरे दृष्टि-कोण से माया।"

"आपका विचार ठीक है महाराज!" कंचुकी ने आँसू पोछते हुए उत्तर दिया—"नारी के अंतस् को आज तक कोई समझ नहीं सका, इसीलिये उसे मायावी कहा गया है। जब स्वयं नारी ही नारी को न समझ सकी, तो बेचारे पुरुष ...."

कंचुकी की बात पूरी भी न हो पाई थी कि उसी समय क़िले का पूर्वी भाग जय-घोषों से गूँज उठा। महाराज और कंचुकी, दोनो चौंक पड़े। दोनो एक दूसरे की ओर विस्मय से देखने लगे।

जय-घोष बराबर बढ़ते जा रहे थे। रात के सन्नाटे में शत-शत कंठों का गर्जन नगरी को प्रकंपित कर रहा था। महाराज उठकर आँगन में आए। उनके साथ कंचुकी भी थी। बाहर आकर महाराज ने पुकारा—"मालती!"

मालती, जो कि अर्ध-रात्रि तक बड़ी रानी की प्रतीक्षा करते-करते

बाहर ही पड़ी-पड़ी सो गई थी, महाराज का स्वर पहचानकर नीचे उतर आई।

"बाहर जाकर पता तो लगा, यह कैसा जन-रव है।" और वह कंचुकी रानी के साथ पुनः कक्ष में चले आए। मालती बाहर निकल गई।

थोड़ी देर बाद मालती ने आकर बताया, ये अपनी ही सेना के वे सैनिक हैं, जो छोटे राजा के नेतृत्व में राजा सेढ़राय से लड़ने गए थे, और बरेली (रायबरेली) के दुर्ग से वापस आए हैं। फिर थोड़ा रुककर, कंचुकी की ओर देखकर उसने कहा—"रेवंत बंदी बना लिए गए!"

"क्या कहा, रेवंत बंदी बना लिया गया?" महाराज ने चौंककर पूछा।

"हाँ।" छोटे राजा ने उन्हें पकड़ लिया है, और अब उन्हीं के दुर्ग के कारागार में बंदी हैं।"

"बड़ा अच्छा हुआ।" महाराज ने लंबी साँस भरकर कहा—उसे विश्वासघात का फल मिल गया।" फिर कंचुकी की ओर देखकर बोले—"यह है तुम्हारे पिता की करतूत। शत्रुओं को उसने संपूर्ण रहस्य बताकर भार शिवों का विनाश करा दिया।"

कंचुकी काँपकर रह गई। उसके मुख से एक शब्द भी न फूटा। वह नत-मस्तक होकर भूमि की ओर देखती रही, और महाराज कहते रहे—"छोटे राजा ने बड़ी वीरता का कार्य किया है, उस विश्वासघाती को बंदी बना कर। जाओ कंचुकी! जो कुछ होना था, हो गया, अब मैं शांति से विश्राम करना चाहता हूँ।"

कंचुकी आदेश पाते ही उठकर चली गई। रात-भर बिस्तरे पर पड़ी-पड़ी रोती रही। नयनों में बार-बार वयोवृद्ध पिता का मुख झूम उठता। छोटे राजा के शब्द—"रेवंत, यदि कंचुकी

का विवाह तुमने मेरे साथ न किया, तो तुम्हें इसका भारी मूल्य चुकाना होगा !" उसके हृदय में भाले की तरह गड़ते रहे ।

"चुका दूँगा महाराज, जो भी मूल्य आप कहेंगे, चुका दूँगा, मगर अपनी देव-कन्या-तुल्य कंचुकी को आपके हाथों न सौंपूँगा ।"

कंचुकी चीख़ पड़ी ।

आज उसी के कारण उसका वृद्ध पिता यह मूल्य चुका रहा है, और वह राजरानी बनी बैठी है ।

वह अपने को धिक्कारती रही ।

कोसती रही ।

रोती रही, और तड़पती रही ।

बाहर जय-घोष गूँजता रहा ।

नारी माया नहीं, स्वयं अपने लिये अभिशाप भी है !" कंचुकी का एक-एक आँसू चीत्कार कर रहा था । मानस में जीवन के विगत दृश्य फूट-फूटकर बह रहे थे, और बाहर गंगा की लहरें जय-घोष सुन रही थीं । रात चौंक रही थी, क़िले की दीवारें कंपायमान हो रही थीं ।

---

[८]

सलीम को खाना खिलाकर जब राहत और ज़ुबेदा दोनो बैठी भोजन कर रही थीं, तभी जुम्मन मियाँ पधारे। जुम्मन को देखते ही ज़ुबेदा ने कहा—"ए चाची, देख, जुम्मन आ गया न।" और वह जुम्मन की ओर एकटक देखने लगी।

"जान गया होगा कि अब खाना खाने का वक़्त है!" राहत ने कौर उठाते हुए कहा—"फिर जुम्मन भला चूक सकता था?"

"नहीं चाची, आज यह खाकर आया है। इसका पेट तो देख।"

ज़ुबेदा के इतना कहते ही जुम्मन हँस पड़ा, और अपना पेट थप-थपाते हुए, पच्छिम की ओर हाथ उठाकर बोला—"आज माल छानकर आया हूँ।"

"ओ हो!" ज़ुबेदा चिल्लाई—"चाची, आज सेठजी के यहाँ लड़का हुआ है न, जुम्मन वहीं से आ रहा है। क्यों बे, यह हर-कत!" ज़ुबेदा ने जुम्मन की ओर देखकर कहा—"ख़ूब माल छाना होगा अकेले-अकेले!"

प्रत्युत्तर में जुम्मन ने मुस्किराते हुए सिर हिला दिया, और एक हाथ कमर पर रखकर थिरकने लगा।

"देख चाची, देख, उधर जुम्मन की कमर तो ज़रा देख।" ज़ुबेदा हाथ उठाकर चिल्लाई। राहत ने घूमकर देखा, तो जुम्मन की कमर तीन-तीन बल खा रही थी।

राहत खीझ उठी। उसने ज़ुबेदा से कहा—"मार मुए की पीठ पर एक डंडा, कमर चौथी जगह से टेढ़ी हो जाय। दाढ़ीजार न घर का, न घाट का!"

ज़ुबेदा ने चौके से एक चैला उठाया। चैला देखते ही जुम्मन तालियाँ पीटता हुआ तिड़ी हो गया। ज़ुबेदा चैला लिए बैठी ही रह गई।

जुम्मन के भाग जाने पर दोनो ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया।

खाना खाकर ज़ुबेदा ने बचा हुआ खाना दस्तरख़्वान में लपेट-कर रसोई-घर का द्वार बंद किया, और राहत से कहा—"चाची, आज खाना बहुत बच गया।"

"बचे क्यों न?" राहत बोली—"न सूबेदार साहब ने खाया, न सलीम ने और न जुम्मन ने ही। हिफ़ाज़त से रख दे, शाम को काम आ जायगा।"

"रख तो दिया ही" ज़ुबेदा ने कहा—"हम दोनो को ही खाना होगा। सलीम का कौन ठिकाना, खायँ न-खायँ। जुम्मन के पेट में ऐसे ही जगह नहीं है। रहे सूबेदार साहब, आएँगे तो देखा जायगा। क्यों चाची?"

"हाँ बेटी!", राहत ने कमरे का द्वार बंद करते हुए उत्तर दिया—"मैं ज़रा सलीम को देख लूँ। पता नहीं, उसकी तबियत कैसी है।" कहकर राहत सलीम के कमरे की ओर बढ़ी।

"तबियत तो ठीक है।" ज़ुबेदा ने कहा—"केवल पेट ख़राब है, थोड़े-से चूरन का इंतज़ाम कर दो।"

प्रत्युत्तर में राहत कुछ बोली नहीं। वह सलीम के कमरे की ओर चली गई। जब राहत वहाँ पहुँची, सलीम मियाँ चारपाई पर चित्त पड़े हुए मानो छत की धन्नियाँ गिन रहे थे। मारे भूख के उनकी आँतें अकुला रही थीं। राहत को देखते ही वह उठ बैठे। उन्हें उठते देखकर राहत ने करुणार्द्र स्वर में कहा—"लेटे रहो भैया, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।" सलीम ने उसकी बात सुनी-अन-सुनी कर दी, और उठकर बैठ गया।

राहत ने सलीम के माथे पर हाथ रक्खा। वह सामान्य स्थिति में था। फिर पेट को सहलाते हुए पूछा—"बहुत दर्द है?"

"हूँ।" सलीम ने मानो कुढ़कर जवाब दिया।

राहत वहीं फ़र्श पर चटाई बिछाकर बैठ गई। सलीम की चारपाई पर हाथ रखकर धीरे से सांत्वना-भरे शब्दों में बोली—"हाँ भैया, दर्द न होता, तो केवल दो ही चपातियाँ खाते? हाथी-जैसा शरीर। तुम्हारी हालत देखकर तो आज मुझसे भी खाना नहीं खाया गया। थोड़ा-सा दूध पियोगे, लाऊँ?"

"नहीं चाची।" ज़ुबेदा ने कमरे का पर्दा हटाते हुए कहा—"कहीं गोश्त खाने के बाद दूध पिया जाता है? इससे तो और पेट ख़राब हो जायगा। ऐसा ही है, तो हकीम के यहाँ से कोई चूरन मँगा लो।"

ज़ुबेदा की बात सुनकर सलीम की इच्छा हुई कि उसका झोंटा पकड़कर दीवार से लड़ा दे, मगर कुछ बोल न सका, केवल भीतर-ही-भीतर कुढ़कर रह गया। उसी समय जुम्मन मियाँ की आवाज़ सुनाई पड़ी। ज़ुबेदा ने पुकारा—"जुम्मन!"

जुम्मन दरवाज़े पर अदब से आकर खड़ा हो गया। ज़ुबेदा बाहर निकली। उसने जुम्मन के कान में धीरे से कुछ कहा। जुम्मन समझ नहीं सका। उसने ज़ुबेदा की आँखों में आँखें डालकर कहा—"ज़रा ज़ोर से बोलो छोटी बी।"

"सुन!" ज़ुबेदा ने कहा—"हकीम साहब के यहाँ से पेटवाला चूरन लेता आ। अब समझा?"

"हाँ-हाँ, समझ गया। पेटवाला न?"

"हाँ।" ज़ुबेदा झल्लाकर बोली—"दौड़ता हुआ जा। देखती हूँ, कितनी जल्दी आता है।"

ज़ुबेदा का इतना कहना था कि जुम्मन पायजामा समेटकर हकीम साहब के घर की ओर भागा। ज़ुबेदा खड़ी-खड़ी जुम्मन की दौड़ देखती रही। फिर हँसती हुई कमरे के भीतर चली गई।

जुम्मन जब हकीम साहब के यहाँ पहुँचा, तो वह अपनी बैठक में, जिसमें उनका दवाख़ाना भी था, बैठे हुए एक रोगी की नब्ज़ देख रहे थे। जुम्मन ने पुकारा—हकीम चचा!"

हकीम चचा रोगी की नब्ज़ देखने में ही मशग़ूल रहे। वे जुम्मन की ओर मुख़ातिब न हुए। यह देखकर जुम्मन ने पुनः, ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ पीटकर, पुकारा—"हकीम चचा! हकीम चचा!!"

"क्या है बे?" हकीम चचा ने ग़ुस्से से कहा।

"चूरन दे दीजिए, चूरन।"

"कैसा चूरन?"

"पेटवाला।"

"पेटवाला! पेटवाला क्या? अबे बोल, पेटवाला कौन-सा चूरन?"

जुम्मन थोड़ा-सा सकपकाया। वह क्या बताए कि उसे पेटवाला कौन-सा चूरन चाहिए। उसने मुँह बनाते हुए कहा—"मैं नहीं जानता।"

"तो फिर क्या लेने आया है?" हकीम साहब ने झल्लाकर कहा।

"पेटवाला चूरन।"

"अबे चूरन के बच्चे, पेट साफ़ करने का चूरन कि........"

"हाँ-हाँ, वही! वही!!" जुम्मन ने प्रसन्न होकर कहा। हकीम साहब ने जुलाब की पुड़िया जुम्मन को दे दी। जुम्मन पुड़िया लेकर भागा। उसे भागते देखकर हकीम साहब ने कहा—"अबे सुन तो!"

जुम्मन ठिठककर खड़ा हो गया।

"इसे गरम पानी के साथ खिलाना।"

"पानी के ?" जुम्मन ने पूछा। हकीम साहब बिना उत्तर दिए ही दूसरे मरीज़ को देखने में व्यस्त हो गए।

जुम्मन एक हाथ से शेरवानी का पल्ला पकड़े, दूसरे में पुड़िया दबाए आ पहुँचा। सलीम के कमरे के सामने खड़े होकर उसने मुँह से सीटी बजाई। सीटी की आवाज़ सुनकर ज़ुबेदा मुस्किराती हुई बाहर निकल आई। जुम्मन ने उसे पुड़िया पकड़ाते हुए कहा—"पानी के साथ खिलाना, पानी के। क्या समझीं ?"

प्रत्युत्तर में ज़ुबेदा ने उसके पेट में उँगली कोंच दी। वह "उई !" कहता हुआ प्रसन्नता से भाग गया। ज़ुबेदा ने राहत को पुड़िया देते हुए कहा—"लो चाची, खिला दो। मैं पानी लिए आती हूँ।" वह पानी लाने भीतर चली गई। राहत ने पुड़िया खोली। एक हाथ सलीम के सिर पर लगाया, दूसरा हाथ मुख की ओर ले जाते हुए कहा—"लो भैया, खा लो। पेट ठीक हो जायगा। हकीम साहब बड़ी अच्छी दवा देते हैं।"

सलीम से अब न रहा गया। उसने राहत का हाथ झिटकते हुए कहा—"मैं नहीं खाता। ले जाओ अपनी यह पुड़िया-उड़िया। मेरा पेट बिलकुल ठीक है।"

"नहीं चाची !" ज़ुबेदा ने कहा—"यह नाराज़ हैं, आख़िर हम ग़रीबों के यहाँ रक्खा ही क्या है। जो कुछ है, हाज़िर है।" ज़ुबेदा ने कुछ रुककर कहा—"तंदुरुस्ती लाख नियामत।"

राहत ने स्नेह से सलीम के बालों को सहलाया। फिर अपने हाथ से पुड़िया खोलकर उसे खिला दी। ऊपर से एक गिलास ठंडा पानी पिलाने के बाद कहा—"अब लेट जाओ।"

सलीम मन मसोसकर लेट गया। उसका क्रोध अपनी चरम सीमा पर था। राहत वहीं बैठी रही। ज़ुबेदा घर के भीतर चली गई।

थोड़ी देर बाद पुड़िया ने अपना रंग दिखाना शुरू किया। सलीम चारपाई पर पड़े-पड़े करवटें बदलने लगा। फिर उठकर बैठ गया।

"क्या है भैया ?" राहत ने पूछा—"कुछ आराम हुआ ?"

"हाँ" सलीम ने झल्लाते हुए कहा—"एक लोटे में पानी तो लाना।" राहत उठकर खड़ी हो गई। उसने दरवाज़े से ही पुकारा—"ज़ुबेदा, बेटी एक लोटे में पानी तो लाना।"

"मैं तुमसे माँग रहा हूँ, ज़ुबेदा से नहीं।" सलीम चिल्लाया—"ज़रा जल्दी करो।"

राहत दौड़कर पानी लाई। सलीम लोटा लेकर पाख़ाने की ओर भागा। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते आफ़त हो गई। लौटकर सलीम घर तक पहुँचा ही था कि पुनः पानी की ज़रूरत पड़ी। वह फिर लोटा लेकर भागा। राहत यह सब देख ताज्जुब में पड़ गई। उसने ठोड़ी पर उँगली रखकर कहा—"इसे क्या हो गया, या अल्लाह !"

"हुआ क्या ?" जुम्मन ने चबूतरे पर बैठे बैठे जवाब दिया—"पेट साफ़ हो रहा है।"

सलीम कुढ़ उठा। उसने घूमकर जुम्मन की ओर देखा, किंतु रुक न सका। पेट दबाकर फिर भागा।

वापस आते ही उसने क्रोध में जुम्मन की गर्दन पकड़कर पूछा—"क्यों बे उल्लू के पट्ठे, यह कौन-सी दवा लाया है ?"

"पेट साफ़ करने की।"

जुम्मन का इतना कहना था, कि सलीम ने तीन-चार हाथ जड़ दिए। जुम्मन चिल्ला उठा। शोर-गुल सुनकर ज़ुबेदा और राहत ने दहलीज़ से झाँका। दोनो एक दूसरे से भिड़े हुए गुत्थमगुत्था कर रहे थे। ज़ुबेदा ने दौड़कर छुड़ाया। छुटकारा पाते ही सलीम फिर पानी लेकर भागा। ज़ुबेदा जुम्मन का कान पकड़कर घसीट लाई।

जुम्मन रो रहा था, और सिसकियाँ भरते हुए कह रहा था—"तुमने दवा लाने को भेजा, मैं ले आया। न लाता, तब सिर गंजा होता, लाया, तब भी······"

"यह क्या ले आया है?" ज़ुबेदा ने प्रश्न किया।

"मैं क्या जानूँ।" जुम्मन बोला—"मैंने हकीम चचा से कहा, पेटवाला चूरन दे दो। वह नाराज़ हो गए। बोले—'पेटवाला! पेट-वाला? अबे, कौन-सा पेटवाला चूरन?' जुम्मन ने सिसकते हुए अदा के साथ बताया। सलीम वापस आ रहा था। जुम्मन काँप उठा। उसने धीरे से कहा—'हकीमजी से मैंने कहा, पेटवाला!' उन्होंने नाराज़ होकर पूछा—'पेट साफ़ करने का?' मैंने कह दिया—'हाँ।' हकीम चचा ने चूरन दे दिया। मैं लेकर चला आया। मुझे क्या पता कि इसमें क्या है? काम करो तो, न करो तो मरम्मत जुम्मन की ही होती है। उस साले हकीम से कोई नहीं पूछता कि इसमें क्या है? मैं आज से तौबा करता हूँ कि कभी दवा लाने न जाऊँगा।" इतना कहकर वह कान पकड़कर उठने-बैठने लगा।

जुम्मन की यह दशा देखकर ज़ुबेदा, राहत एवं सलीम सभी हँस पड़े। वह सलीम को तिरछी नज़रों से देखता हुआ कुछ दूरी पर जाकर बैठ गया, और मुँह बनाकर बोला—"हँसो, ख़ूब हँस लो। ऐसा मौक़ा फिर न मिलेगा।"

उसी समय सामने से सूबेदार साहब आते दिखाई पड़े। उनके पीछे-पीछे एक आदमी हाथ में कुछ बटेरें लिए था। सूबेदार साहब अपनी छड़ी के इशारे से उसे कुछ बताते हुए आ रहे थे। उन्हें आते देख राहत और ज़ुबेदा, दोनो भीतर चली गईं। सलीम अपने कमरे में जाकर लेट रहा। जुम्मन मियाँ बटेरें देखते ही ख़ुश हो गए। वे पायजामा समेटकर सूबेदार साहब की तरफ़ भाग चले।

सूबेदार साहब ने साथ के आदमी को इशारा किया। उसने बटेरें जुम्मन मियाँ की ओर बढ़ा दीं। जुम्मन ख़ुशी में गिनने लगा—एक ! दो !! तीन !!!........उफ़्, पूरी सात ! और वह उछल पड़ा—"आज तो शोरबा बनेगा !"

सूबेदार साहब ने सिर हिलाते हुए कहा—"हाँ, जा, इन्हें घर में रख आ।"

जुम्मन घर की ओर भागा। दोनो हाथों में बटेरें थीं। दौड़ते समय उसका पैर पायजामे में फँसा। वह गिरते-गिरते बचा। चौखट पार करते ही वह उधर से आती हुई ज़ुबेदा से टकरा गया।

"उई !" ज़ुबेदा चीख़ पड़ी—"अंधा कहीं का।" उसने जुम्मन को ढकेल दिया।"

"बटेर हैं बटेर !" जुम्मन ने सँभलते हुए उत्तर दिया—"देखो न बीबी, अंधे के हाथ में बटेर।"

ज़ुबेदा हँस पड़ी। उसने दोनो हाथों की चुटकियों से जुम्मन के गाल पकड़कर झकझोर दिए। जुम्मन लजा गया, और शरमाते हुए बोला—"मेरे हाथ ख़ाली नहीं हैं, नहीं तो मैं भी यही करता। इसमें बड़ा मज़ा आता है।"

"क्या करता ?" ज़ुबेदा ने जुम्मन का कान पकड़कर पूछा।

"कुछ नहीं बीबी, कुछ नहीं।" जुम्मन ने गिड़गिड़ाते हुए उत्तर दिया।

"नहीं, बोल, क्या करता ?"

"इन बटेरों का शोरबा बनाता।"

ज़ुबेदा मुस्किरा उठी। जुम्मन भाग गया। आँगन में बटेरें फेंक-कर चिल्लाया—छोटी बी, छोटी बी !"

मगर कोई उत्तर नहीं आया। राहत उस समय शौचालय में थी। जुम्मन खड़ा-खड़ा बटेरों की ओर देखता रहा। उसी समय एक बिल्ली झपटी।

जुम्मन ने दोनो हाथों से तालियाँ पीटकर कहा "हुश !"

"जुम्मन !" बाहर से आती हुई ज़ुबेदा ने पुकारा।

"हाँ, बीबी !"

"बिल्ली ले गई न एक ?"

"नहीं तो।"

"झूठ बोलता है। गिन कितनी हैं ?"

जुम्मन ने एक-एक बटेर की टाँग पकड़कर गिनना प्रारंभ किया—

"एक ! दो !! तीन !!!.......ये रहीं सात। सातो तो हैं।"

"सात नहीं, आठ थीं, आठ।" अभी अब्बाजान से पूछकर आ रही हूँ।"

"आठ नहीं, यहाँ सिर्फ़ सात थीं, आठवीं पाख़ाने में है !"

राहत शौचालय से वापस आ रही थी, बोली—"क्या कहा ?"

कुछ नहीं बीबी, मुझे नहीं मालूम था कि पाख़ाने में आप हैं।" इतना कह वह दयनीय दृष्टि से राहत की ओर ताकने लगा। मैं समझा पाख़ाने में सलीम साहब है !" कहते हुऐ उसने हँसने का असफल प्रयत्न किया।

राहत और ज़ुबेदा, दोनो विहँस उठीं। वह बटेरें फेंककर घर के बाहर चला गया।

सूबेदार साहब ने अपनी बैठक में पहुँचकर कपड़े बदले। छड़ी यथा-स्थान एक खूँटी पर लटका दी। साथ आए आदमी से कहा— "करीम, अब तुम जाओ। कल आना।" करीम सिर झुकाकर चला गया। तत्पश्चात् उन्होंने पास खड़े हुए जुम्मन को इशारा किया। जुम्मन ने मदिरा की बोतल और गिलास लाकर रख दिया। सूबदार साहब ने ज़ोर से पुकारा—"सलीम मियाँ !"

मगर सलीम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

जुम्मन ने सूबेदार साहब के कान में धीरे से बताया कि सलीम की तबियत ख़राब है—पेचिश पड़ रही है। सूबेदार साहब ने अकेले ही मदिरा-पान किया, और फिर लेट रहे। जुम्मन उनके पैर दबाने लगा।

शाम को भोजन में बटेर का शोरबा एवं चपातियाँ बनीं। जब भोजन तैयार हो गया, ज़ुबेदा सलीम के पास खाने को पूछने गई। मगर सलीम ने उसे देखते ही करवट बदल ली। सलीम की यह हरकत देखकर ज़ुबेदा मुस्किरा उठी। उसने सलीम की चार-पाई के पास जाकर धीरे से कहा—"कहिए सलीम मियाँ, सो गए क्या ?"

"नहीं तो।" सलीम ने क्रोध को दबाते हुए उत्तर दिया।

इधर देखिए, मेरी तरफ़।" ज़ुबेदा ने सलीम का हाथ पकड़कर हिलाते हुए कहा।

सलीम घूम गया। ज़ुबेदा ने हाथ छोड़ दिया, और फिर दबे स्वर में पूछा—"खाना तैयार है, लाऊँ ? आप क्या खाएँगे ? बटेर का शोरबा या मूँग की खिचड़ी ?" सलीम मुस्किरा दिया। उसने धीरे से कहा—"मेरी जान ही लेने पर उतारू हो क्या ?" और उसने ज़ुबेदा का हाथ पकड़कर धीरे से दबा दिया।

"हुश !" ज़ुबेदा ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"फिर वही हरकत ?"

सलीम ने हाथ छोड़ दिया। ज़ुबेदा कहती गई—"मालूम पड़ता है, अब आपको दूसरा जुलाब देने की ज़रूरत है !"

सलीम झेंप गया। ज़ुबेदा ने पुनः पूछा—"बोलो, क्या खाओगे ?"

"जो तबियत चाहे, खिला दो।" सलीम के स्वर में समर्पण की भावना थी।

"चपाती-शोरबा लाऊँ ?"

"लाओ।" मानो सलीम के मुख में पानी भर आया हो।

"मगर तुम्हारी आपा कह रही थीं, पेट ख़राब है, मूँग की खिचड़ी बेहतर रहेगी।"

ज़ुबेदा ने सलीम की आँखों में आँखें गड़ाकर कहा—"खिचड़ी बना दूँ।" फिर कान में धीरे से कहा—"पियोगे भी ?"

सलीम ने उत्तर में केवल सिर हिला दिया।

ज़ुबेदा चुपचाप कमरे के बाहर निकल गई। थोड़ी देर बाद, अपनी ओढ़नी में गिलास छिपाए, वापस आई। सलीम प्रसन्न हो उठा। ज़ुबेदा ने धीरे से द्वार बंद कर गिलास सलीम की ओर बढ़ा दिया। सलीम ने गिलास पकड़ते हुए कहा—"अपने हाथ से पिलाओ।"

"अच्छा !" ज़ुबेदा ने मुँह बनाते हुए कहा—"फिर पर निकलने लगे ? अपने हाथ से पिलाऊँ ?"

"तुम्हारे हाथ से ज़्यादा नशा चढ़ेगा।"

"अच्छा जनाब ! अभी थोड़ी देर में कहेंगे, अपने हाथ से खिलाओ, ज़्यादा खाया जायगा। अपने हाथ से चारपाई बिछाओ, ज़्यादा नींद आएगी। पीना है, तो पी लीजिए। नख़रे दिखाना है, तो दिखाते रहिए। यहाँ कोई फ़ालतू नहीं बैठा है, जो आपके नाज़ उठाता फिरे।"

सलीम ने लजाकर गिलास होठों से लगा लिया, और एक ही साँस में ख़ाली कर दिया।

"और चाहिए ? लाऊँ ?" ज़ुबेदा ने पूछा।

"लाओ।" सलीम ने उसके मुख की ओर शरारत से देखते हुए कहा। ज़ुबेदा ने गिलास उठा लिया। फिर नख़रे से बोली—"लाने को तो लाती हूँ, मगर कहीं बदमाशी न कर बैठना। होश-हवास ठीक रखना। अच्छा !"

सलीम ने सिर हिलाकर कहा—"आपका हुक्म सर-आँखों पर।"

ज़ुबेदा ख़ुश हो गई। उसने सलीम के कान में धीरे से कहा—"ज़्यादा न पिया करो। नशा आदमी को निकम्मा बना देता है। कहीं जुम्मन की-सी हालत न हो जाय, और तुम भी तालियाँ पीटते फिरो!" कहते-कहते वह हँस पड़ी।

सलीम से अब न रहा गया। उसने ज़ुबेदा की उँगलियाँ पकड़कर ज़ोर से मसल दीं।

"या अल्लाह!" ज़ुबेदा चीख़ी, और उसने ज़ोर से पुकारा—"चचीजान!"

"क्या है ज़ुबेदा!" राहत ने आँगन से पूछा।

"मेरी क़सम, कुछ न बताना!" सलीम ने जल्दी से ज़ुबेदा का मुँह बंद कर दिया। उसका शरीर काँप रहा था।

ज़ुबेदा गिलास लेकर निकल गई। उसने राहत से कहा—"चचीजान, वह शोरबा-चपाती नहीं खायँगे। उनके लिये मूँग की खिचड़ी बना दो। कह रहे थे, खिचड़ी बड़ी मुफ़ीद होती है।"

यह तो मैंने पहले ही तुमसे कहा था, खिचड़ी पेट के लिये मुफ़ीद होती है!" कहकर राहत ने एक पतीली में खिचड़ी चढ़ा दी।

"और सुनो चाची!" ज़ुबेदा ने कहा—"तुम्हीं खिला आना। मैं अब्बा का खाना लिए जाती हूँ।" कहकर ज़ुबेदा ने सूबेदार साहब के लिये खाना परोसना शुरू कर दिया।

सलीम प्रतीक्षा ही करता रहा। ज़ुबेदा फिर लौटकर नहीं गई।

---

[६]

दूसरे दिन प्रातः काल ही, शाह इब्राहीम शर्की ने कड़े के क़िले से जौनपुर के लिये कूच कर दिया। उनके प्रस्थान करने के पूर्व ही सैयद साहब ने सलमा एवं राजा डल—संबंधित समस्त बातें बता दी थीं। प्रत्युत्तर में शाह साहब ने सैयद को कड़े के क़िले में ही रुकने का आदेश देते हुए कहा—"राजा डल पर हमला करके उसे शिकस्त देना कोई हँसी-खेल नहीं हैं। पहले हमें उसके क़िले की एक-एक बात का पता लगाना होगा। ब-ज़रिये जासूस तुम यह काम कड़े में ही रहकर ब-आसानी कर सकते हो। क़िले का राज़ मालूम हो जाने पर ही हमला करने का कुछ नतीजा निकल सकता है। इतमीनान हो जाने पर मुझे इत्तिला करना। जल्दबाज़ी करने की कोई ज़रुरत नहीं। मैं शातिर और उसके सिपाहियों को क़िले में ही छोड़े जा रहा हूँ, उनसे मदद लेना!" कहकर शाह साहब सैयद की ओर देखने लगे।

सुझाव अच्छा था। सैयद साहब को पसंद आया। उन्होंने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए नम्रता से कहा—"जहाँपनाह, आप बजा फ़रमाते हैं, मगर क्या करूँ, एक काफ़िर की बेजा हरकत ख़ून खौला रही है।"

"ठीक है!" शाह ने कहा—"यह तुम्हारी ही नहीं, मेरी भी इज़्ज़त का सवाल है। क्योंकि उसने सलमा के साथ छेड़खानी कर शाह-ए-जौनपुर को चुनौती दी है, बाबर सैयद को नहीं!" इतना कह उन्होंने सैयद की ओर निहारा।

सैयद साहब नत-मस्तक हो गए। शाह ने पुनः कहा—"मुझे

तो ऐसा लगता है कि इसने पूरे इस्लाम को चुनौती दी है। मगर इतमीनान से काम लेने की ज़रूरत है।" कहकर शाह साहब चुप हो गए।

उसी समय प्रस्थान का गोला दगा। सैयद ने अभिवादन किया, और शाह साहब जौनपुर की ओर चल पड़े। जाते समय वह हुसेन को अपने साथ लेते गए।

शाह के चले जाने के बाद क़िले में सन्नाटा छा गया। महीनों की वह चहल-पहल, रौनक़ और ऐश-ओ-आराम सब कुछ लुट-सा गया। चारो तरफ़ मनहूसियत छा गई।

आज कई दिनों से सलमा क़िले में ही बंद थी। उसकी बाहर निकलने की हिम्मत ही न पड़ती थी। पड़े-पड़े जी ऊब रहा था। कुछ रात बीतने पर जब चाँद का प्रकाश चारो ओर फैल गया, सलमा भी अपनी 'अम्मी' से इजाज़त लेकर बाहर निकली। वायु का मादक स्पर्श पाकर उसकी चेतनता लौट आई। मन हरा हो गया। संपूर्ण उदासी दूर हो गई। वह आगे बढ़ी। सामने एक टीला था। वह टीले पर चढ़ गई। टीले से वह स्थान उजाली रात में स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था, जहाँ उसका राजा डल से साक्षात्कार हुआ था। सलमा खड़ी-खड़ी, बहुत देर तक, वह स्थान टकटकी लगाए देखती रही, सोचती रही। राजा की एक-एक बात उसे याद आती रही। "सलमा मेरे लिये ईद का चाँद तुम्हीं रहोगी।" सलमा ने धीरे से राजा डल के अंतिम शब्द दुहराए, और फिर वह स्वयं ही मुस्किरा उठी।

"ईद का चाँद!" सलमा ने कुछ ज़ोर से कहा—"काफ़िर कहीं का। आया था मुझे अपनी बीवी बनाने! चोट्टा! वह फिर मन-ही-मन सोचने लगी—"नहीं, वह चोट्टा न था।" "अगर मुझे ज़बर-दस्ती उठा ले जाता, तो?" उसने अपने आप प्रश्न किया। "उसके

साथ सिपाही भी थे। गोद में उठाकर ले उड़ता, तो मैं अकेली क्या करती? मगर था शरीफ़!" सलमा मुस्किरा उठी। "एक राजा में जो शराफ़त होनी चाहिए, वह उसमें थी। किस अदा से कहा था—सलमा! गंगा के रेत में तरबूज़ पनपते हैं, हुस्न नहीं!" सोचकर सलमा अपने आप में शरमाकर रह गई। कल्पना-सागर में डूबती-उतराती धीरे से बुदबुदाई—"वाह! क्या सुंदर विचार थे। मालूम होता है, मेरा हुस्न उसी के लिये है।" सलमा ने अपने शरीर पर एक विहंगम दृष्टि फेंकी। चाँदनी में उसका एक-एक अंग चमक रहा था। शीतलता बरस रही थी। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर अँगड़ाई ली। छाती कसमसा उठी। एक लंबी साँस के साथ हाथ नीचे उतरे। उसने अपना दाहना हाथ ज़ोर से झटक दिया—"कितनी ज़ोर से कलाई मसल दी थी बदमाश ने कटार छुड़ाते समय। अब भी दर्द हो रहा है। पता नहीं, कितनी ताक़त थी उसमें। मेरी कलाई पिसकर रह गई।" उसने बाएँ हाथ की उँगली से दाहनी कलाई की नसें मलना शुरू किया। दबा हुआ दर्द उभरा। हाथ में हल्की-सी सूजन आ गई थी। उसने अपनी ओढ़नी का छोर कलाई में लपेट लिया। उसी समय कुछ फिर याद आया। वह सोचने लगी—"सलमा! सीमा राज्यों की ही होती है, दिल की नहीं।" "आया था सलमा के आगे अपनी दरियादिली दिखाने।" वह खिलखिला पड़ी। "देखूँगी उस समय उसकी दरियादिली, जब उसके क़िले की एक-एक ईंट गिराई जायगी।" सोचते-सोचते वह स्वयं काँप उठी। हँसी ग़ायब हो गई, और दिल ज़ोर से धड़कने लगा।

उसी समय गंगा के किनारे से कगार की ओर आती हुई उसे एक छाया-सी दिखाई पड़ी। वह डर गई। शरीर में रोमांच हो आया। वह लंबे पैरों क़िले की ओर भागी।

"सलमा !" आती हुई छाया ने धीरे से कहा—"डरो नहीं, मैं शातिर हूँ।" शातिर की आवाज़ पहचानकर सलमा रुक गई। शातिर आगे बढ़ा, और सलमा के निकट आकर खड़ा हो गया। सलमा अब कुछ-कुछ आश्वस्त हो चली थी। शातिर ने धीरे से कहा—"डर गईं क्या ?"

"नहीं तो !"

"फिर क्यों भागी जाती थीं ?"

"मुझे ऐसा लगा" सलमा ने हँसकर कहा—"मानो कोई जंगली जानवर आ रहा है !"

"अच्छा !" शातिर ने व्यंग्य समझकर कहा—"यह बात है। उसी तरह मैं भी तुम्हें चुड़ैल समझ लेता, तब ?"

शातिर की इस बात पर दोनो हँस पड़े। सलमा ने हँसते हुए कहा—"देखो, भूतों-प्रेतों की बातें न करो, मुझे डर लगता है।"

शातिर वहीं टीले पर बैठ गया, सलमा खड़ी ही रही। उसकी ओर देखकर शातिर ने कहा—"सलमा ! तुम भी बैठो, कुछ बातें करनी हैं।"

"करो न।" सलमा बोली—"क्या खड़े-खड़े बातें नहीं की जातीं ?"

"की जाती हैं।" शातिर ने उत्तर दिया—"मगर इस तरह नहीं कि एक खड़ा रहे, और दूसरा बैठा।"

"तुम भी खड़े हो जाओ," कहकर सलमा कुछ सोचने लगी।

"क्या सोच रही हो ?"

"कुछ नहीं, अब्बा आते होंगे।"

"अभी न आएँगे। वह दीवाने-ख़ास में बैठे शम्सुद्दीन साहब से बातें कर रहे हैं। तुम निश्चिंत रहो। मैं वहीं से आ रहा हूँ। आओ, बैठो।"

सलमा बैठ गई। शातिर को लक्ष्य कर बोली—"शातिर !

देखो, कितना अच्छा चाँद है। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो गंगा की एक-एक लहर पर एक-एक चाँद खेल रहा हो।"

सलमा की भावमयी बात सुन शातिर मुस्किरा उठा और व्यंग्य करता हुआ बोला—"सलमा, यह शायरी करने से अच्छा था, कुछ मतलब की बातें करतीं।"

"क्या तुम्हें चाँद अच्छा नहीं लगता ?" सलमा ने प्रश्न किया।

"नहीं।" शातिर ने उत्तर दिया।

"फिर क्या अच्छा लगता है ?"

"चाँद-सा मुख !"

"धत् !" सलमा ने लजाते हुए कहा—"जिसे चाँद अच्छा न लगेगा, उसे चाँद-सा मुख भी नहीं।"

"सलमा !" शातिर ने धीरे से कहा।

"बोलो न।" सलमा ने उसे तिरछी निगाहों से देखते हुए कहा।

"क्या मैं तुमसे कुछ उम्मीद करूँ ?" शातिर ने स्फुट किंतु अस्पष्ट शब्दों में कहा—"अब अकेले रहा नहीं जाता !" यह छोटा-सा वाक्य कहने के लिये उसे कितनी शक्ति लगानी पड़ी, इसका प्रमाण उसकी ज़ोर-ज़ोर से चलनेवाली साँसें दे रही थीं। सलमा शातिर का मंतव्य ताड़ गई, और गंभीर होते हुए बोली—"कौन कहता है, अकेले रहो। शादी कर लो।"

"किससे ?"

"जिससे तबियत चाहे।"

"मेरी तो तबियत तुम जानती हो।"

"हाँ, जानती हूँ।" कहते हुए सलमा का मुख-मंडल आरक्त हो उठा। उसने अपने को बहुत दबाया, फिर भी उसके मुख से निकल ही पड़ा—"शातिर, मैं सब कुछ जानती हूँ, मगर यह उम्मीद तुम छोड़ दो।"

शातिर के कलेजे में कटार-सी लग गई। इस परिवर्तन पर उसे विश्वास न हुआ। उसने अपनी बात की पुष्टि करनी चाही—"क्या तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करतीं ?"

"नहीं।"

"तो नफ़रत करती हो ?"

"नहीं।"

"फिर क्या करती हो ?" शातिर झल्ला उठा।

"कुछ भी नहीं।" सलमा यथावत् गंभीर बनी रही।

सलमा की इस बात पर शातिर कुछ क्षण मौन रहा। फिर मौनता भंग करते और बातों का क्रम बदलते हुए पूछा—"और सलीम से ?"

"उसका नाम न लीजिए।"

"झूठी कहीं की !" शातिर तड़प उठा। "महीनों से उसके साथ तंबू में मौज़ करती रहीं, क्या यह मुझे नहीं मालूम ?"

शातिर की इस बात पर सलमा तड़प उठी, और आवेश में बोली—"शातिर मियाँ ! जो कुछ मैंने किया, महज़ मा-बाप की मर्ज़ी के मुताबिक़, उन्हें ख़ुश करने के लिये। आप यक़ीन करें या न करें। लोगों के दिखावे के लिये मैं तंबू तक उसके साथ ज़रूर जाती रही, मगर वह कभी मेरी परछाईं तक न छू पाया। उसने कोशिश भी की, मगर मैंने उसे कोई ऐसा मौक़ा न दिया कि वह आगे बढ़ सके। मैं समझती थी, अब्बाजान मेरे साथ इस तरह सलीम को भिड़ाकर कोई सियासी चाल चल रहे हैं। इसी बिना पर, उस दिन दोपहर में, मुझमें और सलीम में झगड़ा भी हो गया। और इसी झगड़े की वजह से जिस दिन राजा ढल ने तंबू में मेरे साथ ज़बरदस्ती करनी चाही थी, सलीम मेरे साथ नहीं गया। तब से आज तक मैंने उसकी शक्ल भी नहीं देखी। अब मैं बेहद ख़ुश हूँ कि मेरे

रास्ते का एक काँटा निकल गया। अब मैं सुख से जी सकूँगी। अल्लाह उसे फिर मेरे सामने न लाए!" कहते-कहते सलमा की आँखें छलछला उठीं। उसने मुँह घुमाकर दुपट्टे के छोर से गीली पलकें पोंछ लीं। फिर शातिर की ओर मुख़ातिब होकर कहा—"शातिर, मुझे मुआफ़ करना। तुम्हें धोखा हुआ कि मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ। मेरे और तुम्हारे बीच में मुहब्बत नाम की कोई चीज़ न थी। मैं तुम्हें सिर्फ़ एक अच्छा दोस्त समझती रही, आज भी समझती हूँ, और आगे भी समझूँगी। मुझे उम्मीद है, तुम भी उसी निगाह से मुझे देखते रहोगे। यही मेरी तमन्ना है। उसके आगे कुछ न सोचना।" कहते-कहते उसका स्वर भारी हो उठा।

शातिर मौन रहा। उसके हृदय में झंझावात उठते रहे, और वह उन्हें भरसक दबाता रहा।

"शातिर!" सलमा ने करुणार्द्र स्वर में कहा—"क्या तुम्हें मेरी यह राय पसंद नहीं?" उसने अपना हाथ बढ़ाकर शातिर का हाथ पकड़ लिया। फिर गंभीर स्वर में बोली—"मैं जानती हूँ, मेरी इस बात से तुम्हें धक्का लगा होगा, मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ। मुहब्बत में मजबूरियों, बरबादियों और कमज़ोरियों के सिवा और है क्या? मगर एक सच्ची दोस्ती इंसान को इंसान बना देती है शातिर!"

शातिर सिहर उठा। उसकी आँखें भर आई थीं। वह कुछ न बोला, केवल सलमा को एकटक देखता रहा।

"मेरी बात तुम्हें पसंद नहीं?" सलमा ने उसका हाथ दबाते हुए कहा।

"दुरुस्त है, सलमा!" कहते-कहते शातिर का गला भर आया। उसने थोड़ा रुककर फिर कहा—"मगर कहीं तुमने धोखा दिया तो?"

"धोखा?" सलमा ने आश्चर्य से कहा—"यह बात ख़्वाब में भी

न सोचना शातिर ! यदि मुझे धोखा ही देना होता, तो मुहब्बत जताकर भी दे सकती हूँ, और बीबी बनकर भी। यह बात अपने दिमाग़ से निकाल दो शातिर ! सलमा ने कभी किसी को धोखा नहीं दिया। फिर तुम्हें ? तुम मेरे एक अच्छे दोस्त हो। इस तरह की बातें न सोचो।" उसने शातिर के मुख की ओर लालसा-भरी दृष्टि से देखा।

"यदि तुम्हारे अब्बा ने तुम्हें सलीम के साथ निकाह करने को मजबूर किया, तब ?" शातिर ने खड़े होते हुए शंका प्रकट की।

सलमा भी खड़ी हो गई। उसने कहा—"मैं अब्बा जान के फ़रेब को ख़ूब जानती हूँ। कल तक मैं उनकी हर बात मान सकती थी, मगर आज ! आज मैं उनकी एक बात भी मानने को तैयार नहीं। यदि उन्होंने मुझे ज़्यादा मजबूर किया, तो यह रही !" उसने हीरे की अँगूठी दिखाते हुए कहा—"इसी को चूस-चूसकर जान दे दूँगी, मगर सलीम से निकाह न करूँगी।"

"मैं तुम्हारी बात समझा नहीं ? इतनी जल्दी, कल और आज में यह फ़र्क़ क्यों ?"

"इस फ़र्क़ की वजह मैं ही समझ सकती हूँ शातिर, तुम नहीं।"

"इस फ़र्क़ का सबब राजा डल तो नहीं ?"

"नहीं।" राजा डल का नाम सुनते ही सलमा क्रोधित हो उठी। वह आवेश में बोली—"उस काफ़िर का नाम मेरे सामने न लो। इस फ़र्क़ का कारण मेरे वालदैन ही हैं शातिर ! इसी से कहती हूँ, तुम नहीं समझ सकते।"

शातिर ख़ामोश हो गया। सलमा ने एक बार फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"अब काफ़ी समय हो गया। यहाँ रुकना ठीक नहीं। अब्बाजान आते होंगे। तुम मेरे एक अच्छे दोस्त की तरह रहना। अब कुछ न सोचना। अच्छा, अलविदा !" उसने

शातिर की हथेली चूम ली, और एक झटके के साथ क़िले की ओर बढ़ गई।

शातिर मूर्तिवत् वहीं खड़ा रहा। चाँद आकाश में छिपने की तैयारी कर रहा था। गंगा की लहरें अपने आप में बनती बिगड़ती, हँसती-खेलती, बढ़ी चली जा रही थीं।

सलमा जब क़िले में पहुँची, तो उसे यह जानकर संतोष हुआ कि सैयद साहब अभी वापस नहीं आए हैं। सदरुन खाना बनाए रसोई-घर में खोई-खोई-सी बैठी थी। बेगम साहबा आँगन में पड़ी-पड़ी कुछ गुनगुना रही थीं।

"क्या गा रही हो अम्मी ?" सलमा ने आँगन में प्रवेश करते हुए पूछा। फिर विना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही वह अपने कक्ष में कपड़े बदलने चली गई। जब वह कपड़े बदलकर वापस आई, तो अम्मी का गाना समाप्त हो चुका था। वह अपने रूखे-अधपके बाल समेटकर बाँध रही थीं।

"अम्मी, लाओ, मैं तुम्हारे बाल ठीक कर दूँ !" कहकर सलमा बेगम साहिबा के बालों में उँगलियाँ उलझाकर उनसे खेलने लगी। बेगम साहिबा थोड़ी देर तक यह सब देखती रहीं, फिर बोलीं—"तू खिलवाड़ कर रही है या बाल ठीक कर रही है ?"

"ठीक कर रही हूँ अम्मी ! खेल-खेल में ही ठीक हो जायँगे। तुम घबराती क्यों हो।"

उसी समय बाहर का द्वार खुला। सैयद साहब आँगन में आ-कर खड़े हो गए। सलमा और अम्मी, दोनो उठ बैठीं। सैयद साहब आँगन में ही बैठ गए, और बेगम साहिबा की ओर देखकर बोले—"सलीम आज भी नहीं आया ?"

"नहीं।" बेगम साहिबा ने उत्तर दिया—"पता नहीं, उसे क्या हो गया है। कहाँ तो घर से बाहर ही न निकलता था, और अब आने

का नाम ही नहीं लेता। क्यों सलमा, तूने तो नहीं कहा कुछ?"
सलमा चुप रही।

"मैंने कहा, सलीम से झगड़ा तो नहीं कर डाला?" बेगम साहिबा ने पुनः सलमा की ओर देखकर ज़ोर से अपनी बात दोहराई।

"नहीं।" कहकर सलमा अपने कक्ष की ओर चल दी। उसे यह चर्चा अच्छी न लग रही थी।

सलमा के जाने के पश्चात् बेगम साहिबा ने सदरुन से खाना लगाने को कहा। और स्वयं कक्ष में जाकर खाने की रक़ाबियाँ लगाने लगीं। उसी समय सैयद साहब ने बेगम साहिबा को लक्ष्य कर कहा—"सुना कुछ?"

"क्या?" बेगम साहिबा ने कौतूहल से पूछा।

"उस दिन राजा डल तंबू में अचानक नहीं आया था।"

"फिर?"

"उसे ख़त लिखकर बुलाया गया था।"

"क्या?" बेगम साहबा ने ओठों पर तर्जनी रखकर कहा।

"हाँ-हाँ, और जानती हो, यह ख़त किसने लिखा था?"

"किसने लिखा था?" बेगम साहिबा ने कौतूहल से पूछा।

"तुम्हारे सलीम ने।"

"या अल्लाह!" बेगम साहिबा ने एक लंबी साँस छोड़ी। उन्हें ऐसा लगा, मानो उनके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकी जा रही हो। उन्होंने पुनः बात की पुष्टि करनी चाही—"सलीम ने?"

"हाँ-हाँ, सलीम ने।" सैयद साहब ने थोड़ा रुककर धीरे से कहा—"मुझे यह बात शाम को सलीम ने ही बताई है। और कुछ सुनोगी? चिट्ठी ले जाने का काम किया था हुसेन ने।"

अब बेगम साहिबा इससे अधिक कुछ न सुन सकीं। उनका सिर

चकराने लगा। उन्होंने कहा—"या खुदा! दुनिया में किसी पर भी एतबार नहीं किया जा सकता।"

सैयद साहब गंभीर बने बैठे रहे।

सदरुन रक़ाबियों में खाना लगाकर रख आई थी। सैयद साहब अपने कक्ष में जाकर खाना खाने लगे। बेगम साहिबा आँगन में ही चारपाई पर पड़ी-पड़ी कुछ सोचती रहीं। कभी उनकी आँखों के सामने सलीम का चेहरा आता, कभी हुसेन का।

सलमा ने अपने कक्ष से ही पुकारा—"सदरुन, क्या आज खाना आधी रात को ही मिलेगा?"

"लाई बीबी।" कहकर सदरुन खाना परोसने लगी।

चाँद डूब चुका था। अंधकार की पतली चादर आकाश से उतर-कर क़िले को ढकने लगी थी। गंगा के किनारे कछार में वन्य-पशु बोल रहे थे।

---

[१०]

महाराज का आदेश पाकर सावित्री अपनी कोठरी में चली आई। उस समय रात्रि का प्रथम प्रहर था। क़िले में लोग अभी जाग रहे थे। कुछ पड़े-पड़े गप्पें लड़ा रहे थे। वायु बंद थी, और कुछ-कुछ उमस थी।

सावित्री जब अपनी कोठरी की साँकल खोल रही थी, तो उसकी पड़ोसिन राधा ने पुकारा—"हे सावित्री बिटिया, सुन तो।"

सावित्री ज़ंजीर खोलकर राधा की ओर मुड़ गई। राधा अधेड़ आयु की एक ठिंगनी, काली स्त्री थी, जो सैनिकों के भोजनालय में बर्तन साफ़ करने का काम करती थी। राधा अपनी कोठरी के सामने, दरवाज़े पर चारपाई डाले, बैठी थी। उसके शरीर पर मोटी, सफ़ेद धोती थी, और हाथ-पैरों में चाँदी के मोटे-मोटे कड़े, गले में चौकीदार चाँदी की हमेल थी, और बाँहों में घुँघुरूदार बहुँटे। नाक में सोने की, बड़ी-सी, मोटी नथ पड़ी थी, जिसका एक सिरा काले-रेशमी डोरे से कान के सहारे बँधा था कि कहीं नथ के भार से नाक न फट जाय। वह धोती समेटे, अपनी मोटी-मोटी, काली जाँघें अधखुली किए, पैर फैलाए चारपाई पर बैठी थी। एक हाथ से पंखा झल रही थी, और दूसरे से कान के कर्णफूलों को घुमा रही थी। सावित्री ने राधा के निकट जाकर पूछा—"क्या है, राधा बुआ?"

राधा ने पंखा रख दिया, और अपनी मोटी-भद्दी नाक में पड़ी नथ को दोनो हाथों से घुमाते हुए कहा—"बिटिया, गजराज आया

है। कह गया है एक आवश्यक काम से जा रहा हूँ, अभी थोड़ी देर में लौटूँगा, सावित्री से बता देना।

"कहाँ गए हैं बुआ ?" सावित्री ने राधा की नथ की ओर देखते हुए पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानती। थोड़ी देर में ही आने को कह गया है।" इतना कह राधा बुआ लेट गईं, और पंखा उठाकर डुलाने लगीं।

सावित्री अपनी कोठरी में लौट आई। उसने कोठरी का द्वार खोलकर दीपक जलाया, बिस्तरा बिछाया। थोड़ी देर वह खड़ी सोचती रही, और फिर एक काली धोती पहनकर, छुन्न-मन्न करती बाहर निकल आई। वह समझ गई थी, गजराज कहाँ होगा।

"नंदू भैया!" सावित्री ने नंदू की कोठरी के निकट जाकर पुकारा।

नंदू बाहर चारपाई पर लेटा बिरहा गा रहा था। उसने सुना नहीं, और गुनगुनाता ही रहा—

"ऊँचे पर से गायों बिरहवा,
नीचे मोर ससुरार, सजनी !
नीचे मोर ससुरार !

"हे नंदू भैया !" सावित्री ने ज़ोर से पुकारा। नंदू हड़बड़ाकर उठ बैठा। सावित्री ने मुस्किराते हुए कहा—"पड़े-पड़े बिरहा गाने से संतोष न होगा। कब तक बिरही बने रहोगे? भाभी को ले आओ न।" कहती हुई वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर बोली—"खाना खा चुके ?"

"नहीं सावित्री ! आओ, बैठो।" नंदू ने उसके पैरों की ओर देखकर कहा—"आज तुम ख़ूब छुन्न-मन्न कर रही हो, कड़े-छड़े पहन रक्खे हैं क्या ?" फिर कुछ रुककर उसने सावित्री पर व्यंग्य किया—

"मेरी समझ में नहीं आता, औरतें दो-दो सेर भार उठाए किस प्रकार घूमा करती हैं ?"

सावित्री बैठी नहीं, खड़ी ही रही। बोली—"तुम्हें क्या पता इस चाँदी में कितना ममत्व है। घर जाना, तो पूछ लेना। हाँ, खाना क्यों नहीं खाया ?"

"गजराज आया है न, उसी को परख रहा हूँ।" नंदू ने कहा—"पता नहीं, कहाँ चला गया। तू जानती है ?"

"मैं क्या जानूँ।" सावित्री बोली—"तुम्हारे मित्र हैं, मुझे क्यों बताने लगे।" फिर कुछ क्षण मौन रहने के बाद सावित्री ने कहा—"नंदू भैया, यदि वह आएँ, तो कह देना, चारपाई बिछी है, आराम करें। मुझे आने में कुछ देर लगेगी।

"क्या तुम कहीं बाहर जा रही हो ?" नंदू ने पूछा।

"नहीं, यहीं क़िले में हूँ। महाराज का कुछ कार्य है।"

"न रात, न बिरात; जब देखो महाराज का काम है। लड़की न ठहरी, बैल हो गई !" फिर सावित्री की ओर देख विनोद से बोला—"'जेहिकै होय बज्र कै टाना, तौ वह खाय राज कै दाना।' क्यों सावित्री ?"

सावित्री कुछ न बोली। केवल हँसती हुई बाहर निकल गई।

सावित्री क़िले के फाटक से निकलकर, राजपथ से होती हुई, गंगा-तट की ओर चली। कलकल निनाद करती गंगा की लहरें बही चली जा रही थीं। सामने तट पर पीपल का एक बड़ा-सा पुराना वृक्ष खड़ा था। वायु से उसके पत्ते खड़खड़ा रहे थे। मंदिरों में दीपक जल रहे थे। तट पर ही कई नावें बँधी थीं। दो-चार मल्लाह उन्हीं पर सोए हुए थे। सावित्री ने तट पर पहुँचकर गंगा मैया को प्रणाम किया, फिर किनारे-किनारे श्मशान-घाट की ओर बढ़ चली।

श्मशान-घाट, उस स्थान से पूर्व की ओर, लगभग चार फ़र्लांग की

दूरी पर, बस्ती से अलग, एक भयानक स्थान पर, था। मानकपुर की सड़क यहीं गंगा-तट से मिलती थी। सड़क से पूर्व की ओर, एक ऊँचे टीले पर, पीपल के पेड़ के नीचे, औघड़ बाबा की फूस की झोपड़ी थी, जहाँ प्रति मंगल एवं रविवार को ऐच्छिक वस्तु माँगने-वालों का मेला-सा लगा रहता था। औघड़ बाबा के लिये मशहूर था कि वह पहुँचे हुए तांत्रिक हैं। तंत्र के बल से वह पिशाचिनियों को बुला लिया करते हैं। बारह वर्षों तक उन्होंने कलकत्ते में रहकर पिशाच सिद्ध किया है। जब सिद्धि मिल गई, तो संसार के लाभार्थ परोपकार में निकल पड़े। अब डलमऊ ही उनका स्थायी निवास था। वह अन्न के स्थान पर साँप, छिपकली, गोह एवं कीड़े-मकोड़े जीते-जी कच्चे ही खा जाया करते थे। उनके बारहो मास इसी झोपड़ी में नंगे बदन बीतते थे। उनके विषय में यह भी प्रचलित था कि वह किसी से कुछ लेते नहीं। कार्य-सिद्धि हो जाने पर केवल अपने पिशाच के लिये मिष्ठान्न का प्रबंध करवाते हैं। औघड़ बाबा की डलमऊ में ही नहीं, अपितु चतुर्दिक् बड़ी धूम थी। दूर-दूर से लोग आया करते थे।

सावित्री श्मशान-घाट पर पहुँचकर थोड़ी देर तक खड़ी-खड़ी आवाज़ें सुनती रही। कुछ दूरी पर किसी की चिता जल रही थी। आग की लपटें उठ-उठकर कपड़े में लिपटे भौतिक शरीर को नष्ट कर रही थीं। चिनगारियाँ चिटख़-चिटख़कर चारो ओर फैल रही थीं। कुछ देर में चिता निर्धूम हो गई। जलती हुई लाश की चर्बी की दुर्गंधि वातावरण को दूषित बनाने लगी। सावित्री पीछे खिसकी और पश्चिम की ओर थोड़ा हटकर औघड़ बाबा की झोपड़ी के किनारे से अन्य टीले पर चढ़ गई। वहीं एक पुराना पाकर का पेड़ था, जिससे कुछ दूरी पर दो बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ आमने-सामने, दो सगे भाइयों की तरह, खड़े थे। पाकर के पेड़ की हरी-हरी

सघन पत्तियों की छाया में सावित्री खड़ी हो गई। आकाश में चाँद हँस रहा था। वृक्ष के नीचे से औघड़ बाबा की झोपड़ी साफ़ नज़र आ रही थी।

टीले पर एक चौकोर चबूतरा-सा बना था। उसके एक ओर फूस की झोपड़ी थी, जिसका द्वार पूर्व की ओर था। झोपड़ी के द्वार पर अस्थि-पंजर एवं मुर्दों की खोपड़ियाँ टँगी थीं। चबूतरे के हर कोने पर एक-एक कलश रक्खा था, जिन पर दीपक जल रहे थे। एक कलश से दूसरे कलश के बीच में पंक्ति-बद्ध सफ़ेद खोपड़ियाँ रक्खी थीं, और हर तीसरी खोपड़ी पर एक दीपक। झोपड़ी से थोड़ा हटकर एक चटाई पर औघड़ बाबा बैठे थे। उनके संपूर्ण शरीर पर भस्म मली हुई थी। गले में नर-मुंडों की माला पड़ी थी। उनके सामने कलश पर एक खोपड़ी रक्खी थी। खोपड़ी पर चार बत्तियोंवाला दीपक जल रहा था। उसी के पास आचमनी रक्खी थी। कलश से मिली हुई वेदी थी, जिसमें लकड़ियाँ धधक रही थीं। पास ही चिमटा गड़ा हुआ था। वेदी के चारो ओर थोड़ा-सा हटकर यजमानगण बैठे थे। उनकी संख्या अब काफ़ी घट चुकी थी, फिर भी औरत-मर्द मिलाकर सात-आठ से कम न थे।

सावित्री कुछ क्षण संपूर्ण दृश्य देखती रही, फिर वह पाकर के पेड़ में टेक लगाकर खड़ी हो गई।

औघड़ बाबा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलीं। बैठे हुए नर-नारियों के शरीर कंपायमान हो गए। बाबा ने सिर झिटका। गले में पड़ी मुंड-माल खड़खड़ा उठी। चिमटा उखाड़कर उन्होंने अपनी जाँघ पर रख लिया। झोली से एक सिद्ध की हुई तेली की खोपड़ी निकाली। उसे जल-पात्र में डुबोकर बाहर रख दिया। अपनी बाईं तर्जनी को उन्होंने एक तेज़ छुरी से फाड़ दिया। रक्त छलछला आया। वही रक्त उन्होंने खोपड़ी में पोत दिया। खोपड़ी लाल हो

गईं। सामने बैठे हुए व्यक्तियों को रोमांच हो आया। उनके मस्तक श्रद्धा से झुक गए। रक्त की कुछ बूँदें उन्होंने आग में छिड़कते हुए सम्मुख बैठे एक व्यक्ति से पूछा—"बोल, तू क्यों यहाँ आया ?"

व्यक्ति ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"महाराज, मेरी दो वर्ष की लड़की को पता नहीं, क्या हो गया। वह मा का दूध नहीं पीती। यदि पीती भी है, तो उसके पेट से ख़ून गिरता है।

औघड़ बाबा ने पलकें बंद कीं। कुछ सोचा, फिर लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—"उसे फेरा हो गया है, फेरा ! फेरा जानता है ?"

"हाँ, महाराज !"

"तो इसे ले जा।" बाबा ने थोड़ी-सी राख देते हुए कहा—"उसकी दाहनी कलाई में बाँध देना। भूत, पिशाच, योगिनी, भैरों, जिसका भी फेरा होगा, छूट जायगा।

उस व्यक्ति ने श्रद्धा-पूर्वक भभूति ले ली, और दोनो हाथ जोड़-कर सिर झुकाया।

"चल, हट ! अपना काम देख।" बाबा गरज उठे। व्यक्ति दंड-वत् कर चला गया। सावित्री टेक लगाए खड़ी-खड़ी यह दृश्य देखती रही।

"तेरे को क्या है ?" बाबा ने सामने बैठी एक महिला से पूछा। महिला अपने में ही सिमट गई। वह एक लंबा घूँघट काढ़े, ऊपर से चादर लपेटे, सकुची-सिमटी बैठी थी। बाबा के पूछने पर भी वह नहीं बोली। वैसे ही घूँघट काढ़े, सिर झुकाए बैठी रही।

"बोलती है कि बुलाऊँ डंकिनी को ?" बाबा ने क्रोध से कहा—"वही तेरा मुख खोलेगी। महिला काँप उठी। उसने धीरे से कहा—"महाराज ! मैं बड़ी विपत्ति में हूँ।"

"क्या विपत्ति है ?" बाबा ने लाल-लाल आँखें निकालते हुए

पूछा। सावित्री को महिला की आवाज़ कुछ परिचित-सी लगी। वह चौंक उठी, और ध्यान से पहचानने की कोशिश करने लगी।

बाबा के प्रश्न पर महिला ने कहा—"महाराज, मेरी एक नई सौत आई है, जो मेरा सर्वस्व लूटना चाहती है। उसकी वजह से मुझे बड़ा कष्ट है। कोई निदान कीजिए।"

"निदान!" औघड़ ने अट्टहास किया—"उसे यम-लोक भेज दूँ?"

"हाँ, तभी मेरा कल्याण है।"

महिला ने उत्तर दिया। सावित्री सिहर उठी। अपने आपमें खीझकर बोली—"पापिन कहीं की, हत्यारिन, दुष्टा! अपना कक्ष छोड़ यहाँ घूम रही है, और कलंक लगाती है बेचारी कंचुकी को!"

यह बड़ी रानी वासुमती थीं, जो साधारण वेश में, गुप्त रूप से, औघड़ बाबा के पास आई थीं। सावित्री उन्हें पहचानकर मन-ही-मन बौखला उठी।

"चल, उधर बैठ, अभी तेरे लिये प्रबंध करता हूँ!" औघड़ ने गरजकर कहा। महिला कुछ दूर हटकर पूर्ववत् बैठ गई।

"तुझे क्या हुआ?" सामने बैठी एक रुग्णा तरुणी से बाबा ने प्रश्न किया। तरुणी सहम गई। उसके भोले मुख-मंडल पर भय की रेखाएँ उभर आईं। पीली, निस्तेज आँखें बाबा के अरुण नयनों से टकराकर धरती की ओर देखने लगीं। वह अट्ठारह वर्ष की अस्वस्थ, किंतु रूपवती नवयुवती थी। बाबा ने एक बार उसके उभरते यौवन पर दृष्टि डाली, और कड़ककर पूछा—"बोल, क्या चाहती है?"

"महाराज!" लड़की ने कहा—"उस दिन आपने मेरे घर पर बताया था कि मुझे किसी ने कुछ करा दिया है, इसी से मैं घुलती जा रही हूँ। आपके ही आदेश पर यहाँ आई हूँ।"

"उफ़् !" बाबा ने एक लंबी साँस ली—"तू है !" फिर कुछ रुक-कर कहा—"तेरे ऊपर ब्रह्मराक्षस का फेरा है। वह बहुत मुश्किल से छोड़ता है, फिर भी उसे मेरे सामने भागना ही पड़ेगा।" इतना कह उन्होंने रक्तरंजिता छुरी से एक चक्र-सा बनाया। पूरी ताक़त के साथ छूरी की नोक ज़मीन में गड़ाई। छूरी का ज़मीन में गड़ाना था कि लड़की बेहोश होकर गिर पड़ी। बाबा ने छूरी निकाल ली। कलश के पानी के छींटे लड़की के मुख पर छोड़े। उसकी चेतना जगी। वह उठ बैठी। बाबा बोले—"चल, तू झोपड़ी में विश्राम कर। मैंने तेरी बंदिश कर दी है। अब उसे केवल निकालना बाक़ी रह गया है।"

लड़की उठकर झोपड़ी में चली गई। उसकी साँस फूल रही थी। सावित्री खड़ी देखती और सोचती रही कि यह नवयुवती कौन है?"

"तू क्या चाहता है?" बाबा ने सामने बैठे युवक से प्रश्न किया।

युवक ने सिर पर पड़े गमछे को हटाया, और फिर नत-मस्तक होकर कहा—"महाराज! आज दो वर्ष हुए मेरा विवाह हो चुका है, मगर अब तक एक भी संतान नहीं हुई। मैं बहुत परेशान हूँ।" इतना कहकर उसने मत्था टेक दिया। "बोलिए महाराज! क्या करूँ?" वह गिड़गिड़ाने लगा।

"हूँ!" बाबा ने दूसरा चक्र बनाते हुए कहा—"देख, मैं जो कुछ पूछूँ, बताता चल! बताएगा न?"

आज्ञा शिरोधार्य है भगवन्!"

"तो बता।" बाबा ने प्रश्न किया—"क्या है तेरी औरत की उम्र?"

"अट्ठारह-उन्नीस वर्ष।"

"रंग?"

"साँवला, किंतु चमकदार।"

"क़द ?"

लंबा, छरहरा।"

सावित्री मुँह में आँचल का छोर दबाकर हँस पड़ी। रोकने पर भी हँसी न रुकी। इधर बाबा ने गजराज से पूछा—"आँखें ?"

"बड़ी-बड़ी, कजरारी।" गजराज ने सिर झुकाए ही उत्तर दिया।

"और बाल ?"

"मुलायम, काले, सघन और लंबे।"

"हूँ!" औघड़ ने हुंकार भरी, और एक दृष्टि गजराज की ओर देख चुप हो गया। तत्पश्चात् छुरी की नोक उसने चक्र पर गड़ाई। गजराज बाबा की भावभंगिमा देखता रहा। सावित्री पाकर के वृक्ष से टिकी खड़ी हँसती रही। हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गए, पर हँसी न बंद हुई। थोड़ी देर बाद बाबा ने नेत्र खोले, और गजराज की ओर देखकर कहा—"इधर सुन!"

"जी, महाराज!"

"तेरी औरत उस जन्म की नर्तकी है। उसका एक राजा से प्रेम था। उसी के वियोग में वह मरी थी। अब भी उसके हृदय में उस की छाया है। जब तक वह छाया नहीं निकलती, संतान न होगी।"

उपाय महाराज ?" गजराज ने विवशता से कहा।

"तीन इतवार-मंगल उसे यहाँ लाना होगा। बस, ठीक हो जायगा। बोल, लाएगा ?"

गजराज कुछ न बोला।

"बोलता क्यों नहीं ?" बाबा ने क्रोधित होते हुए कहा।

"महाराज!" गजराज बोला—"वह मेरे कहने से न आएगी।"

सावित्री पुनः हँसी और एकटक गजराज की ओर देखने लगी।

"हाँ!" बाबा ने कहा—"यह मैं जानता हूँ कि वह तेरे कहने

से न आएगी, क्योंकि उसके हृदय पर तेरा नहीं, उसी राजा का अधिकार है। फिर भी उसे यहाँ तक लाना होगा। बोल, लाएगा?"

गजराज चुप रहा। वह समझ रहा था कि सावित्री को यहाँ लाना उसकी शक्ति के बाहर है। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। गजराज की इस मौनता पर बाबा क्रोधित हो उठे। उन्होंने कड़क-कर कहा—"बोलता है या बुलाऊँ डंकिनी को?"

गजराज अब भी मौन था।

सावित्री से अब न रहा गया। उसने अपनी काली धोती का फेंटा कसकर कमर में बाँधा। लंबे-लंबे बालों को बिखराकर चेहरा ढक लिया। झोपड़ी के पीछे से उसने तीन खोपड़ियाँ उठाईं। एक सिर पर रक्खी, शेष दो दोनो हाथों में। खोपड़ियों में दीपक जल रहे थे।

"बोल, अपनी औरत को यहाँ लाएगा कि बुलाऊँ डंकिनी को?" बाबा का स्वर तीव्र हो गया था। गजराज डंकिनी के नाम से ही काँप रहा था। उसके मुख से एक शब्द भी न फूटा। चारो ओर सन्नाटा छाया था।

ठीक उसी समय सावित्री काले वस्त्र पहने, बाल बिखराए, हाथ और सिर पर मुर्दों की खोपड़ियाँ रक्खे, सधे हुए शरीर से कि कहीं दीपक बुझ न जायँ, कड़ों-छड़ों से छूम-छनन करती हुई, आ खड़ी हुई।

गजराज काँप उठा। सबका हृदय डोलने लगा।

बाबा भी मन-ही-मन घबरा उठे। मगर अपने को संयत कर बोले—"देख, डंकिनी आ गई न!"

सब उठकर भागने लगे। सावित्री ने ललकारा—"ख़बरदार! यदि कोई चबूतरे के नीचे उतरा, तो खा जाऊँगी। सब यहीं खड़े रहो!" डर के मारे सभी पंक्तिबद्ध खड़े हो गए।

इसके बाद सावित्री ने बाबा की ओर देखकर कहा—"उठ !"

औघड़ बाबा उठकर खड़े हो गए। सावित्री ने कड़ककर कहा—"बोल, इस समय तूने क्यों बुलाया मुझे ?"

"देवी........" बाबा का स्वर कंठ में ही रुक गया। उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुका दिया।

"देवी के बच्चे !" सावित्री ने दाँत पीसे। जानता है, आज मैं तीन दिनों की भूखी हूँ। समय देखता है, न कुसमय, जब चाहा, बुला लिया। आज मैं तुझे ही भूनकर खाऊँगी, या इनमें से किसी को दे।" सावित्री ने पंक्तिकी ओर इशारा किया।

खड़े हुए नर-नारियों के शरीर से पसीना छूटने लगा, साँस फूलने लगी, और वे मुर्छित-से होने लगे।

"बोल, सोचता क्या है ?" सावित्री पुनः गरजी। उसने हाथ की खोपड़ियों को धरती पर पटककर कहा—"सबसे पहले मैं तेरा ही भोग लगाऊँगी !" कहते-कहते वह अति क्रोधित हो उठी। उसने कसकर एक लात कलश में मारी। वह चकनाचूर हो गया। वेदी पर जलती हुई लकड़ियों को उसने छिटका दिया। पड़ी हुई छुरी हाथ में ली, और उसकी धार उँगली से छूकर बोली—"देखूँ तो, इनमें से किसका मांस मेरे योग्य है ?" और वह झपटकर पंक्ति की ओर बढ़ी। सबसे पहले रानी वासुमती पड़ीं, जो पसीने से लथपथ थीं। सावित्री ने रानी की बाँह पकड़कर झकझोरते हुए कहा—"इसका तो ठीक है, मुलायम !" यह सुनते ही रानी बेहोश होने लगीं। सावित्री ने कड़ककर कहा—"दोनो हाथ खोल।"

यंत्रवत् रानी ने हाथ फैला दिए।

सावित्री ने एक भीषण अट्टहास करते हुए कहा—"इसका मांस तो मुलायम है, मगर यह क्या ? हाथ में अँगूठी !" फिर छुरी उठाकर बोली—"स्वर्ण से हमारी शत्रुता है !" इतना कहकर उसने

रानी का हाथ पकड़ लिया, और अँगूठी उतार ली। रानी का शरीर बुरी तरह काँप रहा था। सावित्री पुनः हँसी, और बोली—"चल, हट, औरत होने के नाते तुझे जीवन-दान दे रही हूँ। अब किसी का अनहित न सोचना।"

रानी सिर झुकाकर अलग हट गईं। उनकी देह में प्रकंपन अब भी विद्यमान था। तदनंतर सावित्री पुरुषों की ओर बढ़ी। उसे पुरुषों की ओर बढ़ते देख रानी वासुमती भगीं। चबूतरे से नीचे उतरकर वह इतनी तेज़ी से क़िले की ओर भागीं कि सामने न झाड़ देखा, न झंखाड़, केवल भागती ही रहीं।

सामने गजराज था। "तू क्यों यहाँ आया ?" सावित्री ने गजराज की ओर देखकर कड़ी आवाज़ में पूछा।

"देवी ! गजराज सकपका उठा। उसकी साँस तेज़ हो गई थी।

लड़का-लड़की माँगने ?" सावित्री ने सिर झिटककर बालों को लहराते हुए कहा।

हाँ-हाँ, देवी ! तुम तो सब कुछ जानती हो, अंतर्यामिनी !" गजराज ने प्रार्थना के स्वर में कहा।

सावित्री मन-ही-मन हँसी। उसने एक झटके से गजराज के सिर से गमछा खींच लिया। गजराज की धड़कन और तेज़ हो गई। "चल हट यहाँ से।" सावित्री गरज उठी—"लड़का-लड़की लेना हो, तो प्रातः यहीं औघड़ बाबा के पास से भभूत ले जाना। अपनी औरत को खिला देना, काम सिद्ध हो जायगा।"

"यदि न सिद्ध हुआ, तो ?" गजराज ने शंका की। "वर्षों से तो इनके पास दौड़ रहा हूँ।"

"तो मेरे पास आना।" सावित्री ने कहा—"मगर दिन में नहीं, रात्रि में।"

"गजराज अतिशय डर गया था।

सावित्री भी आगे बढ़ी। वेदी में अंगार धधक रहे थे। एक अंगारा उसने उठाकर कहा—"सब लोग यहाँ से चले जायँ, मैं केवल बाबा से निपटूँगी, जिसने मुझे बुलाया है।"

सब-के-सब जीवन-दान पाकर भगे। कुटी सूनी हो गई। सावित्री ने देखा, कोई इधर भाग रहा है, तो कोई उधर। वह मुस्किराती हुई बाबा की ओर मुड़ी।

बाबा का शरीर थरथरा रहा था। सावित्री ने झपटकर एक हाथ से बाबा की गर्दन पकड़ी, और दूसरे से रक्त-रंजित छुरी उठाकर कहा—"पापी कहीं का! ढोंग रचकर दुनिया को मूर्ख बनाता फिरता है? भोली-भाली लड़कियों की आबरू लूटता है, ऊपर से कहता है, मुझे 'पिशाच' सिद्ध है। बुला अपने पिशाच को, डंकिनी भी उसे देख ले, अन्यथा उतारे देती हूँ तेरे पेट में यह छुरा।" कहते हुए छुरी उसने बाबा के पेट पर लगा दी।

बाबा काँप उठे। वह पुनः बोली—"बोल, तुझे कौन-सा पिशाच सिद्ध है?"

"कोई नहीं।"

"तो फिर क्यों ढोंग रचता फिरता है?"

"पेट के लिये!"

"पेट के लिये?" सावित्री तड़प उठी—"पेट के लिये मेहनत कर, काम कर, तब पेट भरेगा। समझता नहीं, डलमऊ पर मेरा अधिकार है, यहाँ किसी की दाल नहीं गल सकती। आज वर्षों से मैं तेरी हरकतें देख रही हूँ। बोल, डलमऊ छोड़ता है या नहीं?"

"छोड़ूँगा!"

"कब?"

जब आज्ञा हो।"

प्रातःकाल यहाँ तेरा चोला दिखाई न पड़े, नहीं तो बोटी-बोटी

काटकर गंगा में बहा दूँगी। चल, हट। उसने बाबा को एक धक्का दिया। बाबा लड़खड़ाकर चबूतरे से नीचे गिर पड़े, और टीले से लुढ़कते हुए तट की ओर चले गए।

सावित्री ने कुटी में प्रवेश किया। एक कोने में तमाम खोपड़ियाँ रक्खी हुई थीं। एक ओर चटाई बिछी थी। उसी के पास एक थाली में कुछ मिष्ठान्न था। सावित्री ने अंदर बैठी हुई लड़की से स्नेह-पूर्वक कहा—"बेटी, उठ, मैं तुझे तेरे घर पहुँचा दूँ!" लड़की का हाथ पकड़कर उसने अपनी ओर खींचा। दोनो बाहर निकल आईं। लड़की डर से काँप रही थी। सावित्री ने बाहर आकर झोपड़ी में आग लगा दी, और लड़की को लेकर टीले के नीचे उतरी। लड़की का शरीर पसीने से नहा गया। सावित्री मन-ही-मन हँस रही थी। कुछ दूर चलने के बाद उसने पूछा—"कुमुदिनी, तू कैसे इसके चक्कर में फँसी?"

कुमुदिनी डंकिनी के मुख से अपना नाम सुनकर चौंक पड़ी। सावित्री ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"डरो नहीं कुमुद! मैं चुड़ैल नहीं, सावित्री हूँ।"

"सावित्री बहन!" चीख़कर कुमुदिनी सावित्री से लिपट गई। अब उसे होश आया। उसने विह्वल होकर कहा—"बहन! तुमने तो कमाल कर दिया। मैं तो डर से मरी जा रही थी। सावित्री हँस पड़ी। बोली—"क्या करूँ कुमुद! इस ढोंगी ने सबको मूर्ख बना रक्खा था। पहचाना तूने उसमें कौन-कौन थे?"

"न।" कुमुदनी ने कहा—"मैं नहीं पहचान पाई।"

"ख़ैर, जाने दे।" सावित्री बोली—"तू अपनी तो बता, इस पापी के चक्कर में कैसे फँसी?" इतना कहकर वह वहीं रुक गई। उसने अपने वस्त्र ठीक किए, बाल समेटे, गंगा-जल से हाथ-मुँह धोए, और फिर साड़ी का आँचल सिर पर डाल चल पड़ी। कुमुदिनी

ने राह में चलते-चलते बताना प्रारंभ किया—"बहन, यह परसों मेरे घर गया था। पिताजी उस समय नहीं थे। मैंने ही इसे भिक्षा दी थी। मेरा स्वास्थ्य इधर कुछ दिनों से ख़राब चल रहा है। यह मुझे देखकर बोला—"बेटी, लगता है तुझे किसी ने कुछ करा दिया है। तेरा चेहरा निस्तेज हो गया है। तू इसकी दवा कर।" उसकी यह बात सुनकर मैं डर गई। इस पर उसने कहा—"घबराने की कोई बात नहीं, मंगल के दिन मेरी कुटी पर आना। मैं सब प्रबंध कर दूँगा। फल-स्वरूप मैं घरवालों से छिपकर यहाँ चली आई।"

"यह अच्छी रही!" सावित्री बोली—"भगवान् की दया थी, जो आज बच गई, नहीं तो जानती है, उसने तुझे झोपड़ी में क्यों बैठाया था?"

"नहीं।" कुमुद बोली—"मैं क्या जानूँ।"

"हाँ, बड़ी भोली हो न!" सावित्री ने कुमुद को झकझोरते हुए कहा—"आज तुम्हारी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिलाकर रख देता!"

कुमुद सिहर उठी। उसनेमन-ही-मन भगवान् का स्मरण किया। सावित्री ने कहा—"ख़बरदार! अब इस प्रकार के ढोंगियों के चक्कर में न पड़ना। ये दुराचारी होते हैं। भोली-भाली लड़कियों की इज़्ज़त लूटना ही इनका पेशा है।

कुमुद का घर निकट आ गया था। वह सावित्री से बिदा लेकर उसे धन्यवाद देती हुई घर की ओर बढ़ी। सावित्री क़िले की तरफ़ चल पड़ी।

जब वह अपनी कोठरी में पहुँची, तो दीपक जल रहा था। गजराज चारपाई पर पड़ा कुछ सोच रहा था। सावित्री ने उसे देखकर कहा—"क्या बात है? नींद नहीं आई!"

"कुछ नहीं !" गजराज ने कहा—"तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

"तो अब सो जाइए। मैं आ गई। अभी तक कहाँ थे ?"

"तुम स्वयं ग़ायब थीं, मैं तो यहीं था !"

"झूठ बोलते हो !" सावित्री ने कहा—"अपने हृदय से पूछो !"

गजराज उसकी ओर एकटक देखने लगा। सावित्री ने मुस्कराकर आँखें नचाते हुए कहा—"गए थे न औवड़ बाबा के पास, लड़का-लड़की माँगने !"

गजराज विहँसकर रह गया। उसकी आँखों में डंकिनी का विकराल रूप अब भी घूम रहा था। शरीर काँप रहा था। प्रकट में धीरे से बोला—"नहीं तो।" सावित्री हँस पड़ी। बोली—"तब तो तुमने बड़ा अच्छा किया, जो आज नहीं गए।"

"क्यों ?" गजराज ने पूछा।

"कुछ नहीं।" सावित्री ने लापरवाही से उत्तर दिया—"लोग कहते हैं कि मंगल के दिन वह जिसके सिर से कपड़ा उतार लेता है, चाहे वह मर्द हो अथवा औरत, दूसरे इतवार तक डंकिनी उसे खा जाती है।" कहकर सावित्री गंभीर हो गई।

गजराज क्षण-भर कुछ सोचता रहा। चिंता और भय की स्पष्ट रेखाएँ उसके ललाट पर बनती, बिगड़ती रहीं। आज उसके ही सिर से उसका गमछा उतारा गया है। मगर यह गमछा बाबा ने नहीं, डंकिनी ने स्वयं उतारा है। उसने धीरे से साबित्री से पूछा—"यदि वह कपड़ा डंकिनी स्वयं उतारे, तो ?"

सावित्री गजराज के भोलेपन पर हँस पड़ी। बोली—"मैं जितना जानती थी, बता दिया। आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। पचीसों बार कह चुकी कि वहाँ न जाया करो। यदि कुछ हो गया, तो········।"

इतना कहकर वह लेट गई, और गजराज को बाहों में भरकर बोली—"तुम्हारी उम्र कितने वर्ष की है ?"

गजराज ने इस विचित्र-से प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों में खोपड़ी लिए हुए डंकिनी का रूप अब भी घूम रहा था।

रात-भर उसे नींद न आ सकी।

रायबरेली के राजा बाल का क़िला लगभग एक वर्ग मील फैला हुआ था। क़िले के बीचोबीच पत्थर का एक विशाल राजद्वार था,* जिसका मुख पूर्व की ओर था। राजद्वार से एक फ़र्लांग दक्षिण की ओर एक बहुत गहरी ख़ंदक़ थी, जिसका व्यास तीस फ़ीट से कुछ अधिक ही था। इस ख़ंदक़ की बनावट एक पक्के कुएँ की-सी थी।† ख़ंदक़ से मिली हुई एक सुरंग पश्चिम की ओर क़िले के भीतर तक जाती थी। उस सुरंग का फाटक क़िले के अंदर ही था, जिसमें बारी-बारी से सिपाही पहरा दिया करते थे।

इस ख़ंदक़ की बनावट अद्भुत थी। इससे एक फ़र्लांग की दूरी पर धनुषाकार गहरी खाईं क़िले के एक छोर से दूसरे छोर तक चली गई थी। इसमें सई-नदी का पानी सदैव भरा रहता था। इस गोलाकार ख़ंदक़ की गहराई लगभग ४५ फ़ीट थी। ख़ंदक़ का धरातल पत्थरों से जुड़ा हुआ था। ऊपर से ख़ंदक़ ढका था, और धरती के समतल था, जिसके निकट से सड़क जाती थी। यह सड़क क़िले के द्वार तक जानेवाले विस्तृत राजपथ से मिली हुई थी। इस ख़ंदक़ में अधिकतर राजबंदी रक्खे जाते थे, जिन्हें क़िले के भीतर से ही भोजन-पानी आदि पहुँचाने की व्यवस्था थी। राजा बाल के बंदी रेवंत को भी इसी में रक्खा गया।

आज तीन दिन से अधिक समय हो गया, रेवंत ने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। थोड़ी रात बीतने पर राजा बाल अपने

---

* यह राजद्वार अब तक विद्यमान है।

† यह ख़ंदक़ भी विद्यमान है, जिसे अब 'बड़ा कुआँ' कहा जाता है।

कक्ष में पधारे। वह अत्यधिक प्रसन्न मुद्रा में थे। व्यक्तिगत कक्ष में पहुँचकर उन्होंने राजसी वस्त्र बदले। साधारण वस्त्र पहन गद्देदार पलंग पर लेट गए। बाहर उनकी परिचारिका श्यामा खड़ी रही।

श्यामा साँवले-सलोने रंग की एक बीस वर्षीया नवयुवती थी। जिसका सौम्य मुख-मंडल सदैव मुस्किराता ही रहता था। उसकी मुस्कान में चंचलता नहीं, गंभीरता थी। शृंगार के नाम पर उसके मस्तक पर केशर अथवा कुंकुम की बिंदी-मात्र लगी रहती थी। वह अभी कुमारी थी, और अपने जीवन के दिन परिचारिका के रूप में बिता रही थी। उसका बाप केवल रेवंत का ही एक साथी सरदार था, जिसे कुंतीपुर के युद्ध में उसके ही एक सजातीय ने धोखे से मार डाला था, और यह अफ़वाह फैला दी थी कि शत्रु-सेना द्वारा केवल मारा गया। पिता की मृत्यु के बाद श्यामा के स्वप्निल महल चकनाचूर हो गए। एकबारगी नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया। जब जीवन-यापन का कोई सहारा न रहा, उसने राजा बाल के दुर्ग में शरण ली। पहले उसे अंतःपुर में स्थान मिला, बाद में अपने मधुर व्यवहार एवं सद्गुणों से वह महाराज की विशेष परिचारिका बनी। इसी से जो कुछ मिल जाता, वह अपना जीवन व्यतीत कर लेती। विवाह के विषय में उसने कभी सोचा ही नहीं। हाँ, जब उसके पिताजी जीवित थे, तब उन्होंने इस प्रसंग को अवश्य ही कई बार उठाया था। यह श्यामा जानती थी, किंतु पिता की मृत्यु के साथ ही उसका संसार बदल गया। उसके परिवार में भी कोई शेष न था, जो इस विषय पर सोचता।

रेवंत और उसके पिता में ख़ूब बनती थी। कंचुकी श्यामा की सहेली थीं। उनके विचारों की छाप श्यामा पर भी पड़ी थी। सावित्री श्यामा की दूर के रिश्ते की बहन लगती थी। यही कारण था कि वह कभी-कभी गजराज से हँस-बोल लिया करती थी। गज-

राज के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से उसे हँसते-बोलते नहीं देखा गया। श्यामा के जीवन का कुछ रहस्य गजराज के अतिरिक्त किसी को भी नहीं ज्ञात था। स्वयं महाराज बाल भी इस बात से अपरिचित थे कि यह सरदार केंवल की पुत्री है, क्योंकि श्यामा ने पिता की प्रतिष्ठा की रक्षा में सब कुछ गुप्त ही रक्खा था।

श्यामा अब भी महाराज के कक्ष के द्वार पर खड़ी हुई कुछ सोच रही थी। उसी समय महाराज ने उसे पुकारा। श्यामा द्वार खोलकर भीतर प्रविष्ट हुई। आज वह हरे रंग की साड़ी पहने थी, और हल्के गुलाबी रंग की कंचुकी। मस्तक पर केशर का टीका था। अस्त-व्यस्त बालों का लापरवाही से बनाया गया जूड़ा उसकी गर्दन पर लोट रहा था। वह मुस्किराती हुई महाराज के सामने आकर खड़ी हो गई। महाराज ने संकेत किया। श्यामा ने सुरा-चषक उठाया। उसे मदिरा से भरकर महाराज की ओर बढ़ा दिया। महाराज एक घूँट में ही पी गए। उन्होंने चषक श्यामा की ओर बढ़ाया। श्यामा ने पुनः भर दिया। महाराज फिर पी गए। इसी प्रकार श्यामा पिलाती रही, और वह पीते रहे। आँखें लाल हो गईं। रक्त की गरमी से चेहरे का रंग बदल गया। शरीर शिथिल होने लगा, फिर भी वह पिए जा रहे थे, और श्यामा पिलाती जा रही थी। जब सुराही ख़ाली हो गई, तो महाराज भी लेट गए।

श्यामा कक्ष के कपाट बंद करके बाहर निकल आई। उसे बाहर जाते देखकर महाराज ने कहा—"श्यामा, देख तो सुरंग के फाटक पर कौन है?"

श्यामा उठकर बाहर चली गई। उस समय सुरंग के द्वार पर मलखान पहरा दे रहा था। श्यामा उसे देखकर लौट आई। उसने महाराज को सूचना दी कि इस समय पहरे पर मलखान है।

महाराज क्षण-भर कुछ सोचते रहे। श्यामा वहीं खड़ी रही।

थोड़ी देर में उन्होंने कहा—"मलखान से कह दे, रेवंत को मेरे सामने उपस्थित करे।"

श्यामा महाराज का संदेश मलखान से कहकर वापस लौट आई। कक्ष का द्वार दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था। श्यामा वहीं टेक लगाकर खड़ी हो गई।

मलखान ने आदेश पाते ही फाटक खोला। रेवंत की मुश्कें बाँधीं। उसे लेकर वह महाराज के पास चल पड़ा। द्वार पर श्यामा यथा-स्थान खड़ी थी। श्यामा एवं रेवंत की निगाहें मिलीं। दोनो का हृदय हाहाकार कर उठा। आँखें छलछला आईं, किंतु बोल न सके। श्यामा ने अपने को संयत किया, और बढ़कर कक्ष का द्वार खोल दिया। मलखान रेवंत को लेकर कक्ष में प्रवेश कर गया। महाराज ने एक बार बंदी रेवंत को नीचे से ऊपर तक देखा। उसकी मुश्कें खोलने का आदेश दिया, और फिर मलखान से कहा—"इन्हें यहीं रहने दो, तुम जाकर अपना काम करो।"

मलखान सिर झुकाकर सुरंग के द्वार पर चला आया।

श्यामा ने कक्ष के कपाट बंद कर लिए। उसके नयन बरस रहे थे। हृदय में तूफ़ान उठ रहा था, और वह आँचल के छोर से बार-बार अपनी आँखों को पोछ रही थी। स्मृति-पटल पर घटनाएँ उभर रही थीं, और वह खड़ी-खड़ी सोच रही थी—"रेवंत उसे अपनी कन्या की तरह मानता था। बचपन में कंचुकी के साथ वह योजना बनाती। दोनो बाल-हठ करतीं। रेवंत उसे पूरा करता। कितनी बार वे दोनो रेवंत को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर चढ़ी हैं। जाने कितनी बार रेवंत ने उन दोनो के कान गरम किए हैं।" सोचते-सोचते श्यामा फफक पड़ी। "आज वही रेवंत, उसी के दुर्ग में, तीन दिनों से भूखा-प्यासा पड़ा है, और वह अपने पिता-तुल्य इस वृद्ध के लिये कुछ भी नहीं कर पा रही है, क्योंकि आज वह राजबंदी है, ग़द्दार है,

विश्वासघाती है। उसी के कारण से भार शिवों का विनाश हो गया है।" श्यामा सोचती रही, रोती रही, और आँसू पोछती रही।

महाराज ने घूमकर देखा, साठ-पैंसठ वर्ष का बूढ़ा रेवंत, जिसके बाल सफ़ेद हो गए हैं, गाल बैठ गए हैं, मुख पोपला हो गया है, अपनी धँसी, बूढ़ी एवं भीगी आँखों में आँसू छिपाए खड़ा है। महाराज ने उसे बैठने का आदेश दिया। वह बैठा नहीं, खड़ा ही रहा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने अपनी सफ़ेद पगड़ी के छोर से आँखें पोछकर महाराज से कहा—"महाराज, क्या मैं जान सकता हूँ कि इस समय मुझे क्यों स्मरण किया गया है ?"

महाराज उठकर बैठ गए। उन्होंने कहा—"रेवंत ! मैंने सुना है, तुमने आज तीन दिनों से कुछ भी नहीं खाया-पिया। इसका मुझे दुःख है। क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ?"

"छोटे राजा !" रेवंत ने कहा—"क्षमा कीजिए ! जहाँ न्याय, धर्म और नैतिकता न हो, वहाँ भोजन करना पाप है। फिर यहाँ ? उस क़िले में, जिसकी दीवारों से मदिरा की गंध आती है—रेवंत मर जायगा, मगर भोजन न करेगा।" कहकर वह चुप हो गया। चेहरा आत्मग्लानि से भर गया था।

"रेवंत !" महाराज ने क्रोध से कहा—"होश-हवास सँभालकर बातें करो। यह न भूलो कि तुम इस समय एक विश्वासघाती राज-बंदी हो, राजा बाल के सामने खड़े हो।"

इतना सुनते ही रेवंत की बूढ़ी नसों का ख़ून गरम हो उठा। उसने कहा—"महाराज राजबंदी मैं अवश्य हूँ, किंतु विश्वासघाती नहीं ! विश्वासघाती वह है, जिसने मुझे धोखे से शराब पिलाकर मेरा धर्म नष्ट किया। संग्रामपुर* के युद्ध की पराजय का कारण मैं नहीं,

---

* यहस्थान उन्नाव-ज़िले में है, और इसी नाम से पुकारा जाता है। यहीं पर भार शिवों की बैस-राजपूतों से प्रथम पराजय हुई थी।

वह है, जिसने राजवंश की मर्यादा को कलंकित किया है।........"
कहते-कहते रेवंत का चेहरा लाल पड़ गया। वह एकटक महाराज की ओर देख रहा था।

"रेवंत!" महाराज ने क्रोधित होकर कहा—"तुम्हें शराब मैंने अपने हाथ से पिलाई है?"

"हाँ, जानता हूँ छोटे राजा!" रेवंत ने उत्तर दिया।

"कारण भी जानते हो?" महाराज ने प्रश्न किया। क्षण-भर वह रेवंत के आरक्त मुख-मंडल की ओर देखते रहे, और फिर स्वयं बोल उठे—"मदिरा की ही वजह से तुमने अपनी आत्मजा कंचुकी को मुझे देने से इंकार किया था। जब तुम यह जानते थे कि कंचुकी को मैं प्यार करता हूँ, और उसे अपनी पटरानी बनाना चाहता था।"

श्यामा द्वार पर टेक लगाए सब कुछ सुन रही थी। रह-रहकर उसके भाव बदल रहे थे। वह सोच रही थी—"मनुष्य वासना के वशीभूत होकर क्या नहीं कर सकता।"

"प्यार!" रेवंत ने चौंककर कहा—"छोटे राजा! आपके हृदय में कंचुकी के प्रति प्यार नहीं, वासना थी। मैं अपनी कन्या को कैसे उस व्यक्ति के हाथों में सौंप दूँ, जिसके आचार-विचार, आहार-व्यवहार तक में उसका साम्य न हो!"

"तो यह उसी का फल है, भोगो!" महाराज ने झल्लाकर कहा—"नहीं तो कंचुकी आज यहाँ की रानी होती, और तुम मेरे प्रधान आमात्य! मुझे प्रतिशोध के लिये इस प्रकार का षड्यंत्र रचकर तुम्हें बदनाम न करना पड़ता। आज जानते हो, पूरा जनपद तुम्हारे नाम पर थूक रहा है!" कहकर महाराज ने अट्टहास किया। संपूर्ण धर्म-कर्म धरा रह गया। शान मिट्टी में मिल गई। तूफ़ान के सामने जो दशा अकड़े हुए पेड़ की होती है, वही तुम्हारी हुई।" उन्होंने पुनः अट्टहास किया।

महाराज के इस अट्टहास पर रेवंत का चेहरा तमतमा उठा, ओंठ फड़क उठे, भुजाओं में गरमी आई, और उसने आवेश में कहा—"मुझे इसकी चिंता नहीं ! यह रेवंत आमात्य बनकर उतना सुख न पाता, जितना बंदी बनने में पा रहा है। तूफ़ान के सामने यह वृक्ष झुकेगा नहीं, टूट भले ही जाय।" इतना कहकर वह क्रोधित नयनों से महाराज की ओर देखने लगा।

महाराज मौन रहे। फिर आत्मविश्वास से बोले—"यही दशा मुझे कंचुकी की करनी है। यदि उसे डलमऊ के क़िले से न निकलवा दिया, तो मेरा नाम 'बाल' नहीं। बाप-बेटी दोनो का अभिमान चकनाचूर कर दूँगा।"

"छोटे राजा !" रेवंत गरज उठा—"यदि कंचुकी रेवंत की बेटी है, और उसे भार शिवों के आदर्श का कुछ भी ध्यान है, तो वह बरबाद हो जायगी, किंतु आपके सामने झुकेगी नहीं।" कहकर रेवंत ने महाराज की ओर ऐसे देखा, जैसे वह उन्हें पी जाना चाहता हो।

महाराज तड़प उठे। उन्होंने पुकारा—"मलखान !"

श्यामा मलखान को बुलाने चल पड़ी। मलखान उपस्थित हुआ। महाराज ने क्रोध-पूर्ण एवं भर्राई आवाज़ से आदेश दिया—"इसे ले जाकर बंद कर दो !" मलखान ने रेवंत की मुश्कें बाँधीं, उसे बाहर निकाला और सुरंग की ओर लेकर चल पड़ा। बाहर निकलते समय रेवंत ने श्यामा की ओर पुनः सहमी निगाहों से देखा। श्यामा पूर्ववत् खड़ी रही।

अभी तक जो कुछ उसने देखा, सुना और अनुभव किया, उससे उसका हृदय चकनाचूर हो गया था।

रेवंत के चले जाने के बाद महाराज पड़े रहे। मदिरा का नशा अब पूरे उभार पर था। उनके शरीर पर रह-रहकर बेहोशी छा रही थी। उन्होंने पुकारा—"श्यामा !"

श्यामा कक्ष के भीतर चली गई। महाराज उठ बैठे। उन्होंने कक्ष के कपाट बंद करने का संकेत किया। श्यामा ने कपाट बंद कर लिए। महाराज दो क्षण श्यामा को एकटक देखते रहे। महाराज के इस प्रकार देखने पर श्यामा की छाती धड़क उठी। उसने पलकें झुका लीं।

महाराज ने उसके चेहरे से दृष्टि हटाते हुए कहा—"श्यामा और पिला!"

श्यामा ने दूसरी सुराही उठाई। उसके हाथ काँप उठे। काँपते हाथों से उसने सुरा-चषक भरकर महाराज की ओर बढ़ा दिया। उन्होंने केवल एक घूँट पीकर उसे चौकी पर रख दिया। श्यामा की ओर निहारा। उनके नयनों में उन्माद छा गया था। वासना जाग्रत् हो रही थी। उन्होंने श्यामा का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। श्यामा की अंतरात्मा डोल उठी।

"श्यामा, तुम यहाँ बैठो, मेरे पास। तुम परिचारिका नहीं, राजलक्ष्मी हो!" कहकर उन्होंने श्यामा की कलाई मसल दी। वह 'सी' करके रह गई। कुछ बोल न सकी। महाराज ने अपना हाथ हटाते हुए कहा—"श्यामा, बोल, तू राजलक्ष्मी बनेगी?"

श्यामा, मुस्किरा उठी। उसने अपना हाथ बढ़ाकर अपनी कोमल-कोमल उँगलियाँ महाराज के लंबे बालों में उलझा दीं। फिर विहँसकर कहा—"हाँ महाराज, मैं राजलक्ष्मी बनूँगी। आप सो जाइए। देखिए, कितना थके हैं। आपके पैर मैं धीरे-धीरे दबा रही हूँ!" इतना कहकर वह महाराज के पैर दबाने लगी। महाराज ने लेटकर आँखें मूँदते हुए कहा—"पैर दबाने के बाद यहाँ से उठना नहीं, भला श्यामा! तू मेरी राजलक्ष्मी है!" नशा पूरे वेग पर था। महाराज संज्ञा-हीन हो चुके थे।

श्यामा ने मुस्किराकर सिर हिला दिया। महाराज सोने लगे।

श्यामा तब तक पैर दबाती रही, जब तक वह सो नहीं गए। जब वह प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गए, तो श्यामा धीरे से उठकर खड़ी हो गई। उसने कक्ष का द्वार खोला, और बाहर निकल गई। बाहर आने पर उसने आकाश की ओर देखकर, दोनो हाथ जोड़ते हुए भगवान् को नमस्कार किया—"आज मेरी इज़्ज़त बच गई!" उसकी आँखें छलछला उठी थीं।

आँगन में, वह शून्य आकाश की पावन छाया में, बैठी रही। गगन-मंडल में हँसते हुए लाखों तारे उसकी ओर देख रहे थे, चाँद हँस रहा था, और श्यामा परमेश्वर को बार-बार सिर झुका रही थी।

थोड़ी देर बाद वह उठी। सीढ़ियों पर धीरे-धीरे पैर रखती हुई ऊपर के कक्ष में जा पहुँची। यह महाराज की तीसरी रानी सुभद्रा का कक्ष था। परिचारिका यमुना और सुभद्रा, दोनो एक साथ बैठी पाँसे का खेल खेल रहीं थीं। दीपक जल रहा था, और मदिरा की सुराही भरी रक्खी थी।

श्यामा को देखते ही सुभद्रा ने कहा—"आओ श्यामा, मेरी ओर आओ, यमुना आज विजय-वैजयंती फहरा रही है!" कहकर सुभद्रा ने श्यामा का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। श्यामा बैठ गई। हँसती हुई बोली—"आश्चर्य कैसा, परिचारिकाएँ रानी को हरावें, रानी राजा को!"

सुभद्रा का स्वभाव बहुत ही कोमल था। वह जिससे भी बात करतीं, बात-बात में ममत्व टपकता। वह आवश्यकता से अधिक हँसमुख थीं। घमंड नाम की वस्तु उन्हें स्पर्श तक न कर पाई थी। यही कारण था, वह परिचारिकाओं से समानता का व्यवहार करतीं। परिचारिकाएँ भी जितनी उसकी सेवा करतीं, अन्य रानियों की नहीं। हाँ, सुभद्रा में एक अवगुण अवश्य था। वह था मदिरा-पान का। वह यदि इस अवगुण से बची रहतीं, तो देवी होतीं।

श्यामा के आने पर जब नए सिरे से पाँसा फिर बिछने लगा, उसने रानी का हाथ पकड़कर कहा—"अब इसे बंद करो, महाराज स्मरण कर रहे हैं।"

"सच ?" सुभद्रा की आँखें चमक उठीं।

"हाँ-हाँ।" श्यामा ने कहा—"सच नहीं, तो क्या झूठ। मैं आई किसलिये हूँ ?"

सुभद्रा ने उठकर श्रृंगार किया, वस्त्र बदले, और मदिरा पान किया। जब नशे का रंग छाने लगा, वह हँसती हुई महाराज के कक्ष में चली गई।

श्यामा उठी। एक बार उसने पुनः भगवान् को सिर झुकाया। फिर अपनी कोठरी में जाकर सो गई।

महाराज को यह होश न रहा कि उनके पास सुभद्रा लेटी है अथवा श्यामा।

---

[१२]

प्रातः-पवन के मंद-मंद झोंके कोठरी के खुले द्वार से आ-आकर सावित्री को जगाने लगे। मुक्त-कुंतला सावित्री आँखें मूँदे पड़ी थी। वायु के झोंकों में उसकी केशराशि लहरा-लहराकर चारो ओर बिखर रही थी। काले, लंबे, चिकने केशों की कुछ आवारा लटें चारपाई पर मचल रही थीं, कुछ अधखुले वक्ष पर, कुछ कपोलों पर और कुछ पीठ के नीचे असहाय-सी दबी पड़ी थीं। अस्त-व्यस्त साड़ी में उसके शिथिल अवयव अलसाए-से पड़े थे, और वह व्यर्थ ही सोने का उपक्रम कर रही थी। शीतल पवन का मलय-स्पर्श पाकर उसकी उनींदी पलकें धीरे-धीरे खुलने लगीं। उसने अल-साई आँखों से एक बार द्वार की ओर देखा। वह खुला था। तत्पश्चात् उसकी दृष्टि अपने ही अवयवों पर पड़ी। अस्त-व्यस्त साड़ी, बिखरे केश, अधखुला वक्ष। वह लजाकर उठ बैठी।

कोठरी में उसने चतुर्दिक् दृष्टि फेंकी। गजराज तड़के से ही कहीं ग़ायब है। वही, इस लापरवाही से, द्वार खोलकर चला गया होगा। सावित्री मन-ही-मन कुनमुनाई—"यदि द्वार बंद कर लिए होते, तो?" और वह अँगड़ाई लेती हुई भूमि पर उतर आई। शौच आदि से निवृत्त हो उसने स्नान किया, जल-पान बनाया और उसे यत्न से ढककर रख दिया। तत्पश्चात् भीगे केशों को एक स्वच्छ वस्त्र से पोछकर उन्हें धूप में सुखाने लगी। बाल ठीक से सूख भी न पाए थे कि उसने उन्हें वैसे ही लपेटकर बाँध लिया, और अंदर चली आई।

"सावित्री बिटिया!" राधा ने सावित्री का द्वार खटखटाते हुए

आवाज़ दी। सावित्री सिर पर आँचल का छोर डालती हुई द्वार खोलकर बोली—"आओ बुआ, बैठो। अभी-अभी स्नान करके आई हूँ।"

राधा चुपचाप बैठी रही। सावित्री ने उसे संबोधित करते हुए कहा—"कुछ जल-पान करोगी?"

"क्या खिला रही है?" राधा ने मुस्किराते हुए पूछा।

"थोड़ा-सा हलुआ है, तुम भी ले लो।"

हलुए का नाम सुनते ही राधा के मुँह में पानी भर आया, फिर भी वह बातें बनाती हुई बोली—"इसे तो तूने गजराज के लिये बनाया होगा?"

"तो क्या हुआ?" सावित्री बोली—"तुम भी खाओ। क्या वह अकेले इतना खा डालेंगे!" उसने थाली दिखाते हुए राधा से कहा, और राधा अपनी नथ हिलाते हुए बोली—"हाँ, री! बहुत सारा बना डाला। इतना क्या होगा?"

"सब लोग खायँगे।" सावित्री ने प्रसन्नता से उत्तर दिया। एक कटोरी में उसने थोड़ा-सा हलुआ निकाला, और राधा की ओर बढ़ा दिया।

हलुए का प्रथम कौर मुख में रखती हुई राधा बोली—"बड़ा ग़ज़ब हो गया सावित्री!"

"क्या हुआ?" सावित्री ने आश्चर्य से पूछा।

"तुझे पता ही नहीं?" राधा ने नथ नचाते हुए कहा—"कल आधी रात तक क़िले में हंगामा मचता रहा। तू कहाँ थी, जो सुना नहीं?" फिर उसने धीरे से सावित्री के कान में कहा—"रेवंत बंदी बना लिया गया, रात में ही तो ख़बर आई है।"

राधा की बात से सावित्री को कुछ धक्का लगा, फिर भी उसने

अपने को सँभालते हुए कहा—"होगा बुआ, ये तो राज-काज हैं। चला ही करते हैं।"

"पानी तो ला।" राधा ने हलुआ समाप्त कर कटोरी रखते हुए कहा—"राज-काज से तुझे मतलब नहीं है?"

सावित्री ने मुस्किराते हुए राधा की ओर पानी का गिलास बढ़ा दिया। फिर अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा—"मैं तो काम करते-करते इतना थक जाती हूँ कि जब क़िले से लौटती हूँ, तो चेत नहीं रहता। कल भी यही हुआ, आते ही सो गई थी।

"वाह री नींद!" राधा ने मुँह बनाकर कहा—"सिर पर ढोल बजे, और आँख न खुले। संपूर्ण क़िला तो जय-नादों से दहल उठा, और तेरी नींद ही न टूटी!" कहकर राधा ने सैन मटकाया।

सावित्री प्रत्युत्तर में केवल मंद-मंद मुस्किराकर रह गई।

प्रातःकाल तड़के ही गजराज उठकर श्मशान-घाट की ओर औघड़ बाबा के पास चला गया था। जब वह वहाँ पहुँचा, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। औघड़ बाबा ग़ायब थे। झोपड़ी जली हुई पड़ी थी। उनकी याद दिलाने के लिये केवल कुछ खोपड़ियाँ इधर-उधर लुढ़की पड़ी थीं। चारो ओर सन्नाटा था। कल रात तक जहाँ आदमियों का मेला सा लगा था, आज वहाँ एक भी जीव दिखाई न पड़ा। गजराज क्षण-भर खड़ा सोचता रहा। उसे उस डकिनी पर रह-रहकर क्रोध आ रहा था, जिसने उसे प्रातःकाल बाबा के पास आने को कहा था। रात में तो वह अवश्य ही डर गया था, किंतु इस समय वह उसे पा जाता तो उसके बाल पकड़कर नोच डालता। गजराज क्रोधित हो आवेश में कहा—"झूठी कहीं की!" और कुछ सोचता हुआ वह वापस चला आया। घाट से थोड़ी दूर हटकर उसने स्नान किया। मंदिर में जाकर जल चढ़ाया, पूजा की, और फिर धीरे-धीरे वह क़िले की ओर बढ़ चला। जब वह

कोठरी में पहुँचा, तो सावित्री अपने काम पर जाने को तैयार बैठी थी। उसने गजराज की ओर देखकर मंद-मंद मुस्किराते हुए कहा—"बड़ी देर कर दी, कहाँ थे?"

"कहीं नहीं।" गजराज ने कुछ-कुछ क्षुब्ध होते हुए उत्तर दिया।

"क्या बात है?" सावित्री बोली—"नाराज़ क्यों हो रहे हो?" फिर गजराज की आँखों में आँखें डालते हुए उसने कहा—"स्नान कर आए?"

"हाँ।" गजराज ने चारपाई पर बैठते हुए उत्तर दिया।

"तो लीजिए, जलपान कर लीजिए।" सावित्री ने हलुए की कटोरी गजराज की ओर बढ़ाते हुए कहा—"मैं अब क़िले जा रही हूँ, महाराज की पूजा का समय निकट आ रहा है, आप यहीं विश्राम कीजिए।" कहकर एक मादक मुस्कान छोड़ती हुई सावित्री बाहर निकल गई।

गजराज बैठा रहा। सावित्री के जाने के बाद उसने जल-पान किया, और कोठरी का द्वार बंद करके लेट गया।

सावित्री जब क़िले में पहुँची, तो महाराज पूजा कर रहे थे। वह भय से काँप उठी। जीवन में प्रथम बार उसने आज विलंब किया था, किंतु कंचुकी ने सब कुछ सँभाल लिया था—पूजा का सामान सजा था। चौकी पर आसनी बिछी थी। धूप-दीप-नैवेद्य, सभी यथास्थान रक्खे थे। सावित्री ने शांति की साँस ली। वह सीधे महाराज के कक्ष में चली गई, और उसे साफ़ करने लगी। एक-एक वस्तु झाड़-पोछकर उसने यथास्थान रख दी। गीले कपड़े से फ़र्श को पोछा। क़ालीन बिछाया। अगर की सुगंधि से कमरे को सुवासित किया। कक्ष सुरभि से महक उठा। सावित्री कक्ष के बाहर निकल आई। महाराज पूजा समाप्त कर उठे, और कक्ष में चले गए। सावित्री ने उनके जल-पान का सामान सजाया, और यथा-

स्थान रख दिया। महाराज जलपान करने लगे। वह बाहर निकल आई।

जल-पान समाप्त करके महाराज ने पुकारा—"सावित्री !"

सावित्री कंचुकी रानी को धन्यवाद देने चली गई थी, अन्यथा उसे आज बहुत बड़ी आपत्ति का सामना करना पड़ता। महाराज की आवाज़ सुनकर वह उल्टे पैरों भगी, और सामने आकर सिर झुकाकर खड़ी हो गई।

"सावित्री, पता तो लगा महामंत्रीजी आ गए अथवा नहीं ?"

सावित्री बाहर निकली। जब वह दुर्ग की दीर्घा से जा रही थी, तो सामने से बड़ी रानी की परिचारिका मालती आती हुई दिखाई पड़ी। सावित्री उसे देखकर सहम गई, और फिर उसका हाथ पकड़-कर मुस्किराती हुई बोली—"बिखरे केश, अस्त-व्यस्त आँचल, सूजी हुई आँखें और मुरझाया हुआ मुख-मंडल ! यह क्या चुड़ैलों-जैसी आकृति बना रक्खी है मालती !"

मालती के अधरों पर क्षीण मुस्कान दौड़ गई। बोली—"क्या कहूँ बहन ! आज रात-भर सोने को नहीं मिला। बड़ी रानी पता नहीं, कहाँ ग़ायब थीं। महाराज बार-बार पूछते रहे। मैं रात-भर बैठी रही कि पता नहीं, किस समय आ जायँ।" फिर उसने सावित्री के कान में धीरे से कहा—"आधी रात बीतने पर लौटी हैं। अभी तक पड़ी हैं। उठी नहीं। मैंने जाकर देखा, तो उनका शरीर तवे की तरह तप रहा है। ख़ूब बुख़ार चढ़ा है।" फिर चिंतित होते हुए कहा—"शरीर में कई जगह निशान बने हैं। ऐसा लगता है, जैसे किसी कटीली झाड़ी से उलझ गई हों। बोलिए, मैं क्या करूँ ?"

"करेगी क्या !" सावित्री हँसकर बोली—"मरने दे चुड़ैल को। उसका मरना ही अच्छा है। प्राण न निकलते हों, तो मुझे बता, मैं गला घोट दूँगी।" फिर उसने मालती के कान में कहा—"पता तो

लगाना, कहाँ गई थी रात में ! किसी प्रेमी के पास तो नहीं गई थी ?"

प्रत्युत्तर में मालती केवल विहँस कर रह गई।

दोनो अपने-अपने रास्ते चल पड़ीं। सावित्री बाहर और मालती ऊपर चली गई।

महामंत्रीजी अपने कक्ष में बैठे थे। सावित्री ने झाँककर देखा, वह कुछ लिख रहे थे। वह तत्काल ही वापस आई। महाराज को उसने महामंत्रीजी के आने की सूचना दी, और खड़ी होकर आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

"सावित्री !" महाराज ने गंभीर होते हुए कहा—"उनसे कह दे, मेरे व्यक्तिगत कक्ष में चलकर बैठें, मैं अभी आ रहा हूँ।"

सावित्री ने महामंत्रीजी से संदेश कहकर व्यक्तिगत कक्ष खोल दिया, और वह वापस चली गई। जब महाराज बाहर चले गए, तो सावित्री ने उनके कक्ष का द्वार बंद किया और इधर-उधर दृष्टि-पात करती हुई कंचुकी के कक्ष की ओर चल पड़ी।

कंचुकी के कक्ष के कपाट बंद थे। सावित्री ने धीरे से हाथ का धक्का दिया। कंचुकी ने उठकर द्वार खोल दिया। सावित्री ने द्वार बंद करके कंचुकी की ओर निहारा। उसका मुख अरुण था। आँखें फूली हुई थीं। गालों पर आँसुओं की रेखाएँ बह-बहकर सूख गई थीं। बालों की लटें बिखर कर सूखे हुए आँसुओं में चिपकी पड़ी थीं। आँचल का छोर चारपाई से लटककर भूमि का स्पर्श कर रहा था। मुखाकृति ऐसी प्रतीत होती थी, मानो वह रोना ही चाहती हो। सावित्री उसकी दशा देखकर सहम गई, और बड़ी देर तक खड़ी-खड़ी देखती रही। उसकी आँखें अपने आप छलछला उठीं।

कंचुकी ने अपने हृदय के तूफानों को दबाते हुए धीरे से कहा—"बैठो सावित्री !" सावित्री यथास्थान बैठ गई। उसका मन भारी

हो गया था। कंचुकी थोड़ी देर तक मौन रही। वह एकटक सावित्री को देखती रही। फिर दर्द-भरे स्वर में बोली—"सावित्री, पिताजी रायबरेली के क़िले में बंद हैं और मैं राजरानी बनी बैठी हूँ!" इतना कह उसने सावित्री की ओर निहारा और फिर करुण स्वर में कहा—"आज संसार में मेरा कोई अपना नहीं, जिससे मैं सुख-दुख कह सकूँ! ग़द्दार बाप की ग़द्दार बेटी जो ठहरी!" आज मैं किसी को मुख दिखाने लायक़ नहीं। चारो ओर से बौछारें आ रही हैं, रानियाँ हँस रही हैं, परिचारिकाएँ मुस्किरा रही हैं। सावित्री! बोल, मैं कहाँ समा जाऊँ किसी का मुख न देखूँ।"

कहते-कहते कंचुकी के नेत्र छलछला उठे। शब्द कंठ में ही रुक गए। उसने आँचल के छोर से भीगी पलकें पोंछते हुए कहा—"रात-भर पड़ी-पड़ी रोती रही, किंतु एक क्षण के लिये भी तुम सांत्वना देने न आई। प्रातःकाल तुम्हें दुर्ग में न देखकर मैंने किसी प्रकार महाराज की पूजन-सामग्री एकत्रित की, तब से फिर यहीं पड़ी हूँ। बाहर निकलने की शक्ति नहीं रह गई। यह कलंकित मुख लेकर जीवित रहने से अच्छा है, कहीं जाकर डूब मरूँ! किंतु मरने से पूर्व अपने बूढ़े पिता का मुख देखना चाहती हूँ, जिसने पाल-पोस-कर मुझे इतना बड़ा किया है।" कंचुकी अपने को सँभाल न सकी। वह बिलख पड़ी। आँसुओं का वेग फूट पड़ा। उसने बाहें फैलाकर सावित्री को छाती में भर लिया और रुँधे कंठ से कहा—"सावित्री, बोलो, तुम तो मुझसे नहीं घृणा करतीं?"

सावित्री फफक पड़ी। दोनो एक दूसरे से लिपटकर ख़ूब रोईं। सावित्री ने कंचुकी को आश्वस्त करते हुए कहा—"छोटी रानी, ग़द्दारी तुम्हारे पिता की नहीं, बल्कि छोटे राजा ने की है। फिर भी बदनाम वही हो रहे हैं। जानती हो क्यों?"

"हाँ।" कंचुकी ने कहा—"सावित्री, यह सब मेरे कारण हो

रहा है। तुम यह नहीं जानती कि छोटे राजा मुझसे विवाह करना चाहते थे, मगर मैंने साफ़ इनकार कर दिया था। यह उसी का प्रतिफल है, मेरे वृद्ध पिता भोग रहे हैं। बाँहों का बंधन ढीला पड़ गया। कंचुकी ने पुनः अश्रु पोंछे और सावित्री से कहा—"अपनी उस ग़लती का अनुभव मुझे आज हो रहा है। वह मदिरा-पान करते थे, तो क्या हुआ? यह भी तो करते हैं। अच्छा होता, मैं उन्हीं के हाथों अपना बलिदान कर दिया होता।"

"रानी!" सावित्री ने सकरुण स्वर में कहा—"जो होना था, हो गया। व्यर्थ की दुर्बलता लाने से कोई लाभ नहीं। नारी केवल काम-पिपासा हेतु नहीं, श्रद्धा की वस्तु भी है। तुमने जो काम किया, वही उचित था। मुझे दुःख है, महाराज इस कुचक्र के विषय में कुछ भी नहीं जानते। उल्टे तुम्हीं को अपने आक्रोश का लक्ष्य बनाना चाहते हैं। वह छोटे राजा के चंगुल में फँस चुके हैं और बड़ी रानी इस समय अग्नि में घी का काम कर रही हैं। यह समय धैर्य से काम लेने का है। सावित्री जब तक जीवित है, तुम्हारा बाल-बाँका न हो सकेगा। परिस्थितियाँ स्वयं सब कुछ महाराज को समझा देंगी। केवल समय आने की देर है।" कहकर सावित्री उठ खड़ी हुई। गिलास में पानी लेकर उसने कंचुकी का मुख धोया और अपने आँचल से पोंछकर कहा—"श्यामा ने उनसे उसी दिन सब कुछ बता दिया था, जब वह पत्र लेकर आए थे। मैं सब कुछ समझती हूँ। अपनी जगह पर सतर्क भी हूँ। किंतु क्या महाराज से तुम्हारे और उनके विवाह की घटना के विषय में कुछ बताना उचित होगा?"

"नहीं।" कंचुकी ने कहा—"महाराज मेरे विषय में क्या सोचेंगे। इससे तो उनके संदेह की और पुष्टि होगी।" कहकर कंचुकी ने सावित्री से पूछा— "गजराज है?"

"हाँ !" सावित्री ने सर हिलाया।

"उससे मेरी भेंट करा सकोगी ?" कंचुकी ने अत्यंत दयनीयता से कहा—"आज उसे जाने न देना। मैं उससे मिलना चाहती हूँ। शायद कुछ काम निकल जाए। और हाँ, रात बीतने पर अपनी कोठरी में ही यह प्रबंध कर सको, तो अच्छा हो !"

"प्रबंध तो कर लूँगी, किंतु आप वहाँ आएँगी कैसे ?" सावित्री ने प्रश्न किया।

"मैं आ जाऊँगी। किसी को कोई ख़बर न होने पाए। रात में तुम मुझे बुला ले जाना।"

सावित्री थोड़ी देर तक कुछ सोचती रही, फिर एक गर्म निःश्वास छोड़कर बोली—"ईश्वर मालिक है।"

कंचुकी का मन कुछ हल्का हो गया था। उसकी वेदना दब चुकी थी। वह मौन बैठी रही। सावित्री उठी और जाते हुए बोली—"छोटी रानी ! आप स्नान-पूजन करें, भगवान् जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। आपकी हर विपत्ति में सावित्री साथ है।" इतना कह उसने कक्ष का द्वार खोल दिया। कंचुकी स्नानागार की ओर चली गई। सावित्री महाराज का मधु-कक्ष सजाने में लग गई।

अपने व्यक्तिगत कक्ष में पहुँचकर महाराज आसन पर बैठ गए। वयोवृद्ध महामंत्री ने उनका अभिवादन किया, और फिर सम्मुख बैठ महाराज की ओर देखने लगे।

इस कक्ष में मंत्रणा तभी होती है, जब कोई विशेष महत्व की बात होती अथवा राज्य संकट में आ पड़ा हो।

महाराज ने महामंत्री से अधिक न बताकर, केवल इतना कहा कि वह एक पत्र बाबर सैयद को लिख दें।

"पत्र में क्या लिखना होगा ?" महामंत्री ने पूछा।

उन्हें जौनपुर के शासकों एवं डलमऊ के राजों से चली आने

वाली परंपरागत शत्रुता का ध्यान हो आया। कुछ सोचकर उन्होंने कहा—"क्या राज्य-सीमा पर उन्होंने कुछ गड़बड़ी पैदा कर दी है अथवा इन पुराने शत्रुओं को एक बार फिर रण की चुनौती देना है ? कहकर वह महाराज की ओर उत्सुकता से देखने लगे।

राज्य-सीमा पर उन्होंने नहीं, मैंने गड़बड़ी की है।" कहकर महाराज मुस्किराने लगे और फिर स्मित-बदन बोले—"चुनौती तो देना ही है, चाहे वह रण की हो अथवा प्रेम की।"

महामंत्री हक्का-बक्का होकर महाराज का मुख ताकने लगे। उनकी समझ में कुछ भी न आया। वह आश्चर्य-चकित-से बैठे रहे। फिर कुछ सोचकर पूछा—"प्रेम की ?"

"हाँ !" महाराज ने उसी मुद्रा में कहा—"आप लिखिए, मैं बोलता हूँ।" महामंत्री राज्य-चिह्न-अंकित भोजपत्र-जैसा काग़ज़ लेकर लिखने लगे। जब वह पत्र की कुशल-क्षेम से संबंधित भूमिका विशेषणों के साथ लिख चुके, तो महाराज ने पूछा—"क्या लिखा ?"

महामंत्री ने पढ़ना प्रारंभ किया—

"श्रीमान् जौनपुर राज्येश्वर महाराज इब्राहीम शर्की महोदय के सूबेदार श्री बाबर सैयदजी को सूचित हो कि····" इतना पढ़कर वह महाराज की ओर देखने लगे। महाराज ने एक मधुर मुस्कान के साथ कहा—"ठीक है, यह पत्र तो एक सूबेदार के लिये है, विभिन्न विशेषणों की आवश्यकता नहीं। जितने लिख गए, वे ही अधिक हैं। लिखिए—उस दिन आखेट के समय, मैं आपकी राज्य-सीमा का उल्लंघन कर गया था, जिसके लिये मुझे अत्यंत खेद है। साथ-ही-साथ प्रसन्नता भी है कि आपके राज्य में मुझे मेरी चिर-अभिलषित वस्तु मिल गई। वह वस्तु किस समय मेरे कक्ष की शोभा बढ़ावेगी, मैं उसी घड़ी की प्रतीक्षा में हूँ। मुझे विश्वास है, आप मेरा अभिप्राय समझ गए होंगे। यदि नहीं समझ सके, तो

मैं स्पष्ट किए देता हूँ। वह वस्तु है, आपकी पूर्णिमा के चंद्रमा-जैसी सुंदर लड़की सलमा! यदि आप रक्त-पात से बचना चाहते हैं, तो प्रेम-पूर्वक सलमा का डोला मेरे दुर्ग में भेजवा दीजिए। यदि आपको यह पसंद न हो, तो मेरी युद्ध की चुनौती स्वीकार कीजिए।

"आशा है, आप दो में से एक पथ चुनकर मुझे उसकी तत्काल सूचना देंगे। मैं आपके पत्र की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

महामंत्री ने एक बार पत्र पढ़कर महाराज को सुनाया। फिर पूछा—"और कुछ ?"

"नहीं।" महाराज ने कहा।

महामंत्रीजी ने पत्र उनकी ओर बढ़ा दिया। उन्होंने हस्ताक्षर कर दिए। तत्पश्चात् वह पत्र मुहरबंद करके घुड़सवार पत्र-वाहक द्वारा कड़े के क़िले भेज दिया गया। महाराज दरबार में चले आए। महामंत्रीजी उन्हीं के साथ थे।

इधर सावित्री ने दिन में ही गजराज से कह दिया था कि उसे आज यहीं रहना है। जब उसने कारण पूछा, तो केवल यही बताया कि "कुछ आवश्यक कार्य है।"

"मुझसे ?" गजराज ने विनोद से कहा—"आवश्यक कार्य, और मुझसे ?"

"क्यों ?" सावित्री विहँसकर बोली—"क्या तुम अपने को इतना अयोग्य समझते हो।

"हाँ" गजराज ने कहा—"तुम्हारे आवश्यक कार्यों के लिये मैं अवश्य अपने को अयोग्य समझता हूँ, किंतु राजकीय कार्यों के लिये नहीं।" कहकर वह हँस पड़ा।

"तो राजकीय ही समझो।" सावित्री बोली—"क्या मैं राजकीय आदेश नहीं दे सकती ?"

"दे सकती हो।" गजराज ने व्यंग्य किया—"तुम भी तो किसी की रानी हो ?"

"तो क्या तुम केवल रानियों के संदेश-वाहक हो ?" कहकर सावित्री खिलखिला उठी। "मैं अभी आई।" कहती हुई वह उठ खड़ी हुई। गजराज बैठा रहा। सावित्री क़िले की ओर चली गई। वहाँ उसने दीपक जलाया। महाराज का मधु-कक्ष ठीक किया। मालती से बातें कीं। गजराज पड़ा-पड़ा प्रतीक्षा ही करता रहा।

थोड़ी रात बीतने पर सावित्री हाथ में भोजन का थाल लिए हुए आ पहुँची। गजराज ने भोजन किया। पान खाया।

"और कुछ ?" सावित्री हँसकर बोली। "लीजिए, मैं बिस्तर लगाए देती हूँ। आप आराम कीजिए, मैं अभी आ रही हूँ।" इतना कह वह चलने को तैयार हो गई।

"मैं नहीं जाने देता।" उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए गजराज बोला—"इसके पहले भी तुम अभी आई, कहकर गई थी, और लौटी हो अब !" इतना कहकर उसने सावित्री को अपनी ओर खींच लिया। सावित्री ने अपने को छुड़ाते हुए कहा—"द्वार तो बंद कर दूँ ! कोई देखेगा, तो क्या कहेगा। तुम्हें लाज नहीं आती।" इतना कहकर उसने द्वार बंद करके सांकल चढ़ा ली। मंद-मंद दीपक जलता रहा। सावित्री गजराज की बाँहों में सिमटी पड़ी रही।

"आज गए क्यों नहीं ?" सावित्री ने गजराज की ठुड्डी हिलाते हुए पूछा—"जाने की इच्छा ही न होती होगी, क्यों ?"

"नहीं तो।" गजराज बोला—"तुम्हीं ने तो रोक लिया है, अन्यथा मैं अब तक रायबरेली के क़िले में होता।"

"अच्छा !" सावित्री शीश हिलाते हुए बोली—"मैंने तो अभी रोका है, प्रातः काल से क्यों नहीं गए ? बहानेबाज़ी ख़ूब आती है !"

"सो गया था, इसलिये न जा सका।" गजराज बोला।

"रात-भर क्या करते रहे ? जो नींद नहीं आई ?" सावित्री ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए पूछा।

गजराज की आँखों में फिर वही डंकिनी का रूप झूम गया। बोला—"डलमऊ में चुड़ैलें बहुत हैं, कोठरी के बाहर न निकला करो।

"कोई मिल गई क्या ?" सावित्री बोली—"अब समझी, इसी से नींद नहीं आई ? कैसी थी वह !"

"मुझे क्या मिलेगी !" गजराज बोला—"चुड़ैलें मुझे देखकर स्वयं डर जायँ।

"तब तो तुम बहादुर हो।" सावित्री बोली—"अच्छा, मैं तुम से एक बात पूछूँ, बताओगे ?"

"पूछो।" गजराज ने उसे अपनी बाँहों में कसते हुए कहा।

"पहले हाँ कहो" सावित्री बोली—"झूठ न बोलना, सब ठीक-ठीक ही बताना।"

"झूठ बोलने की क्या आवश्यकता है ?" गजराज ने आत्म-विश्वास से कहा।

"अच्छा बताओ।" सावित्री बोली—"तुम्हारे पत्नी है ?"

"हाँ।"

"उसकी उम्र कितनी है ?"

गजराज इस प्रश्न से कुछ चौंका। बोला—"मैं क्या जानूँ, यह तो तुम स्वयं जानती हो।" "देखो भाई" सावित्री ने कहा—"ठीक-ठीक उत्तर देते चलो।"

"पूछो।"

"उसका क़द कैसा है ?"

गजराज चुप रहा। सावित्री पूछती गई।

"उसका रंग ?"

गजराज कुछ सोचने लगा। सावित्री पूछती गई। "उसके बाल ? उसका मुख ? उसकी आँखें ?"

गजराज गंभीर हो उठा। सावित्री ने एक ही साँस में उससे सब कुछ पूछ डाला। फिर बोली—"लड़का-लड़की लेना है?" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। गजराज थोड़ी देर तक आश्चर्य में पड़ा रहा, फिर सावित्री को अपने वक्ष में ज़ोर से दबाकर कहा—"ले लड़का, लड़की!" उसने उसके कपोलों को लाल कर दिया। सावित्री की साँस फूल उठी। वह अपने को छुड़ाकर भाग चली, और कोठरी के बाहर निकल गई। गजराज बैठा रहा।

रात काफ़ी हो गई थी। सावित्री धीरे-धीरे क़िले की ओर दबे पैरों से बढ़ी। वह पैर इतनी सावधानी से रख रही थी कि आहट न प्रतीत होती थी। दीर्घा से वह आँगन में पहुँची। सामने महाराज का कक्ष था। वह थोड़ा-सा रुकी। कोई आहट न मिलने पर आगे बढ़ी। कंचुकी के कक्ष में दीपक जल रहा था। वह जग रही थी। द्वार खुले थे। सावित्री प्रवेश कर गई। छोटी रानी उठ खड़ी हुईं। सावित्री ने उनके कान में कुछ कहकर दीपक बुझा दिया। कक्ष में अंधकार हो गया। दोनो चुपके से बाहर निकल आईं। आगे-आगे सावित्री पीछे-पीछे कंचुकी। आँगन, कक्ष, दीर्घा, सब कुछ पार करती हुई दोनो कोठरी के द्वार पर पहुँचीं। गजराज ने कोठरी का द्वार अंदर से बंद कर लिया था। अजीब समस्या आ गई। सावित्री ने द्वार पर दस्तक दिया। गजराज उठा। उसने द्वार खोल दिया, और फिर चारपाई पर लेट गया।

सावित्री ने, जब छोटी रानी कोठरी के अंदर आ गईं, तब भीतर से ज़ंजीर बंद कर ली। सावित्री के साथ छोटी रानी को देखकर गजराज चौंक पड़ा। वह उठ बैठा। सावित्री ने हाथ के इशारे से संकेत किया। गजराज चुपचाप खड़ा हो गया। छोटी रानी चार-पाई पर बैठ गईं। उन्होंने सावित्री एवं गजराज को भी बैठने का संकेत किया। सावित्री ने दीपक की लौ तेज़ की। चटाई बिछाकर गजराज को बैठाया, और स्वयं खड़ी रही।

"बैठो सावित्री !" छोटी रानी ने कहा, किंतु सावित्री बैठी नहीं। वह नत-मस्तक खड़ी ही रही।

"गजराज !" रानी ने कहा—"मैं इस समय छिपकर केवल तुमसे भेंट करने आई हूँ। मेरा एक कार्य है। मुझे विश्वास है, तुम उसे कुशलता-पूर्वक कर दोगे ?"

गजराज का सिर ऊपर उठा। छाती धड़क उठी। फिर भी अपने को संयत करके बोला—"आज्ञा शिरोधार्य है, मेरा सर्वस्व आपके चरणों पर न्योछावर है !"

"गजराज !" रानी ने गंभीरता से कहा—"भावुकता का नहीं, यह विवेक का समय है। तुम जानते ही हो कि मेरे पिताजी राय-बरेली के क़िले में बंदी हैं। तुमसे यह भी छिपा नहीं कि वह क्यों बंदी बनाए गए हैं। मैं इस विषम स्थिति में तुम्हारा कुछ सहयोग चाहती हूँ।"

"जो आज्ञा !" गजराज बोला।

"तुम किसी प्रकार उन्हें बंदीगृह से निकालकर मुझे दर्शन करा सको, तो मैं जीवन-भर तुम्हारा उपकार मानूँगी। यद्यपि यह कार्य बहुत ही दुस्तर है—थोड़ी-सी चूक पर मृत्यु-दंड मिलेगा, किंतु मुझे विश्वास है, तुम सफलता - पूर्वक इस कार्य को कर लोगे।" इतना कहकर उन्होंने कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ गजराज की ओर बढ़ाकर कहा—लो, इन्हें रख लो।"

"यह क्या।" गजराज ने कहा।

"हो सकता है, इसकी भी ज़रूरत पड़े, अतः पहले से ही प्रबंध कर लेना उचित है।"

"नहीं।" गजराज ने कहा—"मुझे आपके आशीर्वाद के अति-रिक्त कुछ न चाहिए, भगवान् मालिक है।"

"सुनो।" रानी ने कहा—"श्यामा से भी इस कार्य में सहयोग ले लेना। वह तुम्हारे लिये बहुत सहायक सिद्ध होगी।"

गजराज ने केवल सिर हिला दिया। वह सोचने लगा था।

"तो मैं क्या आशा करूँ?" रानी ने गजराज की ओर देखकर करुण स्वर में कहा—"गजराज, क्या मैं अपने पिताजी को जाते-जी देख सकूँगी?" उनकी आँखें भीग गई थीं।

"महारानी!" गजराज बोला—"आप निश्चिंत रहें। यदि मैं जीवित रहा, तो कल रात तक कोई-न-कोई सूचना आपको अवश्य मिलेगी। यदि वहीं काम आ गया, तो इसकी रक्षा करना!" कहकर उसने सावित्री की ओर देखा। सावित्री के नेत्र छलछला उठे थे।

"भगवान् तुम्हारी सहायता करें।" रानी ने आँचल फैलाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"इससे तुम निश्चिंत रहो। हम दोनो रानी और परिचारिका नहीं, सगी बहनें हैं।" कहकर वह उठ खड़ी हुई। सावित्री गंभीर हो उठी थी। रानी ने स्वर्ण-मुद्राएँ सावित्री के आँचल में भर दीं। फिर धीरे से बोलीं—"इन्हें यहीं रख दे।" सावित्री कुछ न बोली, और स्वर्ण-मुद्राएँ वहीं रखकर रानी के साथ-साथ चल पड़ी। कक्ष में पहुँचकर सावित्री ने दीपक जलाया, रानी का बिस्तर ठीक किया, और आँचल से आँसू पोंछती हुई बाहर निकल आई।

सावित्री जब लौटकर अपनी कोठरी में पहुँची, तो गजराज न था। पहले तो वह इधर-उधर देखती रही, फिर आकर बैठ गई। थोड़ी देर बाद गजराज घोड़ा लेकर सावित्री के पास आकर बोला—"सावित्री, मैं जा रहा हूँ, सबेरा होने के पूर्व ही मेरा वहाँ पहुँच जाना उचित होगा।" इतना कह उसने तृषित नेत्रों से सावित्री की ओर देखा। सावित्री की आँखें भर आई थीं।

"रो रही है पगली ! गजराज बोला—"यदि जीवित रहा, तो कल रात में पुनः मिलूँगा।" कहकर उसने सावित्री को छाती से लगा लिया। सावित्री थोड़ी देर तक उसके वक्ष पर सिर रक्खे सिसकती रही। गजराज उसे समझाता रहा।

"विलंब न करो सावित्री ! बिदा दो।" गजराज ने उसके बालों को सहलाते हुए स्नेह से कहा।

सावित्री ने हाथ बढ़ाकर उसके पैरों का स्पर्श किया। दो गरम-गरम आँसू चरणों पर गिर पड़े। गजराज सिहर उठा। धड़कते हृदय से वह उछलकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। घोड़ा रामू द्रुत गति से चल पड़ा। सावित्री खड़ी उसे एकटक देखती रही।

घोड़े की टापों का स्वर दुर्ग की दीवारों में प्रतिध्वनित हो रहा था।

सावित्री द्वार पर सिर टेके खड़ी थी।

गजराज जा रहा था।

---

[१३]

मियाँ सलीम को बटेर का शोरवा तो दूर रहा, मूँग की खिचड़ी भी भर-पेट न मिल पाई। उस दिन वह भूखों मर गए। ज़ुबेदा फिर लौटकर गई ही नहीं। राहत जब रात में मूँग की खिचड़ी लेकर सलीम साहब के पास पहुँचीं, तो उनकी पग ध्वनि सुनकर उन्होंने समझा, ज़ुबेदा मदिरा का गिलास एवं बटेर का शोरवा लेकर आई है। वह उठकर बैठ गए। बेचैनी से प्रतीक्षा करते-करते जब किवाड़ खुले, और मूँग की खिचड़ी लिए हुए राहत खड़ी मिली, तो वह आगबबूला होकर रह गए।

राहत ने चौकी पर खिचड़ी की तश्तरी और पानी का गिलास रखकर कहा—"लो भैया, खा लो।"

"क्या है ?" सलीम ने मुँह बनाते हुए अकड़ के साथ पूछा।

"मूँग की खिचड़ी है, पेट के लिये फ़ायदा करेगी।" कहकर राहत ने गिलास उठाकर सलीम का हाथ धुलाना चाहा।

सलीम उठे नहीं। पड़े-पड़े ही बरस पड़े—"खिचड़ी क्यों लाईं ?" उसने क्रोध-भरी आँखों से राहत की ओर देखा।

राहत बेचारी भौचक्की-सी होकर उनका मुँह देखने लगीं। फिर धीरे से बोलीं—"पेट ख़राब था न ?"

"रहा होगा।" सलीम बिस्तर पर ही उछल पड़े—"पेट ख़राब था, तो एक टोकरी में भूसा लेती आतीं !" वह मुँह घुमाकर दूसरी ओर देखने लगे।

बेचारी राहत की समझ में कुछ भी न आया कि अंततः मामला क्या है ? वह सोचने लगीं—"इनका पेट ख़राब था, कई बार

पाख़ाने गए, दवा भी खाई, दोपहर में गोश्त-चपाती छुई तक नहीं, ऐसी हालत में यदि शाम को मैं खिचड़ी बनाकर लाई, तो कौन-सा गुनाह कर दिया !"

उन्होंने एक बार सलीम से फिर कहा—"खा लो भैया, फ़ायदा करेगी। खाना बनाने के बाद तो मैंने अभी-अभी इसे तुम्हारे लिये तैयार किया है।" यह कहकर वह सलीम की ओर करुण नयनों से देखने लगीं।

"मैं नहीं खाता।" सलीम पुनः गरज उठे—"ले जाओ अपनी खिचड़ी-पिचड़ी।" उन्होंने तश्तरी ढकेल दी। राहत ने हाथ बढ़ाकर तश्तरी सँभाली, और उसे उठाकर वह वापस चली आईं। जाते-जाते उन्होंने धीरे से कहा—"लिए जाती हूँ।" उनका स्वर अत्यंत करुण हो गया था।

जब वह बाहर निकलीं, तो सलीम ने सोचा—"अब तो खिचड़ी भी हाथ से निकली जा रही है, और उसने धीरे से पुकारा—"सुनिए !"

राहत तश्तरी और गिलास लिए लौट आईं। बोलीं—"क्या है ?"

"कुछ नहीं !" सलीम उठकर बैठ गए। बोले—"लाओ, खा लूँ।" उन्होंने हाथ बढ़ा राहत के हाथ से तश्तरी छीन ली। राहत ख़ुश हो गईं। पास ही बैठकर वह ओढ़नी के छोर से हवा करने लगीं।

ग़ुस्से में सलीम ने जैसे-तैसे थोड़ा-बहुत खाया, फिर तश्तरी ढकेलकर कहा—"इसे उठा ले जाओ, खा चुका !" हाथ-मुँह धोकर वह लेट गए। राहत ने जूठी तश्तरी और गिलास उठाते हुए कहा—"देखो न, इस समय भी कुछ नहीं खाया। पता नहीं, क्या हो गया है !" वह बाहर निकल आईं।

"हो क्या गया है !" सलीम बोला—"बदहज़मी है, अब की बार जमालगोटा खिलाओ !"

राहत सुनी-अनसुनी करके चली गईं। सलीम लेट गए।

थोड़ी देर लेटे रहने के बाद उन्होंने मन-ही-मन कहा—कितनी बदतमीज़ लड़की है, शराफ़त तो इसे छू तक नहीं गई। सुअर की बच्ची, गई थी शराब लाने, अब तक लौटकर नहीं आई। कहती क्या थी, सलीम ने अपने आप मुँह बनाया—"नशा आदमी को बरबाद कर देता है। ज़्यादा न पिया करो, कहीं जुम्मन की-सी हालत न हो जाय।" उल्लू की पट्ठी! अब दिखाई पड़े, तो गला घोट दूँ।" सलीम मियाँ पड़े-पड़े ज़ुबेदा पर कुढ़ रहे थे। और वह राहत के साथ बैठी हुई मस्ती से शोरबा चपाती उड़ा रही थी।

"क्यों चाची!" ज़ुबेदा ने पानी का गिलास उठाते हुए पूछा—"खा लिया था न, कुछ कहा तो नहीं? आज उन्हें काफ़ी तकलीफ़ रही।"

"खा क्या लिया!" राहत बोलीं—"उससे खाया ही न गया। इधर-उधर बक रहा था।"

"क्या कह रहे थे?" ज़ुबेदा ने हँसते हुए पूछा।

"कह रहा था, खिचड़ी नहीं, एक टोकरी भूसा लेती आओ।" सुनते ही ज़ुबेदा खिलखिला उठी। बोली—"तो दे आतीं मुँह-माँगी चीज़!" फिर कुछ रुककर बोली—"पेट तो इतना ख़राब है कि दो कौर भी नहीं हज़म कर पाते, और खायँगे भूसा! अजीब आदमी हैं।"

"नहीं ज़ुबेदा!" राहत बोलीं—"देख, तेरे सामने मैंने खाना बनाने के बाद उसके लिये इंतज़ाम किया, और अब अकड़ रहा है मुझ पर! अगर मुझे इतनी हमदर्दी न होती, तो क्यों झंझट करती। जो सब खाते, वही वह भी।"

"अकड़ने दो!" ज़ुबेदा लापरवाही से बोली—"यदि इंतज़ाम न होता, तो कहते, मैं राहत बहन के यहाँ गया था, पेट की बीमारी

से परेशान हो गया, मगर उन्होंने कोई इंतज़ाम नहीं किया। अब, जब कि सब इंतज़ाम हो गया है, तो जनाब अकड़ रहे हैं। तुम्हें तो अब कोई कुछ न कहेगा, अकड़ते हैं, तो अकड़ा करें।"

"ज़ुबेदा!" राहत बोलीं—"इसीलिये मैं घबराती हूँ कि कोई अज़ीज़दार न आए, तो अच्छा है। याद है तुझे, उस बार जब वह लड़का आया था, क्या नाम था उसका?" राहत ने ज़ुबेदा से पूछा।

"ताहिर!" ज़ुबेदा बोली—"जिसका पेशाब बंद हो गया था न!"

"हाँ।" राहत ने कहा—"यदि बेचारे हकीमजी न होते, तो आफ़त आई थी मेरे ऊपर! भला तू ही बता, जब आठ-आठ मिर्चें वह कच्चे ही चबा जाता है, बोतलों शराब पी डालता है, तो 'करक' क्या मेरे होगी!" कहते-कहते राहत हँस पड़ीं। बोलीं—"ठीक है, वैसी ही हालत आज चल रही है। ख़ुदा ही बचाए!"

दोनो खाना खा चुकी थीं। राहत चौके से बाहर निकल गईं। ज़ुबेदा बचा हुआ गोश्त एवं चपातियाँ एक कटोरे में रखती हुई बोली—"चाची, उन्हें पान तो दे आओ, नहीं तो फिर बरस पड़ेंगे!"

"तू दे आ ज़ुबेदा।" राहत बोलीं—"मैं पान लगाए देती हूँ।"

"तुम्हीं दे आओ चाची।" ज़ुबेदा ने कहा—"तुम्हारे भाई हैं, चिढ़ेंगे, तो मना लोगी। मुझे मनाना भी तो नहीं आता।"

राहत ने पान लगाए। स्वयं खाया, ज़ुबेदा को खिलाया, और फिर तश्तरी में रखकर सलीम के कमरे की ओर बढ़ीं। सलीम पड़े हुए ज़ुबेदा की हरकतों पर सोच रहे थे। राहत ने पान की तश्तरी रखते हुए कहा—"लो भैया, पान खा लो।" और वह वहीं खड़ी हो गईं।

"पान खा लूँ!" सलीम बोला—"पान ही है या और कुछ!"

"और क्या?" राहत ने आश्चर्य से पूछा।

"मैंने कहा, पान में धतूरा तो नहीं मिला है !" कहकर उसने पान का बीड़ा उठाकर मुँह में रख लिया।

"तुम भी कैसी बातें करते हो सलीम !" राहत बोलीं—"आज ज़्यादा तो नहीं पी गए ?"

"हाँ, ज़्यादा ही पिया है !" सलीम बोला—"और पिलाया है तुम्हारी ज़ुबेदा ने !" कहता हुआ सलीम करवट बदलकर लेट गया। राहत तश्तरी उठाकर चली आईं।

जब राहत सलीम को पान खिलाने गईं थीं, तभी ज़ुबेदा ने बचा हुआ गोश्त एवं चपातियाँ अपने कमरे में छिपाकर रख ली थीं। जब राहत वापस लौटीं, तो ज़ुबेदा ने फिर व्यंग्य किया—"चाची, ख़ैरियत तो है !"

प्रत्युत्तर में राहत मुस्किराकर रह गईं।

"छोटी बीबी ! छोटी बीबी !!" जुम्मन ने हाथ मटकाते हुए कहा—"बड़े मियाँ पान माँग रहे हैं।"

"वह देख," राहत बोलीं—"पानदान में रक्खा है, लगा ले। बड़े मियाँ क्या कर रहे हैं ?"

"तारीफ़ !" जुम्मन ने पनडिब्बा खोलते हुए उत्तर दिया।

"किसकी ?" राहत ने पूछा।

"आपकी।"

"क्या ?" राहत ने आँखें तरेरते हुए कहा—"फिर तो कह !"

"आपकी बनाई हुई चपातियों और शोरबे की।" राहत और ज़ुबेदा, दोनो हँस पड़ीं। जुम्मन मियाँ ने पान लगाना शुरू किया। पान में चूना लगाया, सुपारी छोड़ी, केशर डाली, और फिर उसे लपेटकर चल पड़ा। ज़ुबेदा खड़ी-खड़ी सब देख रही थी। उसने झपटकर जुम्मन का कान पकड़ा। बोली—"पान लगा लिया !"

"जी हाँ।" जुम्मन ने सिर झुकाए ही उत्तर दिया।

"कैसे लगाया, ज़रा बताना तो ?"

"कान छोड़ दो, तब बताऊँ !"

"नहीं, ऐसे ही बता।"

"अच्छा, सुनो।" जुम्मन बोला—"चूना लगाया," फिर ज़ुबेदा की ओर देखकर कहने लगा—"चूना लगाना मैं जानता नहीं, आज पहली बार लगाया है, फिर भी तुम कान पकड़ रही हो !"

ज़ुबेदा ने जुम्मन के कान और ज़ोर से गरम कर दिए। जुम्मन 'सी' करके रह गया, ज़ुबेदा ने पान छीन लिया। उसमें कत्था छोड़ा, ज़र्दा डाला, और फिर उसे देकर कहा—"ले, अब ले जा।"

जब जुम्मन पान लेकर जाने लगा, ज़ुबेदा ने उसके सिर पर एक चपत लगा दी। ज़ुम्मन ने घूमकर ज़ुबेदा की ओर देखा, और फिर बाहर की ओर भाग चला।

ज़ुबेदा ने घर का द्वार बंद किया, कपड़े बदले, और अपने कमरे में चली गई।

राहत जब आँगन का दीप बुझाकर अपने कमरे में गईं, तो उन्होंने किंवाड़ की दराज़ से देखा, सूबेदार साहब लेटे हैं। जुम्मन उन्हीं के पलंग के पास बैठा तालियाँ पीट-पीटकर, क़व्वाली सुना रहा है, और सूबेदार साहब नशे की मस्ती की झोंक में वाह-वाह करते हुए दाद दे रहे हैं।

ज़ुबेदा अपने कमरे में पड़ी-पड़ी कोई गीत गुनगुनाती रही। उसका स्वर बहुत ही मधुर था तथा गाने का उसे विशेष शौक़ था। थोड़ी रात बीत जाने पर जब सब लोग सो गए, तो ज़ुबेदा उठी। उसने दीपक जलाया। धीरे से किंवाड़ खोलकर देखा, सलीम साहब के कमरे का दीपक जल रहा है। वह चित लेटे हुए छत की ओर देख रहे हैं। ज़ुबेदा एक हाथ में बटेर का शोरबा एवं चपातियाँ और दूसरे हाथ में मदिरा का गिलास लेकर सलीम के कमरे में

घुसी। उसे देखते ही सलीम उठकर बैठ गए। वह कुछ बोलना ही चाहते थे कि ज़ुबेदा ने उँगली के इशारे से उसे चुप कर दिया। वह भीतर-ही-भीतर भभक कर रह गए। ज़ुबेदा ने चौकी पर गिलास एवं तश्तरी रखकर सलीम के कमरे की साँकल भीतर से बंद कर ली, और उसकी चारपाई पर बैठकर बोली—"नाराज़ हो ?"

सलीम मन-ही-मन पुलक उठे। फिर भी बनावटी क्रोध दिखाते हुए बोले—"तुमसे मतलब ?"

"अच्छा जनाब !" ज़ुबेदा ने कहा—"यह ख़ूब रही, मतलब न होता, तो ज़ुबेदा कोई फ़ालतू थी, जो रात में तुम्हें शोरबा-चपाती खिलाने आती।" फिर कुछ रुककर बोली—"मुझसे मतलब नहीं है, तो लो, मैं चली।" हाथ में तश्तरी और गिलास उठाकर ज़ुबेदा चल पड़ी।

सलीम ने चारपाई से उछलकर उसे पकड़ लिया। ज़ुबेदा लौट आई। पुनः तश्तरी चौकी पर रखकर गिलास उठाती हुई बोली—"लो, पियोगे ?"

"पिलाओ।" सलीम ने कहा, और ज़ुबेदा ने गिलास मुँह से लगा दिया।

"और ?" ज़ुबेदा ने आँखें नचाते हुए पूछा।

सलीम बोले—"कहीं जुम्मन की-सी दशा न हो जाय !"

ज़ुबेदा विहँस उठी। शोरबा एवं चपातियों की तश्तरी सलीम की ओर बढ़ाकर बोली—"लो, खाओ। ख़ुदा न करे, दूसरा जुम्मन इस घर में दिखाई पड़े।"

सलीम खाने लगे। ज़ुबेदा के इस मधुर व्यवहार पर वह रह-रहकर सोच रहे थे, कितनी अच्छी लड़की है !"

क्षण-भर पहलेवाली विचार-धारा बदल चुकी थी, जब उन्होंने ज़ुबेदा को सुअर की बच्ची तक कह डाला था।"

सलीम जब खाना खा चुके, तो ज़ुबेदा ने तश्तरी और गिलास उठाकर फ़र्श पर रख दिया। फिर मुस्किराते हुऐ सलीम से पूछा—"अभी तो रहोगे?"

"नहीं!" सलीम बोले—"सुबह जाना है।"

"क्यों?" ज़ुबेदा ने प्रश्न किया—"क्या यहाँ अच्छा नहीं लगता?"

"लगता तो है।" सलीम ने कहा—"मगर भूखों जो मरना पड़ता है।"

ज़ुबेदा हँसी, और बोली—"मुहब्बत बड़ी, या पेट? बोलो, किसे अहमियत देते हो?" सलीम यह प्रश्न सुनकर सकपका गए। न तो उनसे कहते बना कि पेट बड़ा है और न वह यही कह सका कि मुहब्बत।

ज़ुबेदा ने मुस्किराते हुए कहा—"जनाब सलीम साहब! आप सोच क्या रहे हैं? जल्दी जवाब दीजिए।"

सलीम ने दबे ओठों धीरे से कहा—"मुहब्बत!"

"मुहब्बत!" ज़ुबेदा हँस पड़ी—"तो पेट का शिकवा क्यों करते हो? भूखे रहो, और मुहब्बत करो! दोनो एक साथ थोड़े होते हैं। ईख का चूसना और शहनाई का बजाना कभी साथ-साथ हुआ है या तुम्हीं कर दिखाओगे?"

इतना कहकर उसने सलीम की ठुड्डी पकड़कर हिला दी, और बोली—"अच्छा, मैं चली। तुम आराम करो!" ज़ुबेदा उठकर खड़ी हो गई, और आँखें मटकाती हुई बोली—"शब्बे-ख़ैर!"

सलीम ने झपटकर उसकी ओढ़नी का छोर पकड़कर खींच ली। सिर उघर गया। सलीम की इस हरकत पर ज़ुबेदा को क्रोध आ गया। उसने अपनी ओढ़नी छुड़ाते हुए कहा—"यही है आपकी शराफ़त?"

सलीम के हाथ, ज़ुबेदा के मुख से यह वाक्य सुनते ही, ढीले पड़ गए। ओढ़नी का छोर आप-ही-आप हाथ से छूट गया। वह शरमाते हुए बोले—"हाँ, मेरी शराफ़त यही है, और तुम्हारी मुहब्बत !"

"अच्छा जनाब !" ज़ुबेदा बोली—"इसका मतलब आप यह लगा रहे हैं कि मैं आपसे मुहब्बत करती हूँ।"

"क्यों ?" सलीम बोले—"अभी तुमने ही तो कहा था।"

"मैंने क्या कहा था ?" ज़ुबेदा ने आँखें तरेरते हुए पूछा—"कि मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ।"

सलीम चुप हो गए। थोड़ी देर मौन रहकर बोले—"भई ख़ूब ! कभी हँसना, कभी रोना और कभी नाराज़ हो जाना।" वह ज़ुबेदा की ओर देखने लगे।

ज़ुबेदा ने विहँसकर आँखों की पुतलियाँ मटकाते हुए कहा—"जी हाँ, कभी चिढ़ना, कभी भगना, कभी भूखे ही सो जाना।"

"मैं भाग कहाँ रहा हूँ ?" सलीम ने चिढ़कर पूछा।

"अभी कहा नहीं ?" ज़ुबेदा बोली—"कल सुबह चला जाऊँगा। बोलो, कहा था या नहीं ?" कहते हुए ज़ुबेदा ने सलीम का हाथ पकड़कर अपनी मुलायम हथेली के बीच दबा दिया। सलीम भीतर-ही-भीतर ख़ुश हो गए। ज़ुबेदा का हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे से बोले—"ज़ुबेदा, मुझे यह पसंद नहीं कि तुम यहाँ रहो, और मैं वहाँ रहूँ।"

"क्या हर्ज है ?" ज़ुबेदा बोली—"जौनपुर से कड़े तक पहुँचने में तीन दिन से अधिक न लगते होंगे।"

"मेरा मतलब तुम नहीं समझीं।" सलीम ने कहा—"मेरी मंशा यहीं से है।"

"अच्छा !" ज़ुबेदा बोली—"जनाब इतना आगे बढ़ रहे हैं। होने दीजिए सुबह, चाची से सब कुछ बताती हूँ।"

"नहीं ज़ुबेदा, तुम्हें मेरी क़सम, उनसे कुछ न बताना।"

"क़सम-वसम कुछ नहीं। आपको मैं खाना खिलाने आई हूँ, इसका मतलब यह नहीं कि आप मुझसे मज़ाक करें।"

"अच्छा, मैं अपने अलफ़ाज़ वापस लेता हूँ।" सलीम ने विनम्र स्वर में कहा—"मुझे माफ़ कर दो।"

ज़ुबेदा मन-ही-मन हँस पड़ी। उसने धीरे से सलीम का हाथ पुनः दबा दिया। सलीम सिहरकर रह गए, और वह अपने कमरे की ओर चल पड़ी।

ज़ुबेदा के कमरे का द्वार सलीम के कमरे से मिला था ही, सलीम उसे एकटक देखता रहा। ज़ुबेदा ने द्वार खुला रहने दिया। अपने कमरे में जाकर चारपाई ठीक की, बिस्तर लगाया, और फिर लेटकर धीरे से कहा—"सलीम साहब!"

सलीम सिर उठाकर झाँकने लगे। ज़ुबेदा मुस्किरा उठी, बोली—"दरवाज़ा खुला रहने दूँ?"

"जैसा मुनासिब समझो।" सलीम बोला—"खुला रहने दो, मगर चिराग़ गुल कर दो!"

ज़ुबेदा मुस्किराती हुई उठी। उसने आँचल के छोर से दीपक बुझा दिया, और लपककर, द्वार बंद करके भीतर से साँकल चढ़ा ली। सलीम मन मसोसकर रह गया। ज़ुबेदा लेटकर अपने मधुर कंठ से कोई गीत गाने लगी।

प्रातःकाल हुआ। सलीम जब बाहर निकले, तो धूप छत पर आ गई थी। सूबेदार साहब दरवाज़े पर नंगे बदन बैठे थे। जुम्मन उनके तेल मालिश कर रहा था। प्रातः-क्रिया से निवृत्त होकर सलीम उन्हीं के पास बैठ गए। उन्हें देखते ही सूबेदार साहब ने कहा—"कहिए सलीम साहब, तबियत कैसी है?"

"ठीक है!" सलीम ने उत्तर दिया—"आप कब आए? रात में......"

"रात में क्या?" सूबेदार साहब बात काटकर बोले—"रात में नहीं, मैं शाम को ही आ गया था।" आपको बुलाया भी, मगर आप बोले नहीं। मैंने सोचा, आराम कर रहे हैं। क्यों ख़लल डालूँ। बाद में यह क़व्वाली सुनाने लगा, और मैं सुनते-सुनते ख़ुद ही सो गया।

"कोई हर्ज नहीं," सलीम बोले—"शाम को न सही, तो सुबह भेंट हो ही गई!"

"जी हाँ।" सूबेदार ने कहा—"कुछ सुना?"

"क्या?" सलीम ने जिज्ञासा से पूछा।

"शाह साहब चले गए।"

"कब?"

"कल।" केवल सूबेदार सैयद साहब रह गए हैं। उनके साथ उनका ख़ानदान एवं शातिर मियाँ कुछ सिपाहियों के साथ रुके हैं। फिर धीरे से बोले—"सुना है, सैयद साहब की साहबज़ादी सलमा से डलमऊ के राजा डालदेव ने छेड़ख़ानी की है।"

"आपको कैसे पता?" सलीम ने पूछा।

"वाह जनाब, वाह!" सूबेदार साहब बोले—"चारो तरफ़ शोहरत है, और मुझे ख़बर न हो।" सुना है, जल्दी ही एक ज़बर-दस्त जंग छिड़नेवाली है।"

"तो फ़ौज की भरती भी होगी?" जुम्मन ने मालिश करते हुए पूछा।

"हाँ, सूबेदार बोले—"जायगा?"

"जुम्मन ने मुस्किराकर स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।"

सूबेदार साहब हँसकर बोले—"तुम लोगों की फ़ौज अलग तैयार

हो रही है, अपनी क़ौमियत, सकूनियत, वल्दियत, सब कुछ लिख-कर मुझे दे दो। उस रिसाले की भरती का ठेका मैंने लिया है।" इतना कहकर सूबेदार साहब हँस पड़े।

सलीम भी हँसते हुए अपने कमरे की ओर चल पड़े। जुम्मन खुश हो गया। वह मेहनत से तेल लगाने लगा। उसकी छाती गज़-भर फूल उठी थी। दिल बाँसों उछल रहा था। अब वह फ़ौज में भरती होगा।

"और ताक़त लगा।" सूबेदार साहब ने कहा—"इसी ताक़त पर फ़ौज में भरती होगा।"

मालिश करते-करते जुम्मन के पसीना छूट आया।

"शाबाश!" सूबेदार साहब ने जुम्मन की पीठ ठोंकी—"अब तेरे पसीना निकल आया। बंद कर दे।"

"न!" जुम्मन ने कहा—"मेरे पसीना निकल आया, तो मैं आपके पानी निकालकर दम लूँगा।"

"अबे छोड़ तो!" सूबेदार साहब चिल्लाए।

जुम्मन माना नहीं। वह भूत की तरह जुटा ही रहा। उसकी साँस फूल आई थी। मुख से राल टपक रही थी। फिर भी वह जुटा था। सूबेदार साहब परेशान हो उठे। उन्होंने कहा—"ठीक है जुम्मन, तू फ़ौज के लिये एकदम ठीक है। ज़रा फ़ौजी चाल तो दिखा।"

जुम्मन उन्हें छोड़कर अकड़ के साथ क़दम मिला-मिलाकर चलने लगा। उसकी सारस-जैसी चाल पर सूबेदार साहब ने ठहाका लगाया, और वह शरमाकर रह गया।

---

[१४]

रात्रि का अंतिम प्रहर था। आकाश में सितारों की चमक कुछ-कुछ धीमी पड़ने लगी थी। पुरवाई के शीतल झोंकों से वृक्षों की डालियाँ सिहर रही थीं। सोनेवालों की दुनिया अभी स्वप्नमयी ही थी। चारो ओर भीषण सन्नाटा था। उसी सन्नाटे में गजराज तेज़ी से रायबरेली की ओर चला जा रहा था। वीरान सड़क पर अश्व की टापों का स्वर गूँज रहा था, जिसकी आवाज़ या तो गज-राज ही सुन रहा था, या अपने घोंसलों में सोए पक्षी, जो टापों की टप-टप ध्वनि चौंक-चौंककर डालियों पर पर फड़फड़ा रहे थे। गजराज रास्ते-भर सोचता रहा। घोड़ा रामू अपनी गति से चलता रहा। उसकी टापों की आवाज़ से वृक्ष चौंकते रहे, पक्षी पर फड़-फड़ाते रहे, और सन्नाटा मुखर होता रहा।

जब गजराज रायबरेली के क़िले में पहुँचा, तो तड़का ही था। क़िले के चारो ओर सन्नाटा छाया था। फाटक से कुछ दूरी पर, जहाँ सैनिकों की छावनी थी, केवल पहरा देनेवाले प्रहरी की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। गजराज ने क़िले के फाटक पर आकर घोड़ा रोक दिया। घोड़े को पुचकारा, और फिर उतरकर उसकी पीठ थप-थपाई। अपने स्वामी का सहज स्नेह पाकर घोड़ा हिनहिना उठा, और झटके से सिर उठाकर गजराज की ओर देखने लगा। उसकी थकान दूर हो गई थी। "रामू!" गजराज ने प्रेम से घोड़े को पुच-कारते हुए कहा।

रामू फिर हिनहिना उठा। गजराज आगे बढ़ा। क़िले का द्वार बंद था। उसने घोड़े की रास पकड़े हुए पुकारा—"कद्देदीन!"

कड़ेदीन ने ज़ोर से खखारा। फिर चिल्लाया—"कौन है?"

"मैं हूँ गजराज।" कहते हुए गजराज ने फाटक की ज़ंजीर खट-खटाई।

"फाटक क्यों तोड़ रहे हो, आ तो रहा हूँ।" कड़ेदीन आवेश में बोला—"न दिन देखते हो, न रात, जब देखो तुम्हारा घोड़ा कसा तैयार है। मैं तो ऊब गया।"

कड़ेदीन की बात सुनकर गजराज गरज उठा—"तुम्हारी तरह कोई दरबान थोड़े हूँ कि दिन-भर बैठे-बैठे मक्खियाँ मारा करूँ।" फिर घोड़े का मस्तक सहलाते हुए बोला—"दिन, रात, सुबह, शाम, दोपहर—जितनी बार महाराज का काम पड़ेगा, आऊँगा, और जितनी बार मैं आऊँगा, तुम्हें फाटक खोलना पड़ेगा।"

कड़ेदीन मन-ही-मन झुँझलाकर रह गया। मुँह से कुछ न बोला। केवल फाटक खोलकर एक ओर खड़ा हो गया।

फाटक खुलते ही गजराज उछलकर अपने घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। घोड़ा उनींदे क़िले को अपनी टापों से चौंकाता हुआ अश्वशाला में जा खड़ा हुआ। गजराज ने घोड़े को इधर-उधर टहलाकर बाँध दिया, और एक बार पुनः उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"जियो रामू!"

घोड़ा हिनहिना उठा। गजराज ने पुनः उसके मस्तक को सह-लाया, और फिर वह श्यामा की कोठरी की ओर चल पड़ा।

श्यामा उस समय प्रगाढ़ निद्रा में सो रही थी। कोठरी के द्वार बंद थे। गजराज ने घूमकर इधर-उधर देखा। सभी कोठरियाँ उसे बंद ही मिलीं। प्रभात होने में अब अधिक देर न थी। वह श्यामा की कोठरी के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया तथा ज़ंजीर खटखटाने लगा। श्यामा सोती ही रही। उसकी नींद न टूटी। गजराज ने पुनः ज़ंजीर खटखटाते हुए ज़ोर से पुकारा—"श्यामा!"

श्यामा चौंककर उठ बैठी। वह पुनः आवाज़ की प्रतीक्षा करने लगी। गजराज ने फिर ज़ंजीर खटखटाई।

"कौन ?" श्यामा ने चारपाई से उठते हुए कहा।

"मैं हूँ श्यामा।" गजराज बोला—"पहचाना या नहीं ?" और वह ज़ंजीर छोड़कर द्वार खुलने की प्रतीक्षा करने लगा।

श्यामा स्वर पहचान गई थी। बोली—"अभी आई।" उसने अपने बिखरे बालों को समेटा, फिर आँचल का छोर सिर पर छोड़ धीरे से द्वार खोलते हुए कहा—"आओ गजराज।"

गजराज ने अंदर प्रवेश किया। श्यामा ने चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा—"बैठो।" गजराज बैठ गया। श्यामा अपनी उनींदी आँखें मींचती हुई बोली—"क्या देर से पुकार रहे थे ?"

"नहीं।" गजराज बोला—"अभी-अभी तो डलमऊ से आ रहा हूँ।"

"डलमऊ से आ रहे हो ?" श्यामा आश्चर्य से बोली—"रातो-रात ! ऐसी क्या आवश्यकता थी। प्रभात हो जाने देते। इस बार तो डलमऊ में ख़ूब रुके।" कहते-कहते वह विहँस उठी।

"कहाँ श्यामा !" गजराज बोला—"आज तीसरा दिन ही तो है। परसों गया था, आज लौट आया।" फिर श्यामा की ओर देखकर कहा—"बैठो न, तुम खड़ी क्यों हो ?"

श्यामा वहीं भूमि पर, एक चटाई बिछाकर, बैठ गई। फिर मुस्किराकर बोली—"डलमऊ में आनंद से तो रहे ? सावित्री का क्या हाल है ?" फिर कुछ सोचकर पूछा—"छोटी रानी की भी कोई ख़बर मिली ?"

"हाँ।" गजराज बोला—"अभी ठीक है। यहाँ का हाल-चाल तो बताओ। आज तीन दिन से कोई समाचार नहीं मिला। बड़ी चिंता लगी है।"

"यहाँ तो बड़ा तूफ़ान चल रहा है।" श्यामा ने गंभीर होते हुए कहा—"परसों दोपहर के बाद तुम यहाँ से गए थे। तुम्हारे जाते ही रेवंत चाचा को बंदी बनाकर महाराज आ पहुँचे, सूचना तो मिल ही गई होगी।"

"हाँ।" गजराज बोला—"मुझे सब कुछ ज्ञात है। वह हैं कहाँ ?"

"उसी सुरंग वाले खंदक में।" श्यामा बोली—"आज तीन दिन से उन्होंने न अन्न खाया, न जल ग्रहण किया। कल सायंकाल महाराज ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाया था। उनसे भोजन के लिये कहा, तो उन्होंने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—"जिस क़िले की एक-एक ईंट से मदिरा की गंध आ रही हो, उसमें रेवंत पानी न पिएगा, मर भले ही जाय।" कहकर श्यामा ने एक लंबी साँस ली। फिर गजराज की ओर देखकर कहा—"उनके सत्तर वर्षों के बूढ़े शरीर में, पता नहीं, कहाँ का पौरुष आ गया था कि उन्होंने महाराज के छक्के छुड़ा दिए। तुम तो जानते ही हो कि यह सब कुचक्र है। महाराज का मुख बंद हो गया। उन्हें उत्तर ढूँढ़े नहीं मिला। इसके बाद वह फिर उसी खंदक में भेज दिए गए। अब महाराज कंचुकी रानी से बदला लेने की तैयारी कर रहे हैं। उन्हें तो रेवंत चाचा की ख़बर होगी ही ?" श्यामा ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से गजराज को देखकर कहा—"बूढ़े रेवंत चाचा की यह दशा तो मुझसे देखी नहीं जाती। कल मेरी ओर निहारकर वह रो पड़े थे।"

"श्यामा !" गजराज बोला—"वास्तव में उनके साथ बड़ा अत्याचार हो रहा है। क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता। यहाँ इनकी यह दशा है, वहाँ कंचुकी रानी बेहोश पड़ी हैं। वह किसी-न-किसी प्रकार अपने पिता से मिलना चाहती हैं। मैं भी उन्हें वचन देकर आया हूँ।"

"किंतु उनका मिलना कैसे संभव हो सकेगा ?" श्यामा बोली—"कंचुकी रानी का यहाँ आना ख़तरे से ख़ाली नहीं है।"

"और यदि रेवंत को ही किसी प्रकार निकालकर वहाँ ले जाया जाय ?" गजराज ने श्यामा से पूछा।

"यह असंभव है।" श्यामा बोली—"सुरंग से उन्हें निकालना, फिर डलमऊ पहुँचाना कोई साधारण काम नहीं है। यदि भेद खुल गया तो ?"

"तो क्या ?" गजराज बोला—"मृत्यु-दंड मिलेगा। यदि कंचुकी रानी का काम हो जाता है, गजराज मरने के लिये भी तैयार है।"

"गजराज !" श्यामा ने कहा—"ऐसा न सोचो।"

"क्यों न सोचूँ ?" गजराज बोला—"यदि मैं अपने वचन का पालन न कर पाया और कंचुकी रानी मर गईं तो ?" सोचो श्यामा, मैं पूछता हूँ। कंचुकी तुम्हारी कौन हैं, रेवंत से तुम्हारा क्या संबंध है, यह केवल मैं ही जानता हूँ। अपने आपसे पूछो श्यामा, कर्तव्य बड़ा है या मृत्यु ?"

"कर्तव्य !" श्यामा ने कहा।

"तो फिर ?" गजराज ने आवेश में कहा—"तुम्हारा रेवंत के प्रति क्या कर्तव्य है ? यदि कर्तव्य-पालन में प्राण भी जायँ, तो चले जायँ। यह जीवन है किसलिये।"

"श्यामा की आँखें छलछला उठीं। बोली—"जिसका नमक खाते हैं, उसके प्रति हमारा कुछ कर्तव्य है। फिर भी जो कुछ कहो, करने को तत्पर हूँ।"

"मैं कुछ न कहूँगा।" गजराज बोला—"मैं नहीं समझता था कि सोने के चार टुकड़ों की चमक पर तुम अपने वंश के रक्त को भी भूल जाओगी। जो तुम्हारा कर्तव्य कहे, तुम वही करो। देखता हूँ, तुम्हारा कर्तव्य क्या कहता है। मुझे तो अर्धरात्रि तक रेवंत चाचा

को कंचुकी रानी से पास तक पहुँचाना है, और पहुँचाऊँगा। तुम्हारे लिये भी दिन-भर का समय है। सोच लो।"

इतना कहकर गजराज उठ खड़ा हुआ। श्यामा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"गजराज, थोड़ी देर रुको तो।"

गजराज पुनः बैठ गया। उसकी आँखों में एक विचित्र चमक आ गई और मुख-मंडल आरक्त हो उठा। श्यामा उसकी ओर देखकर बोली—"मुझे चुनौती देते हो, क्यों?" फिर धीरे से कहा—"गजराज, एक नारी तुम्हारी चुनौती स्वीकार करती है। वास्तव में यह कार्य आज नहीं, कल ही हो जाना चाहिए था, किंतु तुम थे ही नहीं, मैं अकेली क्या करती? तुम केवल एक घोड़े का प्रबंध कर लो। अपना घोड़ा न ले जाना। बाक़ी सब कुछ तुम श्यामा पर छोड़ दो। या तो आज रात्रि तुम्हें श्यामा की लाश ही मिलेगी या जीवित रेवंत चाचा छोटी रानी के पास पहुँचेंगे।"

श्यामा की बातें सुनकर गजराज प्रसन्न हो उठा। बोला—"अभी तक क्यों नहीं बता रही थी कि मैंने योजना बना ली है, केवल मुझे परेशान करने के लिये.......। है न यही बात?"

"नहीं गजराज!" श्यामा बोली—"मैं स्वयं परेशान बैठी हूँ। अभी तक, इतने दिनों की नौकरी में, कोई बात नहीं हुई। तुम जानते हो, न मेरे मा है, न बाप! न भाई न बहन!........" कहते-कहते श्यामा की आँखें छलछला उठीं। उसने आँखों के आँसू पोछ-कर कहा—"जो मेरे अपमान का बदला इन पापियों से ले सके। अन्यथा छोटे राजा मेरी इज़्ज़त पर डाका डालने का साहस न करते। मेरा आँचल न पकड़ते। मेरा धर्म नष्ट करने पर उतारू न होते, किंतु भगवान् की कृपा से मेरा धर्म बच गया।" कहते-कहते उसने दोनो हाथ जोड़कर आँखें ऊपर उठाईं—"भगवान् सब कुछ

देखता है। उसने द्रोपदी की तरह मेरी लाज बचा ली, अब मैं इस क़िले में नहीं रहना चाहती।" कहकर वह फफक उठी।

गजराज ने उसे छाती से लगा लिया और आँसू पोंछते हुए कहा—"श्यामा, दुखी न हो। तुम्हारे इस अपमान का बदला गजराज अवश्य लेगा। तुम यह क्यों सोचती हो कि तुम असहाय हो।"

श्यामा के आँसुओं का वेग और बढ़ गया। गजराज का वक्ष:स्थल भीगने लगा। वह उसे सांत्वना देता हुआ बोला—"श्यामा, होशियारी से अपना काम करो। देखो प्रभात हो रहा है। अब मैं अपने कक्ष में चलता हूँ।" इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। श्यामा के आँसूओं का वेग न रुका। गजराज के जाने के बाद वह उठी, और नित्य-क्रिया में लग गई।

श्यामा जब क़िले में पहुँची, तो महाराज अभी सो ही रहे थे। उसने उनके स्नानादि का प्रबंध किया। फिर जल-पान की सामग्री सजाकर कक्ष में रखने लगी।

स्नान कर गजराज ने स्वच्छ वस्त्र पहने। नया गमछा निकाला, और धीरे-धीरे सैनिकों की छावनी की ओर बढ़ा। क़िले के बाहरवाले मैदान में सेना की केवल एक टुकड़ी रहती थी, जिसका कार्य, किसी भी अचानक आक्रमण के समय, दुर्ग की रक्षा करना था। इस टुकड़ी का सरदार खूबचंद नामक एक नवयुवक था, जो बहुत ही धीर-वीर एवं साहसी माना जाता था। गजराज और खूबचंद में घनिष्ठ मित्रता थी। गजराज का अधिकांश समय उसी के साथ कटता था। उसे अपने शिविर की ओर आते देख खूबचंद बोला—"कहो गजराज, आज तो कई दिन बाद दिखाई पड़े।"

"हाँ भाई!" गजराज बोला—"लखनऊ चला गया था। यहाँ था ही नहीं!"

"अच्छा !" खूबचंद ने व्यंग्य किया—"वहाँ से मेरे लिये क्या लाए ?"

"युद्ध का संदेश !"

"युद्ध का संदेश ?" खूबचंद ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ।" गजराज बोला—"राजा सेढूराय का प्रभाव बढ़ रहा है। वह किसी भी समय डलमऊ अथवा रायबरेली पर आक्रमण कर सकता है। इसी आशंका से वहाँ बड़े ज़ोर की तैयारी हो रही है। सभी शरणार्थी क़िले की मरम्मत में लगे हैं।"

"यह अच्छी रही !" खूबचंद बोला—"ज़ीन कसे-कसे मेरे घोड़े की पीठ कट गई। ऐसा लगता है, इस जीवन में कभी युद्ध से छुटकारा न मिलेगा।"

"हूँ।" गजराज ने विहँसकर कहा—"नसही घोड़ी, मोछही जोय। नसहा तो घोड़ा रक्खे हो। ऊपर से कहते हो, पीठ कट गई। मैरा होता, तो किसी गंगा-पुत्र के हाथ कुश लेकर संकल्प कर देता।"

"क्या कहा ?" खूबचंद अपने घोड़े की बुराई सुनकर आवेश में बोला—"कुछ पता भी है ? नसहा है तो क्या हुआ, हवा से बातें करता है। क़िले में इसकी शान का दूसरा घोड़ा न निकलेगा।"

"तुम-जैसा घुड़सवार भी तो नहीं है ?" गजराज ने नहले पर दहला रक्खा।

"व्यर्थ की बातें न करो गजराज !" खूबचंद ने क्रोधित होते हुए कहा।

"व्यर्थ की बातें क्या ?" गजराज बोला—"कर ले मेरे रामू का मुक़ाबला तेरा नसहा, उसी दिन से तलवार हार जाऊँ।"

"या तो संसार में तुम हो, या तुम्हारा रामू।" खूबचंद ने कहा—"मेरे अलावा दूसरा घुड़सवार भी न निकलेगा। किसकी हिम्मत है, जो नसहा की पीठ पर हाथ भी रख सके।"

"अच्छा।" गजराज ने कहा—"बढ़-बढ़ के बातें न मारो। मेरे पल्ले पड़े, तो साले की लीद निकाल दूँ।"

"तुम उसकी पीठ पर ठहर ही नहीं सकते।" खूबचंद आवेश में बोला—"यदि यही है, तो चढ़कर देखो, सारी शेख़ी भूल जायगी।"

"कुछ शर्त बदो।" गजराज ने खूबचंद को ताव दिलाते हुए कहा।"

"शर्तर ही।" खूबचंद बोला—"पचास-पचास स्वर्ण मुद्राओं की।"

"पक्का रहा।" गजराज ने कहा—"शाम को देखूँगा।"

"शाम को ही सही।" खूबचंद बोला—"जब तुम्हारी इच्छा हो।"

"अच्छी बात है।" कहता हुआ गजराज उठ खड़ा हुआ और क़िले की ओर चला आया।

श्यामा महाराज की आँख बचाकर दिन-भर क़िले के अंतःपुर में काम करती रही। जब महाराज कक्ष में आते, वह बाहर निकल जाती और जब वह बाहर रहते, तो वह कक्ष में, अथवा किसी रानी के पास। उसके हृदय में महाराज के प्रति इतनी घृणा भर गई थी कि वह उनके सम्मुख नहीं होना चाहती थी, न उन्हें अपना मुख ही दिखाना चाहती थी। फिर भी अभी एक समय ऐसा शेष था, जब श्यामा महाराज के सामने जाने को विवश थी। वह समय था रात्रि-शयन के पूर्व उन्हें मदिरा पिलाने का। ज्यों-ज्यों वह घड़ी निकट आती जाती, श्यामा की धड़कन तेज़ होती जाती थी।

साँझ होने से पूर्व, जब गजराज ख़ूबचंद के पास हाथ में पचास स्वर्ण-मुद्राओं की पोटली लिए चला, उस समय काफ़ी उमस थी। वायु बंद थी। आकाश में बादल के कुछ नीर-भरे टुकड़े बिखरे थे। जिनका मुख, डूबते हुए सूर्य की लोहित किरणें, लाल कर

रही थीं। गजराज ने ख़ूबचंद के पास पहुँचकर स्वर्ण-मुद्राएँ रख दीं और बोला—"यह रही मेरी धनराशि। अब अपनी निकालो।"

ख़ूबचंद ने भी पचास स्वर्ण-मुद्राएँ निकालीं। दोनो की धन-राशि खड़े हुए एक निर्णायक सैनिक को दे दी गई। उसे समझा दिया गया कि गजराज यदि नसहे घोड़े की पीठ पर थम जाय, तो वह जीता अन्यथा विजय ख़ूबचंद की होगी।

घोड़ा तैयार कर गजराज को दे दिया गया। तमाशा देखनेवालों का झुंड एकत्रित हो गया। गजराज ने मन-ही-मन भगवान् को प्रणाम कर घोड़े की पीठ थपथपाई। घोड़ा चौंक उठा। गजराज तत्काल ही उछलकर उसकी पीठ पर सवार हो गया। ऐंड़ लगाते ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा। गजराज उस पर डरता-डरता इस तरह बैठा रहा कि देखनेवालों को प्रतीत हो कि 'अब गिरा, तब गिरा!' उसे झुकते-गिरते और फिर सँभलते देखकर दर्शक तालियाँ पीटने लगे, किंतु गजराज गिरा नहीं। केवल दर्शकों को दिखाता रहा। घोड़ा द्रुत गति से भागता रहा। थोड़ी ही देर में वह आँखों से ओझल हो गया और बस्ती में समा गया।

"यह बच नहीं सकता!" ख़ूबचंद ने आत्मविश्वास से कहा—"आगे कहीं गिरेगा अवश्य।" वह दर्शकों के साथ अपने स्थान पर आकर बैठ गया।

गजराज पहले तो पूर्व की ओर, फिर अकस्मात् उत्तर की ओर मुड़कर उस सड़क पर आ गया, जो रायबरेली से गांडीव-प्रदेश को जाती थी। अब वह बस्ती से बाहर था। काफ़ी दूर चलकर उसने अपना घोड़ा पश्चिम की ओर मोड़ दिया। जब वह सई नदी के कछार में आ पहुँचा, घोड़ा पश्चिम से दक्षिण की ओर मुड़ा। अब वह धीरे-धीरे चल रहा था। गजराज नदी से निकले हुए उस जल-स्रोत की मेड़ पर घोड़ा ले आया, जो दुर्ग की रक्षा करती थी।

अँधेरा हो चला था। गजराज घोड़े से उतर पड़ा, और उसकी बाग-डोर पकड़े-पकड़े वह मेड़ पर थोड़ी दूर तक चलता रहा। खाईं काफ़ी गहरी थी और उसमें पानी भरा था। सामने एक ख़ंदक़ था, जिसके चारो ओर करील की झाड़ियाँ थीं। गजराज ने उसी झाड़ी से घोड़े को बाँध दिया और बस्ती की ओर चल पड़ा।

जब वह राजपथ पर आया, तो उसने अपना गमछा फाड़कर उसकी पट्टी घुटने में लपेटी, और लँगड़ाता-कराहता, रुकता-चलता किसी तरह क़िले के द्वार पर आ पहुँचा।

"वह देखो!" ख़ूबचंद ने उँगली उठाकर कहा—"मेरी बात सच निकली न! हाथ-पैर तोड़ आया।" इतना कहकर वह अपने साथियों-समेत गजराज की ओर बढ़ा। गजराज ने ज़ोर-ज़ोर से कराहना प्रारंभ किया। फिर वह पैर पकड़कर बैठ गया। उसमें चलने की शक्ति नहीं थी। दो सैनिकों ने उसे सहारा देकर उसकी कोठरी में पहुँचाया। गजराज ने बताया—"घोड़ा उसे गांडीव-प्रदेशवाली सड़क पर गिराकर उत्तर की ओर भाग गया है। पाँच-छ सैनिक घोड़े को ढूँढ़ने के लिये रातोरात निकल पड़े।

संपूर्ण क़िले में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया कि गजराज घोड़े से गिर पड़ा है! उसका पैर टूट गया! चारो ओर यही चर्चा होने लगी। देखनेवालों का काफ़ी रात तक ताँता बँधा रहा। गजराज पड़ा-पड़ा कराहता रहा। बाहर आकाश काले बादलों से ढक गया था।

थोड़ी रात बीतने पर जब श्यामा अपनी कोठरी में आई, तो उसके भी कानों में यह ख़बर पड़ी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। संपूर्ण कार्य-क्रम भंग हो गया था। श्यामा की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वह दौड़ती हुई गजराज की कोठरी में पहुँची, और उसकी दशा देखकर ख़ूब ज़ोर से सिसककर रो पड़ी। गजराज

कराहता रहा। थोड़ी देर में जब सहानुभूति दिखानेवाले श्यामा को उपचार की सामग्री बताकर चले गए, तो गजराज ने श्यामा को द्वार बंद करने का संकेत किया। श्यामा ने द्वार बंद कर लिया। गजराज ने उससे संपूर्ण स्थिति बताते हुए कहा—"श्यामा, घबराने की कोई बात नहीं। यह मेरा स्वाँग-मात्र है। तुम अपना काम करो। घोड़ा क़िले की खिड़की के पीछे खाई के उस पार बँधा है।"

श्यामा प्रसन्न हो गई। गजराज की कोठरी में बाहर से ताला लगाकर चली गई। सहानुभूति दिखानेवाले ताला देख-देख लौट गए। गजराज भीतर पड़ा रहा।

श्यामा गजराज के पास से उठकर सीधे क़िले में आई। महाराज के मदिरा-पान का समय निकट था। श्यामा अकेली कक्ष में जाना न चाहती थी। वह सुभद्रा रानी के पास जाकर बोली—"महाराज ने आज आपके साथ ही मदिरा पान करने की इच्छा प्रकट की है।"

"तेरे साथ ही चलूँ ?" सुभद्रा ने कहा—"या थोड़ी देर में आ जाऊँ ?"

"नहीं।" श्यामा बोली—"मैं खड़ी किसलिये हूँ, शीघ्रताकीजिए।"

सुभद्रा जल्दी-जल्दी वस्त्र बदलकर श्यामा के साथ चल पड़ी। अपने कक्ष में श्यामा के साथ सुभद्रा को देखकर महाराज थोड़ा चौंके, किंतु बोले कुछ नहीं। श्यामा सुराही से मधु-चषको में मदिरा ढाल-ढालकर महाराज और सुभद्रा, दोनो को पिलाती रही। दोनो पीते रहे। चषक ख़ाली होते रहे।

थोड़ा देर बाद जब नशा अपनी जवानी पर आने लगा, और महाराज तथा सुभद्रा, दोनो बेहोश होने लगे, तो श्यामा ने सहारा देकर सुभद्रा को महाराज के पर्यंक पर लिटा दिया। कक्ष का द्वार बंद किया। फिर बाहर निकल गई।

श्यामा ने बाहर निकलकर अन्य रानियों के कक्ष देखे। सभी में सन्नाटा छाया था। वह लौट पड़ी। एक बार पुनः अंतःपुर के कक्षों पर दृष्टिपात करती हुई वह बाहर निकल आई।

उस समय तक रात काफ़ी हो गई थी। आकाश में काले-काले मेघ छाए हुए थे। बिजली रह-रहकर चमक रही थी। श्यामा दीर्घिका से होती हुई सुरंग के द्वार पर पहुँची। मलखान खड़ा पहरा दे रहा था। वह उसे देखकर बोली—"मलखान! भैया, इस तरह खड़े-खड़े तुम्हारा मन भी नहीं ऊबता?" और होठों पर एक मादक मुस्कान बिखेरकर हँसती आँखों से मलखान की ओर देखने लगी।

"नहीं श्यामा!" मलखान बोला—"मेरा तो यह काम ही है। अब आदत भी पड़ गई है।"

"आदत!" श्यामा ने विहँसकर कहा—"यह भी कोई आदत है। न आदमी, न आदमज़ात! दिन-भर अकेले खड़े रहो।" और वह मलखान से सटकर खड़ी हो गई।

मलखान श्यामा के भोलेपन पर हँस पड़ा। बोला—"यह तो कर्तव्य है, इसे निभाना ही पड़ता है, और जब कर्तव्य निभाना है, तो वैसा स्वभाव भी बनाना पड़ेगा।"

"बनाओ स्वभाव!" श्यामा आँखें नचाकर बोली—"किंतु मानव-स्वभाव को न छोड़ो। कर्तव्य भी करो और मनोरंजन भी।"

"मनोरंजन!" मलखान हँस पड़ा—"यहाँ मनोरंजन के लिये कौन बैठा है?"

यह सुनते ही श्यामा ने अपनी पलकें ऊपर उठाईं। दोनो की आँखें एक दूसरे की आँखों में समा गईं। तन में सिहरन पैदा होने लगी। वह लजाकर नीचे की ओर देखती हुई बोली—"बैठा

क्यों नहीं है। क़िले में लड़कियों की कमी थोड़े ही है। अपनी-अपनी पसंद चाहिए।" कहते-कहते वह लज्जा से अपने में ही सिमटकर रह गई।

मलखान सिहर उठा। श्यामा ने एक बार मादक नयनों से पुनः उसकी ओर देखा। फिर मुस्किराती हुई बोली—"चलूँ मलखान? रात काफ़ी हो गई है, कोई हम दोनो को बातें करते देख न ले।"

"बैठो श्यामा।" मलखान ने अपनी भावनाओं को दबाते हुए कहा—"अब रात में कौन देखने आता है। थोड़ी देर तुम्हीं से बातें करूँ।"

श्यामा बैठी नहीं। बोली—"कहते तो ठीक हो, दिन-भर मैं भी अकेली ही रहती हूँ। मन ऊबा करता है। अभी खाना भी नहीं खाया। खाना खाकर आ जाऊँगी!" मलखान को तिरछी आँखों से देखती हुई वह शरमाती, मुस्काती एवं बलखाती हुई चल पड़ी। मलखान खड़ा देखता रहा। थोड़ा चलने के बाद उसने लौट कर पुनः मलखन से पूछा—"तुम तो खा चुके होगे।"

"हाँ श्यामा!" सूर्यास्त-के पूर्व ही मैंने खाना खाया था। आज रात-भर पहरा देना है।"

"रात-भर?" श्यामा ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ", मलखान बोला—"रात में मैं ही रहता हूँ। दिन में फिर जगधारी रहेगा।"

"रात और दिन का काम अलग-अलग बाँट दिया गया है?" श्यामा ने प्रश्न किया।

"हाँ।" मलखान बोला।

"यह कब से हुआ? पहले तो ऐसा न था।"

"अभी तो तुम लौटकर आ ही रही हो, तब बताऊँगा, जाओ, भोजन कर आओ।" मलखान ने श्यामा पर कटाक्ष करते हुए

कहा। श्यामा मुस्किरा उठी। बोली—"तुम्हारे लिये भी लेती आऊँ ?"

"क्या लाओगी ?"

"जो कुछ होगा।"

"लेती आना।" मलखान ने विहँसकर कहा—"मगर अच्छी-अच्छी वस्तुएँ लाना।"

"ख़ूब अच्छी !" श्यामा ने पुलककर कहा—"पियोगे भी ?"

प्रत्युत्तर में मलखान केवल मुस्किराकर रह गया।

थोड़ी देर में श्यामा मदिरा की सुराही, गिलास और भोजन की थाली लिए आ पहुँची। थाली एक ओर रखकर उसने मदिरा का गिलास भरा, और मलखान की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लो।"

मलखान ने हाथ बढ़ा दिया। श्यामा लजाती हुई बोली—"इस तरह नहीं, मैं पिलाती चलूँ, और तुम पीते चलो, तब देखो, कितना मजा आता है।" वह शरमाकर भूमि की ओर देखने लगी।

रात की नीरवता। सामने जलती हुई रूप की मशाल। मलखान अपने को न सँभाल सका। वह पीने लगा, और श्यामा पिलाने लगी।

थोड़ी देर में सुराही साफ़ हो गई। न मलखान ने इंकार किया, और न श्यामा ने पिलाना बंद किया। श्यामा ने रिक्त सुराही वहीं रख दी। भोजन की थाली मलखान की ओर बढ़ा दी। मलखान भोजन करते-करते ही बेहोश होने लगा। वह संज्ञा-हीन हो वहीं लुढ़क गया। श्यामा थाली, सुराही एवं गिलास उठाकर बाहर निकल आई।

बाहर आकर उसने गजराज के कमरे का ताला खोला, और उससे धीरे से कहा—"तुम क़िले की खिड़की के बाहर खाई के पास

चलो, मैं अभी आ रही हूँ।" गजराज की छाती धड़क उठी। वह हाथ में नगी तलवार लेकर सधे पैरों से लुकता-छिपता चल पड़ा, और खिड़की से निकल गया। श्यामा अपनी कंचुकी में एक तेज़ कटार छिपाकर सुरंग के फाटक पर जा पहुँची। रात सायँ-सायँ कर रही थी। श्यामा की छाती धड़क रही थी। साँस फूल रही थी।

मलखान बेहोश पड़ा था। श्यामा ने इधर-उधर दृष्टिपात किया। चारो ओर नीरवता थी। उसने मलखान को हिला-डुलाकर देखा। वह चेतना-हीन पड़ा था। श्यामा ने चाभियों का गुच्छा उसकी कमर में बँधी पेटी से निकाला। फिर चारो ओर देखकर धड़कते हृदय एवं काँपते हाथों से सुरंग का द्वार धीरे-धीरे खोला। फिर चौंककर पीछे की ओर देखा। फिर थोड़ा-सा द्वार खोला। अब उसकी आँखें पीछे की ओर देख रही थीं, और काँपते हाथ द्वार खोल रहे थे। द्वार खुल गया। श्यामा दबे पैरों से रेवंत के पास जाकर बोली—"चाचा!"

"कौन?" रेवंत चौंककर बोला।

"मैं हूँ!" श्यामा ने उसके कान में कहा।

"श्यामा?"

"हाँ चाचा!" श्यामा ने कहा—"मैं ही हूँ! शीघ्रता करो, बाहर घोड़ा तैयार है। निकल जाओ, नहीं तो कोई देख लेगा, तो हम दोनो के प्राणों पर आ जाएगी। कंचुकी बेहोश पड़ी है, वह तुम्हें एक बार देखना चाहती है।" कहकर श्यामा ने रेवंत का हाथ पकड़-कर उसे उठा लिया।

"श्यामा!" रेवंत ने विरोध करते हुए कहा—"मैं चोर की तरह भागने को तैयार नहीं हूँ।"

"चाचा!" श्यामा बोली—"यह समय वाद-विवाद का नहीं है, यदि आप नहीं निकलते, तो मैं पेट फाड़कर मर जाऊँगी।" कह-

कर उसने छाती में छिपी कटार निकाल लिया। और रेवंत का हाथ पकड़कर बाहर खींच लाई। रेवंत कुछ बोला नहीं। चुपचाप बाहर निकल आया।

फाटक पर मलखान बेहोश पड़ा था। उसे देखकर रेवंत ने पहचान लिया। क्षण-भर के लिये वह रुक गया। फिर श्यामा से बोला—"श्यामा इस पहरेदार को जीवित छोड़ना उचित नहीं। यह वंशघाती मलखान है!"

"आप बाहर तो चलिए" श्यामा ने रेवंत को ढकेल कर दीर्घा में खड़ा कर दिया। फिर अकेली ही मलखान की टाँग पकड़कर उसे ख़ंदक में घसीट ले गई। जिसके साथ अभी वह मनोविनोद कर रही थी, उसे मारने में उसके हाथ काँप रहे थे।

"वंशघाती!" रेवंत का यह शब्द श्यामा के कानों में गूँज रहा था। उसके हाथ हिले और कटार मलखान के पेट में समा गई। थोड़ी-सी आवाज़ हुई और वह ख़ंदक की गहराई में ही समा कर रह गई। रक्त का फ़ौव्वारा फूट चला। श्यामा ने कटार निकालनी चाही, मगर इतनी समा गई थी कि श्यामा के निकाले न निकली। वह उसे छोड़कर बाहर चली आई।

धड़कते हृदय एवं काँपते पैरों से रेवंत श्यामा के साथ बाहर निकला। आकाश के बादल अब और गहरे हो गए थे। पुरवाई ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। बिजली तड़प-तड़प करचकाचौंध कर रही थी। बादलों की गरज एव विद्युत् की चमक के बीच श्यामा रेवंत को क़िले की खिड़की से बाहर निकालकर गजराज को सौंपती हुई बोली—"अब आगे का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।"

गजराज ने कुछ कहा। मगर श्यामा ने सुना नहीं। उसने एक झटके के साथ खिड़की बंद कर भीतर से ज़ंजीर चढ़ा ली और वापस लौट आई।

गजराज ने रेवंत को चमकती हुई बिजली के प्रकाश में हाथ पकड़कर क़िले से नीचे उतारा। खाईं के छाती-भर पानी को पार किया। और फिर बादलों की गरज, पुरवाई के झोंकों में उसे लेकर वह मेंड़ पर चढ़ने लगा। दोनो के वस्त्र भीग गए थे। शरीर काँप रहे थे। वायु चल रही थी। उसी समय बादलों की घड़घड़ाहट हुई। गजराज खाईं पर चढ़ रहा था। उसका पैर फ़िसल गया। दाहना घुटना रगड़ खाकर रक्त-रंजित हो गया। रेवंत मुँह के बल गिर पड़ा। गजराज ने संपूर्ण शक्ति लगा कर उसे उठाया और बाहर निकलकर मेंड़ पर खड़ा किया। रेवंत के दाँत डोल रहे थे। धीरे से उसने घाड़ा खोला। रेवंत को चढ़ाया। फिर भगवान् को सिर झुकाकर स्वयं उछलकर चढ़ गया। उसके चलते ही पुनः बादलों की गरज के साथ बिजली चमकी और बड़ी-बड़ी बूँदें धरती पर गिर पड़ीं। गजराज रुका नहीं। सई के कछार में पानी बरसता रहा। बादल गरजते रहे। बिजली चमकती रही। और वह रेवंत को छाती से लगाए डलमऊ की ओर बढ़ता रहा।

जब वह कछार की कटीली झाँड़ियों, ख़ंदक़ों और टीलों को पार करके राजपथ पर पहुँचा, तो पानी अपनी पूरी शक्ति से बरस रहा था। वह थोड़ा-सा एक पेड़ की छाया में रुका और आश्वस्त होकर फिर चल पड़ा। डेढ़ प्रहर का रास्ता उसका पानी की बौछारों में ही बीता। बिजली चमक-चमककर उसका पथ-प्रदर्शन करती रही। काँपते हुए रेवंत से पानी की बौछारों में वह बातें कर रहा था। दाँत लड़ रहे थे। शरीर सिहर रहा था, और वह राजपथ के पानी को चीरता हुआ बढ़ रहा था।

सावित्री और कंचुकी दोनो जग रही थीं। पानी की बौछारों में रह-रहकर उनके प्राण सूख रहे थे। सावित्री बार-बार फाटक से अपनी कोठरी का चक्कर लगाती रही। दोनो निराश हो चुकी थीं।

फिर भी उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रही थीं नंदू को पहले से ही साव-धान कर दिया गया था। वह भी आज सतर्कता से इधर-उधर घूम रहा था, किंतु दृष्टि राजपथ पर ही थी। थोड़ी देर में गजराज का घोड़ा रेवंत को लेकर फाटक पर पहुँचा। पानी अब कुछ कम पड़ गया था। नंदू पुलक उठा। उसने इधर-उधर देखकर सावधानी से फाटक खोल दिया। गजराज भीतर प्रवेश करके फाटक पर ही उतर पड़ा। उसने अपने हाथों का सहारा देकर रेवंत को उतारा। घोड़ा नंदू ने पकड़कर फाटक पर बाँध दिया।

बेचैन सावित्री को कुछ आहट मिली। उसने बढ़कर देखा, गजराज ही था। वह दबे-पैरों लौट पड़ी। कंचुकी को ख़बर दी और रेवंत को अपनी कोठरी में लेकर चली गई।

कोठरी में पहुँचकर गजराज ने संतोष की साँस ली। रेवंत को प्रणाम किया और सावित्री से धीरे से कहा—"अब मैं यहाँ अधिक न रुक सकूँगा, जा रहा हूँ।"

"जा रहे हो गजराज!" रानी ने प्रेम के आँसू भरकर कहा—"जाओ, तुम्हारा यह उपकार जीवन-भर न भूलूँगी।" गजराज सिर झुकाए खड़ा रहा। सभी प्रेम-विह्वल थे।

सावित्री ने पुलकित नयनों से एक बार गजराज की ओर देखा। गजराज मुस्किरा उठा, और सबको यथोचित प्रणाम करके चल पड़ा। जब वह घोड़े की पीठ पर बैठ गया, तो उसका मन काफ़ी शांत था। घुटने की पीड़ा अब उभर आई थी, किंतु यहाँ उपचार ही क्या था?

वर्षा से भीगी सड़क पर, गड्ढों एवं फिसलन को बचाता हुआ, गजराज अर्धरात्रि के उत्तरार्ध में रायबरेली पहुँच गया। घोड़ा उसने बस्ती के बाहर छोड़ दिया। फिर उसी रास्ते वह क़िले की खिड़की की ओर बढ़ा। खिड़की बंद थी। पानी बरसने की वजह से खाई में अथाह पानी हो गया था। नदी बढ़ आई थी। गजराज

ने तैर कर खाईं पार की। खिड़की में धक्का दिया। वह खुल गई। गजराज भीतर चला गया।

इधर श्यामा को भी चैन न था। वह बार-बार अपनी कोठरी से खिड़की तक आती और जागती रही तथा खिड़की खोल-खोलकर झाँकती रही। आहट पाकर वह गजराज की कोठरी की ओर बढ़ी। गजराज अब सूखे कपड़े पहन चुका था। श्यामा ने गीले वस्त्रों का पानी निचोड़ा। उन्हें अरगनी पर सूखने के लिये लटका दिया। उसी समय उसकी निगाह गजराज के घुटने पर पड़ी, जो ख़ून से लथपथ था। सूजन भी काफ़ी आ गई थी। उसे देख श्यामा बोली—"यह क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।" गजराज ने कहा—"तब इसमें नक़ली पट्टी बँधी थी और अब असली की ज़रूरत है।" इतना कह वह मुस्कराने लगा। श्यामा ने अपना आँचल फाड़कर घुटने में लपेट दिया। और बोली—"कहीं गिर पड़े थे क्या?"

"हाँ।" गजराज ने कहा—"इसी खंदक़ में।"

"तब तो उसमें चिह्न भी बने होंगे!"

"नहीं।" गजराज ने कहा—"वह पानी में डूब गए। खाईं इतना भर गई है कि मैं तैरकर आया हूँ।"

"गजराज!" श्यामा ने आत्मविभोर होकर पुकारा, और उसके दोनो हाथों को अपनी हथेलियों में भरकर चूम लिया। गजराज ने उसे छाती से लगाकर कहा—"जाओ, अब सो रहो।" किंतु श्यामा उठी नहीं। वह अचानक ही उदास हो गई। धीरे से गजराज से बोली—"एक त्रुटि हो गई है।"

"क्या?" गजराज ने आँखें तरेरकर पूछा।

"करौली उसके पेट में इतना समा गई थी कि मेरी निकाली नहीं निकली, और वहीं रह गई।"

गजराज उसके मुख की ओर थोड़ी देर तक देखता रहा, फिर बोला—"क्या वह तुम्हारी ही थी ?"

"नहीं।" श्यामा ने कहा—"वह किसकी है, मुझे पता नहीं, किंतु कंचुकी रानी से बचपन में मैंने ले ली थी।"

गजराज कुछ बोला नहीं। कोठरी में मौनता छा गई।

खूबचंद के जो सैनिक शाम को घोड़ा ढूँढ़ने गए थे, जब वे गांडीव-प्रदेश तक का दौरा करके रात के पिछले प्रहर में लौटे, तो घोड़ा उन्हें सड़क के किनारे से सई के कछार की ओर जाता दिखाई पड़ा। वे घोड़े को देख प्रसन्न हो गए, और उसे पकड़ने के लिये दौड़ पड़े।

---

[१५]

महाराज बाल की राजनगरी बरेली (रायबरेली) में आज प्रभात क्या हुआ, संपूर्ण क़िले में हाहाकार मच गया। सूर्य की प्रथम किरण के साथ-साथ, जब सुरंग-रक्षक मानमर्दन मलखान को पहरे से अवकाश देने आया, तो वह आश्चर्य-चकित रह गया। न बोला, न डोला, केवल खड़ा-खड़ा स्तंभित नेत्रों से देखता रहा। अचानक यह सब क्या हो गया, उसकी समझ में कुछ भी न आया। सुरंग का फाटक अधखुला पड़ा था। मानमर्दन ने डरते-डरते फाटक के भीतर प्रवेश किया। ख़ंदक़ में मलखान की लाश उसे दिखाई पड़ी। यत्र-तत्र रक्त के छींटे भी पड़े थे। ख़ून की धारा पेट से निकलकर संपूर्ण फ़र्श को गीला कर रही थी। मलखान की छाती में धँसी करौली चमक रही थी। मानमर्दन काँप उठा। वह चुपके से बाहर निकल आया। ख़ंदक़ की भयानकता उसे भयभीत कर रही थी। बाहर निकलकर वह कुछ क्षणों तक खड़ा सोचता रहा। वह आगे बढ़ा। सामने बड़ा-सा घंटा टँगा था। मानमर्दन ने ख़तरे का घंटा बजाकर सबको सजग किया।

घंटे का बजना था कि एक हलकंप-सा मच गया। जो जहाँ, जिस वेश में था, वैसे ही क़िले की ओर भाग चला। देखते-देखते सुरंग के द्वार पर अपार भीड़ लग गई। श्यामा उस समय महाराज की नित्य-क्रिया के उपादान ठीक कर रही थी। घंटा बजते ही उसकी छाती धड़क उठी। बाहर का शोर गुल अंतःपुर तक पहुँचने लगा। रानियों में खलभली मची। महाराज अभी पड़े सो रहे थे। महामंत्री, सेनाध्यक्ष, सरदार, सभी घटना-स्थल पर आ गए। मानमर्दन घंटे के पास यथावत् खड़ा रहा।

श्यामा ने सुभद्रा रानी से महाराज को जगाने के लिये कहा। सुभद्रा ने केशर एवं चंदन के लेप से महाराज को प्लावित किया। श्यामा पंखा डुलाती रही। शीतल मलय-स्पर्श पाकर महाराज के नेत्र खुले। उन्होंने सुभद्रा से पूछा—"क्या है?"

"महाराज!" सुभद्रा हाथ जोड़कर बोली—"कोई भयानक आपत्ति आ गई है। ख़तरे का घंटा बज रहा है। अपार सैनिक दुर्ग में खड़े हैं। महामंत्री एवं सेनाध्यक्ष भी हैं।"

महाराज हकबकाकर उठ बैठे। तत्काल ही बाहर निकल आए।

"महाराज की जय हो!" एकत्र जन-समूह महाराज को देखते ही एक स्वर से बोल उठा।

सुरंग रक्षक मानमर्दन परंपरानुसार महाराज को सुरंग के द्वार की ओर लेकर चला। पीछे-पीछे महामंत्री एवं सेनाध्यक्ष थे। जन-समूह पूर्ववत् खड़ा रहा। सब लोग आगे बढ़े। सुरंग का फाटक अधखुला पड़ा था। महाराज आगे बढ़े। मलखान की लाश पड़ी थी, और राजबंदी रेवंत ग़ायब था।

महाराज का चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने एक बार लाश की ओर देखा, और दूसरी बार मानमर्दन के मुख की ओर।

सेनाध्यक्ष एवं महामंत्रीजी भी आगे बढ़े। सब लोग ध्यान-पूर्वक ख़ंदक एवं सुरंग का निरीक्षण करने लगे।

"महाराज!" मानमर्दन ने कहा—"अभी-अभी जब मैं मलखान को अवकाश देने आया, तो यह सब देखकर दंग रह गया। रात में ही यह सब कुछ हो गया है।"

मानमर्दन की बात, सुनी तो सब लोगों ने ली, मगर किसी ने कुछ उत्तर न दिया। सब लोग ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करते रहे।

मानमर्दन चुप हो गया।

सुरंग के फाटक से लेकर ख़ंदक तक मलखान के घिसलाए जाने

का चिह्न बना हुआ था। उस चिह्न की ओर महाराज ने उँगली उठाते हुए कहा—"ऐसा प्रतीत होता है, फाटक पर ही इसकी हत्या करके इस ख़ंदक़ में छोड़ दिया गया है। देखो न, घसीटने के चिह्न स्पष्ट बने हैं।"

"महाराज!" महामंत्रीजी ने कहा—"यदि फाटक पर हत्या की गई होती, तो वहाँ ख़ून अवश्य पड़ा होता। ऐसा लगता है, पहरेदार की हत्या यहीं और इसी स्थान पर की गई है।"

"महामंत्रीजी!" सेनाध्यक्ष ने कहा—"कथन तो आपका सत्य है, किंतु बिना हत्या किए मलखान को जीते-जी घसीटना कोई साधारण काम नहीं। घसीटने पर कोई शोर-गुल न हो, इतनी शांति रहे कि कोई जान तक न पावे, यह उससे भी अधिक आश्चर्य-जनक है।"

"सेनाध्यक्षजी!" महाराज बोले—"यह पूर्व नियोजित षड्यंत्र-सा प्रतीत होता है। मुझे इस बात का भी संदेह है कि इस षड्यंत्र में हमारे कुछ प्रमुख व्यक्ति सम्मिलित हैं। अन्यथा इतनी सुरक्षित सुरंग के भीतर इतना बड़ा कांड हो जाना कोई साधारण बात नहीं।"

"महाराज!" सेनाध्यक्ष ने कहा—"यह तो स्पष्ट ही है। केवल रेवंत के आदमी ऐसा नहीं कर सकते। यह षड्यंत्र है, और बड़ा भयानक षड्यंत्र है। फिर मलखान की लाश की ओर देखकर कहा—"इसे विष तो नहीं दिया गया?"

"नहीं।" महामंत्रीजी बोले—"इनके चेहरे पर कहीं भी विष के लक्षण नहीं प्रतीत होते। आश्चर्य मलखान की मृत्यु पर नहीं है," महामंत्रीजी ने गंभीर होते हुए कहा—"आश्चर्य केवल इस पर है कि इतना बड़ा कांड हो कैसे गया, और आहट तक न मिली।"

सब लोग लाश के निकट पहुँचे। पेट में गड़ी हुई कटार की ओर

देखकर महाराज ने कहा—"महामंत्रीजी, इस कटार को बाहर तो निकालिए।" महामंत्रीजी ने पूरी शक्ति से कटार खींची, किंतु वह निकल न सकी। सेनाध्यक्ष ने महामंत्री को अलग करके कटार में झटका दिया, और वह प्रथम झटके में ही बाहर निकल आई। रक्त-रंजिता कटार सेनाध्यक्ष ने महाराज की ओर बढ़ा दी। महाराज उसे हाथ में लेकर देखते रहे। ध्यान से देखने के बाद वह गंभीर होकर कुछ सोचने लगे।

सब लोग यथावत् खड़े रहे। मानमर्दन बाहर निकल आया था।

थोड़ी देर तक विचार-मग्न रहने के पश्चात् महाराज बोले—"महामंत्रीजी, विलंब करने से कोई लाभ नहीं। चारो ओर गुप्त-चरों का भेज दीजिए। सैनिकों से भी सहयोग लीजिए। आप लोग भी सतर्कता-पूर्वक पर्यवेक्षण कीजिए। रेवंत अभी यहीं कहीं है। वह अधिक दूर नहीं गया।" इतना कहकर महाराज चल पड़े। कटार उनके हाथ में थी।

सेनाध्यक्ष ने सैनिकों को बुलाकर मलखान की विधिवत् क्रिया-कर्म का आदेश दिया। महामंत्रीजी राजदरबार में चले गए। बाहर खड़े सैनिकों को सूचना दी गई। गुप्तचरों को सचेत किया गया। सब-के-सब रेवंत को ढूँढ़ने चारो ओर चल पड़े। क़िले में भीषण सन्नाटा छाया रहा।

महाराज कटार लेकर अपने कक्ष में ही लेटे-लेटे उदास मुद्रा से उसे देखने लगे। कटार पर उन्हीं का राजचिह्न अंकित था। हाथी-दाँत का सुंदर बेंट लगा हुआ था, जिसमें नीलम जड़ा हुआ था। नीलम के चारो ओर मोतियों को इस प्रकार टाँगा गया था कि नीलम की शोभा शतगुनी बढ़ जाती थी। महाराज कटार लिए-लिए सोचते रहे। स्मृतियाँ उभरती रहीं। अंतस् में तूफ़ान उठते रहे। एक-एक दृश्य आँखों के पर्दे पर झूमता रहा। यह कटार उन्हीं की थी, जो

विशेष रूप से बनवाई गई थी। उस पर हाथी-दाँत की मूठ महाराज ने केवल इसलिये लगवाई थी कि उनकी प्रेयसी कंचुकी को सफ़ेद रंग प्रिय था। हाथी-दाँत के ऊपर सुनहरी गोलाकार उनकी मुहर बनी हुई थी। महाराज ने देखा, अब भी वह हाथी-दाँत के ऊपर सोने के तारों से बनी हुई मुहर चमक रही है। वह सोचने लगे—"एक दिन यही बहुमूल्य कटार उन्होंने कंचुकी को अपने प्रेम की भेंट-स्वरूप प्रदान किया था। आज वही प्रेम की भेंट उन्हीं के पास इस भीषण षड्यंत्र की प्रतीक बनकर वापस आ गई है। हो न हो इस षड्यंत्र में कंचुकी का हाथ है।"

महाराज ने कटार को उलट-पुलटकर फिर देखा। वह वही थी। वह आगे सोचने लगे—"किंतु यह कंचुकी के पास से यहाँ आई कैसे? इसे लाया कौन? क्या षड्यंत्र कारियों के पास अन्य अस्त्र नहीं थे? यही कटार विशेष रूप से क्यों प्रयोग की गई? यह षड्यंत्र कंचुकी के मस्तिष्क की उपज है। उसने अपने को छिपाया नहीं। कटार को प्रतीक बनाकर मेरे पास खुली चुनौती भेजी है। अन्यथा आक्रमणकारी इसे छोड़ न जाता। वह ले भी जा सकता था। इसे छोड़कर जाने का क्या अर्थ है?"

"कुछ नहीं!" महाराज स्वयं बुदबुदाए—"यह कंचुकी का भीषण षड्यंत्र है, और आक्रमणकारी का इस प्रकार कटार छोड़कर जाने का अर्थ है, कंचुकी का मुझे खुली चुनौती देना!" महाराज ने मन-ही-मन सोचकर कहा—"चुनौती!" देखता हूँ, उसकी चुनौती को।" उन्होंने दाँत पीसकर पुकारा—"श्यामा!"

श्यामा की छाती धकधका उठी। वह भयभीत हिरणी की तरह उनके सामने जाकर खड़ी हो गई। महाराज की आँखें आरक्त थीं। चेहरा तमतमाया हुआ था। उन्होंने श्यामा के उभरते वक्ष पर

एक जलती निगाह छोड़ी। श्यामा ने सिर झुका लिया। महाराज ने पूछा—"गजराज है?"

"पता नहीं।" श्यामा ने पलकें ऊपर उठाते हुए धीरे से कहा। उसकी निगाह कटार पर पड़ी। वह सिहर उठी।

"देख!" महाराज बोले—"वह हो, तो उसे अभी और इसी समय बुला ला!" श्यामा गजराज को बुलाने चल पड़ी। आशंका से उसकी छाती धड़कने लगी और साँस फूल उठी।

गजराज अपनी कोठरी में बैठा हुआ पैर की पट्टी खोलकर उसे देख रहा था, कहीं पर घाव तो था नहीं, केवल ऊपर की खाल कट गई थी, जिस पर अब काले-काले दाग़ पड़ गए थे। हाँ, कुछ-कुछ सूजन और बढ़ गई थी तथा हल्का-हल्का दर्द हो रहा था। कोठरी के द्वार खुले थे।

श्यामा की छाती धकधका रही थी। चेहरे पर परेशानी के लक्षण थे। वह गजराज की कोठरी में पहुँचकर चुपचाप खड़ी हो गई। उसे इस प्रकार खड़ी देखकर गजराज ने पूछा—"कहो श्यामा, कैसे आई?"

श्यामा ने उदासी-भरे शब्दों में उत्तर दिया—"तुम्हें महाराज बुला रहे हैं। पता नहीं क्या बात है!"

गजराज के शरीर में कंपन पैदा हो गया। चौंककर बोला—"क्या कहा, महाराज बुला रहे हैं?"

"हाँ," श्यामा ने संक्षिप्त उत्तर दिया। फिर सोचकर बोली—"घटना का पता लगाने के लिये चारो ओर गुप्तचर छोड़े गए हैं। महामंत्री एवं सेनापति को भी आदेश दिया जा चुका है। महाराज अपने कक्ष में बैठे हैं।"

"क्या कर रहे हैं?" गजराज ने पूछा—"कुशल तो है?" और वह श्यामा की ओर देखने लगा।

"कुशल क्या ?" श्यामा धीरे से बोली—"वही कटार हाथ में लिए बैठे हैं, और तुम्हें बुला रहे हैं।" फिर गंभीर मुद्रा में कहने लगी—"मुझे लगता है महाराज को कुछ संदेह हो गया है।"

"ग़लती तो तुमने की ही है।" गजराज बोला—"किंतु क्या उन्हें यह ज्ञात है कि यह करौली तुम्हारी ही है।"

"नहीं।" श्यामा ने कहा—"उन्हें इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। यह कटार उन्होंने कंचुकी को भेंट-स्वरूप दी थी। वह इनसे घृणा करती ही थीं, फल-स्वरूप उसे वह तोड़ने जा रही थीं। तब मैंने छीन लिया था और तब से वह मेरे पास रही।"

"श्यामा !" गजराज बोला—"मुझसे झूठ बोलती हो। अभी रात में क्या बता रही थी कि कंचुकी ने बचपन में मुझे दिया था, और अब कह रही हो मैंने छीन लिया था, और कोई रहस्य हो, तो वह भी बता दो।"

"गजराज !" श्यामा डरती हुई बोली—"कटार की मूँठ पर महाराज का राज्य-चिह्न अंकित है।" इसके अतिरिक्त और कोई रहस्य नहीं है। मुझे क्षमा कर दो, कह नहीं सकती कि रात में तुमसे क्या बता गई हूँ !"

"तब ठीक है।" गजराज आत्मविश्वास से बोला—"उनका संदेह कंचुकी पर ही हो सकता है श्यामा और गजराज पर नहीं। तुम चलो, मैं अभी आया।"

श्यामा के चेहरे पर प्रसन्नता की एक हल्की-सी रेखा उभर आई। वह चल पड़ी। कोठरी से बाहर निकली ही होगी कि गजराज ने पुकारा—"सुनो।"

श्यामा लौट पड़ी। बोली—"बहुत देर हो रही है, शीघ्र ही जो कहना है, कहो।"

"अच्छा, फिर बताऊँगा।" गजराज ने कहा—"तुम चलो, मैं आ रहा हूँ। कपड़े पहन लूँ।"

"बोलो न?" श्यामा ने कहा—"फिर अवसर मिले या न मिले।"

"मिलेगा श्यामा।" गजराज ने हँसकर कहा—"तुम्हारा नाम श्यामा मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें यदि 'श्याम' कहा करूँ, तो?"

"खूब बातें बनाना जानते हो!" श्यामा ने विहँस कर कहा—"कहाँ की बात और कहाँ ले उड़े।"

"अच्छा, तुम चलो। मैं अभी आया।"

श्यामा चली गई। गजराज ने कपड़े बदले, कोठरी का द्वार बंद किया, और वह गुनगुनाता हुआ महाराज के कक्ष की ओर चल पड़ा।

उस समय महाराज कटार के दोनो सिरे दोनो हाथों से पकड़े, उसे अपनी दाढ़ी पर रक्खे हुए सोच रहे थे। गजराज ने अभिवादन किया। महाराज उठकर बैठ गए। उन्होंने गजराज से कहा—"गजराज, बड़ा ग़ज़ब हो गया है। तुम्हें तत्काल ही डलमऊ जाकर रेवंत के भागने की सूचना महाराज को देनी है। और हाँ........।"

"क्या महाराज!" गजराज ने संतोष की साँस लेते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, तुम अपना काम करो।" महाराज ने कटार रखते हुए कहा—"मैं एक पत्र लिखे देता हूँ।"

"महाराज ने पत्र लिखकर गजराज को दे दिया। गजराज बाहर निकल आया। श्यामा द्वार पर खड़ी-खड़ी सब कुछ सुनती रही। अब उसकी छाती के तूफ़ान शीतल पड़ गए थे। चेहरे पर संतोष के चिह्न उभर आए थे। गजराज ने बाहर निकलने पर श्यामा की ओर देखा तक नहीं और वह सीधे चला गया। बाहर निकलकर उसने अश्वशाला से अपना घोड़ा निकलवा और पत्र लेकर डलमऊ की ओर चल पड़ा। क़िले में चतुर्दिक सन्नाटा था। सभी परेशान,

सभी चिंताकुल एवं उदास ! सब की चर्चा का विषय केवल एक ही था और वह यह "कि रेवंत भगा कैसे ?"

गजराज के जाने के पश्चात् महाराज ने कटार एक चौकी पर रख दी, और स्नान करने के तत्काल बाद ही दरबार में चले गए। आज न उनकी भोजन करने की इच्छा हुई न जल-पान। वह दिन-भर दरबार में बैठे हुए महामंत्रीजी से मंत्रणा करते रहे। गुप्तचर आ-आकर सूचनाएँ देते रहे।

साँझ होते ही एक गुप्तचर ने ख़बर दी की इस षड्यंत्र में सेना का हाथ है ?"

"क्या कहा ?" महाराज ने आश्चर्य से पूछा—"सेना का हाथ है ?"

"हाँ, महाराज।" गुप्तचर बोला—"सरदार खूबचंद का घोड़ा—आज तड़के ही कुछ सैनिक उस समय लेकर लौटे हैं, जब पानी बंद हो चुका था। घोड़ा ख़ाली था। हो सकता है, रेवंत को उसी घोड़े से कहीं अज्ञात स्थान पर पहुँचाया गया हो।"

महाराज ने महामंत्री के मुख की ओर देखा और महामंत्री ने महाराज की ओर। तत्पश्चात् वह बोले—"इसका प्रमाण ?"

उसी समय दूसरे गुप्तचर ने आकर इसी समाचार की पुष्टि की, तथा बताया कि मैंने घोड़े की टापें, गीले राजपथ पर बनी हुई, देखी हैं। वही टापें सई के कछार में भी यत्र-तत्र मुझे दिखाई पड़ी हैं, किंतु आगे कछार जलमग्न होने के कारण पता नहीं लग सका कि घोड़ा किधर से आया और कहाँ चला गया। नगर-वासियों से पता लगा कि प्रातः कुछ सैनिक एक घोड़ा लिए हुए दुर्ग की ओर आए हैं। घोड़ा भीगा हुआ था।

"यह कैसे पता लगा कि वह घोड़ा खूबचंद का ही है ?" महाराज ने प्रश्न किया।

"पद-चिह्नों से !" गुप्तचर ने कहा—"अश्वशाला तक अब भी पद-चिह्न बने हुए हैं।"

महाराज ने गुप्तचरों को चले जाने का आदेश दिया। उसके बाद महामंत्रीजी को इसका पता लगाकर प्रभात तक खबर देने को कहकर वह अंतःपुर में चले गए। गुप्तचर पुनः अपने-अपने कार्यों में लग गए। महामंत्रीजी खूबचंद से संबंधित षड्यंत्र का गुप्त रूप से पता लगाने लगे।

एक ओर रायबरेली के दुर्ग में यह सब हो रहा था। दूसरी ओर रेवंत गंगा पार करके अंतर्वेद की ओर चला जा रहा था। शरीर पर वही वस्त्र थे। सिर पर वही पुरानी पगड़ी। शरीर के अंग-अंग कसक रहे थे। पैरों में चलने की शक्ति न थी। रात-भर के जागरण एवं थकान से पलकें अपने आप बंद होती जा रही थीं। फिर भी वह किसी निरापद् स्थान में शरण लेने के लिये आकुलता से बढ़ रहा था। दाढ़ी में बड़े-बड़े बाल उग आए थे। चेहरे की झुर्रियाँ और गहरी हो गई थीं। पैरों में छाले पड़ गए थे। फिर भी वह चल रहा था।

गजराज जब रेवंत को क़िले में छोड़कर चला आया, तो सावित्री ने अपनी कोठरी के द्वार बंदकर लिए। उसने रेवंत के गीले कपड़ों को उतरवाकर उसे सूखे वस्त्र पहनाए। भोजन कराया। आग जलाकर उसके काँपते हाथों एवं पैरों को सेंका। वस्त्रों को आग की आँच में सुखाया। चारपाई बिछाकर रेवंत को विश्राम करने के लिये कहकर वह कंचुकी को बुलाने जा रही थी कि कंचुकी स्वयं ही आ पहुँची। बंद द्वार पर उसने हाथ का धीरे से धक्का दिया। सावित्री ने रुंधे हाथों से द्वार खोलकर कपाट बंदकर लिए। कंचुकी भीतर आकर भीगी आँखों से अपने वृद्ध पिता को देखती रही। कृशकाय एवं जर्जर रेवंत की बूढ़ी आँखों में आँसू छलक आए। कंचुकी उससे

लिपटकर सिसकने लगी। रेवंत उसे छाती से लगाए, उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरता रहा।

सावित्री अश्रु-प्लावित नयनों से पिता-पुत्री का अभूत पूर्व मिलन देखती रही। सोचती और आँसू पोंछती रही। फिर मौनता भंग करती हुई बोली—"छोटी रानी!" इस प्रकार समय बर्बाद करने का अर्थ है अपने आपको फँसाकर बना-बनाया काम बिगाड़ना। कंचुकी ने रेवंत को छोड़ दिया। वह सावित्री की ओर भोलेपन से देखने लगी।

"छोटी रानी!" सावित्री ने कहा—"ख़बर पाते ही चारों ओर गुप्तचर दौड़ेंगे। उनके यहाँ तक पहुँचने के पूर्व ही हमें इन्हें किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना है।"

कंचुकी की आँखें अब भी अविरल अश्रुधार बहा रही थीं। सावित्री की बात सुनकर उसने एक लंबी साँस ली, और आँसू पोंछती हुई वह रेवंत से अलग हो गई। रेवंत की आँखों में ममता के आँसू सूख गए। स्वाभिमान उभार पर आ गया। वह बोला—

"कंचुकी, तू रोती है! भार शिवों की वीर संतान में यह कायरता! बेटी, इस समय तो मैं तुम्हारे पास हूँ, यदि युद्ध-स्थान में काम आ गया होता, तो?"

कंचुकी सिसक उठी। उसने रुँधे कंठ से कहा—"पिताजी!" फिर आँखों से आँसू पोछकर बोली—"आपकी इस दुर्दशा का कारण मैं हूँ।"

"बेटी!" रेवंत ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"दुर्दशा! मेरी कोई दुर्दशा नहीं हुई। इन्होंने जो कुछ किया है, उसका फल इन्हें अपने आप मिलेगा। हाँ, तुम्हें अब अधिक सतर्क रहना है, क्योंकि छोटे राजा की दृष्टि तुम्हारे प्रति अब भी प्रतिशोधात्मक है।" इतना कहकर उन्होंने सावित्री की ओर देखा।

वह वैसी ही जड़वत् बैठी थी। "बेटी !" रेवंत ने सावित्री को संबो-धित करके कहा—"इसके जीवन का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।"

सावित्री ने एक लंबी साँस छोड़कर सिर नीचे की ओर झुका लिया।

रेवंत उठकर खड़ा हो गया। बोला—"यदि मैं अंतर्वेद-प्रदेश में पहुँच जाता, तो मुझे कोई भय न रहता।"

कंचुकी ने सावित्री की ओर देखा। सावित्री की आँखें भर आईं। वह उठकर खड़ी हो गई।

रेवंत ने कंचुकी को छाती से लगाकर कहा—"बेटा ! मेरे स्वाभि-मान की लाज अब तुम्हारे हाथों में है। मर जाना, मिट जाना, बरबाद हो जाना, किंतु छोटे राजा की चुनौती के सम्मुख सिर न झुकाना। वह षड्यंत्र रचेगा। फिर भी मेरा विश्वास है, तुम धर्म से न डिगोगी। बोलो, मैं तुमसे क्या आशा लेकर जाऊँ ?"

"पिताजी !" कंचुकी ने दर्द-भरे कंठ से कहा—"आप विश्वास रक्खें, मैं आपके रक्त को कलंकित न करूँगी।" वह पुनः रेवंत से लिपट गई।

आकाश में बादल अब भी घुड़दौड़ मचाए हुए थे। तारों का कहीं पता न था। रह-रहकर वायु तेज़ हो उठती थी। सावित्री ने धीरे से किंवाड़ खोला। वायु का झोंका लगते ही कोठरी का दीपक तिलमिलाकर बुझ गया। अंधकार में ही वह रेवंत को लेकर बाहर निकली। कंचुकी वहीं खड़ी रही। उसने धीरे से सावित्री से कुछ कहा, और फिर उसके हाथ में एक गोलाकार ताम्र-पत्र कड़ा दिया। सावित्री ने उसे आँचल के छोर में बाँध लिया।

सावित्री रेवंत को लेकर, आहट लेती हुई, धीरे-धीरे फाटक की ओर बढ़ी। वह कभी थोड़ा रुक जाती, चौंक पड़ती, फिर पग

बढ़ाती। इस प्रकार फाटक तक आ पहुँची। नंदू ने फाटक खोलकर धीरे-से पूछा—"कहाँ ले जाओगी?"

"क्या बताऊँ भैया!" सावित्री ने कहा—"जहाँ भगवान् चाहेगा, ले जाऊँगी।"

"मैं भी चलूँ?" नंदू ने कहा—"अकेली डरोगी तो नहीं।"

"नहीं।" सावित्री ने कहा—"तुम्हारा जाना उचित न होगा। पता नहीं, कौन किस समय फाटक पर आ जाय।"

"तो फिर?" नंदू ने प्रश्न किया।

"मैं अकेली ही जा रही हूँ।" सावित्री बोली—"थोड़ा सतर्क रहना।"

"हाँ-हाँ।" नंदू ने सिर हिलाते हुए कहा—"तुम निश्चिंत रहो।"

सावित्री बाहर निकल गई। नंदू ने फाटक बंद कर लिया। वह वहीं ड्योढ़ी पर बैठकर सोचने लगा। आकाश में घटाएँ घुमड़ती रहीं।

सावित्री पहरेदारों की आँख बचाती, धीरे-धीरे रुकती, ठिठकती रूस एवं मेंहदी की झाड़ों से अपने को छिपाती हुई गंगा-तट पर आ पहुँची। गंगा के पानी का प्रवाह तेज़ था। वर्षा-ऋतु होने से धारा भी चौड़ी हो गई थी। फिर भी अभी बाढ़ कम थी। हरहराती लहरें गोलाकार भँवरें बनाती हुई उछलती चली जा रही थीं। तट पर बनी झोपड़ियों में कुछ केवट सोए हुए थे। राज्य की विशेष नौका वहीं पीपल की जड़ में बँधी हुई वायु में डोल रही थी। सावित्री ने चारो ओर बड़े ध्यान से देखकर रेवंत के कान में कुछ कहा। आँचल से खोलकर वह गोलाकार ताम्र-पत्र दे दिया। साथ-ही-साथ कुछ मुद्राएँ भी। रेवंत उसे लेकर झोपड़ी में गया। सावित्री दूर हटकर खड़ी हो गई। रेवंत ने नाविकों को जगाया। वे उठ बैठे, और आँखें मींचने लगे।

रेवंत ने धीरे से राज्य-चिह्न-अंकित ताम्र-पत्र नाविक के हाथ में पकड़ा दिया। वह ताम्र-पत्र देखते ही तत्काल उठकर अपने साथियों-समेत नाव पर आ गया। रेवंत तट पर खड़ा रहा। नाविक ने नौका की रस्सी खोलते हुए कहा—"बैठो दादा! मैं तो महाराज के गुप्तचरों से हार गया। सुबह-शाम, रात-दिन, पता नहीं, क्या खोज किया करते हैं, भला बताइए, यह भी कोई समय है गंगा-पार करने का। किंतु आप लोगों का परिचय-पत्र ही ऐसा है कि क्षण-भर भी रोका नहीं जा सकता।" इतना कहकर उसने नाव खोली।

"चुप रहो बिंदा।" नाविक के दूसरे साथी ने तट पर से ही कहा—"तुम्हें गुप्तचरों का चिह्न देखकर उन्हें पार उतारने से मतलब है या बकझक करने से। पता है महाराज का क्या आदेश है?"

"हाँ, पता है।" बिंदा बोला—"सुबह-शाम, रात-दिन, दोपहर-साँझ, जब भी कोई गुप्तचर आए और राज्य-चिह्न दिखाए, उसे तत्काल ही पार उतारा जाय। यही न?"

"हाँ।" दूसरा नाविक बोला—"इसके अतिरिक्त कुछ और भी है।"

"क्या?" बिंदा ने नाव पानी में ढकेलते हुए पूछा।

"गुप्तचरों से किसी प्रकार की कोई बात न की जाय। समझे!"

"हाँ, हाँ जानता हूँ।" बिंदा ने कहा। अब उसकी नाव घुटने-घुटने पानी में आ चुकी थी। नाव रेवंत को लेकर गंगा की लहरों में उछलती-कूदती उस तट की ओर बढ़ चली। जब नाव बीच धार में पहुँच गई, तो सावित्री ने दोनो हाथ जोड़कर 'गंगा मैया' को सिर झुकाया, और वह दबे पैरों वापस चली आई।

कंचुकी अभी तक सावित्री की कोठरी में बैठी थी। सावित्री को देखकर वह पुलक उठी। बोली—"कहो, सावित्री, क्या हाल रहा?"

"परमात्मा की कृपा है।" सावित्री बोली—"अब वह उस पार पहुँच गए होंगे।" कंचुकी ने संतोष की साँस लेते हुए कहा—"एक त्रुटि हो गई सावित्री!"

"क्या?" सावित्री ने कमरे का दीपक जलाते हुए पूछा।

"कुछ धन न दे दिया!"

"हूँ -" सावित्री बोली—"अब ध्यान आया?" फिर उसने मुस्किराते हुए कहा—"मैंने दे दिया है।"

"सच?" कंचुकी का मुख प्रसन्नता से चमक उठा।

"हाँ!" सावित्री ने कहा—"सच नहीं क्या झूठ! जो स्वर्ण-मुद्राएँ उस दिन आपने मुझे रखने को दी थीं, मैं उन्हें सौंप आई हूँ।"

"बड़ा अच्छा किया तू ने।" कंचुकी बोली—"कुछ दिन तो आराम से काट ही लेंगे। कहती हुई कंचुकी दबे-पैरों अपने कक्ष की ओर चली। सावित्री द्वार बंद करके विश्राम करने लगा।

प्रभात होने में दो घड़ी की देर थी। आकाश के बादल कुछ-कुछ हटने लगे थे, और वायु के झोंके भी धीमे पड़ गए थे। यत्र-तत्र चमकते हुए तारे बादलों से लुका-छिपी करते हुए धरती की ओर देख लेते थे।

---

[१६]

रात-भर की परेशानी, जागरण एवं उलझन से चकनाचूर सलीम सूबेदार साहब और जुम्मन के पास से उठकर अपने कमरे में चला आया। उसे रह-रहकर ज़ुबेदा के ऊपर क्रोध आ रहा था। जिस ज़ुबेदा को रात में उसने 'शराफत की पुतली' समझा था, प्रभात होते ही वह उसे फिर 'सुअर की बच्ची' दिखाई पड़ने लगी। वह रह-रहकर ज़ुबेदा पर दाँत पीस रहा था। रात की एक-एक बात उसके कानों में गूँज रही थी। 'या तो खाना ही खा लो, या मुहब्बत ही कर लो!' बदतमीज़ कहीं की पूछती क्या है? सलीम बुदबुदाया—'मुहब्बत बड़ी है या पेट?" उस बेहया से कौन कहे कि भूखे पेट मुहब्बत भी नहीं होती।

सोचते-सोचते सलीम उठकर खड़ा हो गया। उसने कपड़े पहने। छड़ी हाथ में ली। जाने को तैयार हो गया। कुछ सोचकर फिर बैठ गया, और अपने वस्त्रों को ग़ौर से देखने लगा। छड़ी चारपाई पर रख दी। शेरवानी के बटन खुले थे। उन्हें बंद किया। टोपी ठीक की। ज़ुबेदा के कमरे की ओर निहारा। द्वार बंद था। सलीम ने छड़ी की नोक से द्वार पर एक ठोकर मारते हुए धीरे से कहा—"यह साला रात में नहीं खुला, तो क्या अब दिन-भर बंद ही रहेगा?"

"नहीं जनाब!" ज़ुबेदा ने नाश्ता रखते हुए कहा—"रात और दिन में फ़र्क़ होता है, जो चीज़ रात को बंद रहती है, वह सुबह खुल जाती है।" फिर मुस्किराती हुई बोली—"जैसे कमल का फूल!"

सलीम ने गर्दन घुमाकर पीछे की ओर निहारा। ज़ुबेदा खड़ी कह रही थी—"कमल का फूल रात-भर बंद रहता है, और सुबह खुल जाता है।" बोलिए, कमल का फूल आपको पसंद है ?"

"नहीं।" सलीम ने ग़ुस्से से कहा—"मुझे ये वाहियात बातें अच्छी नहीं लगतीं।"

"फिर आप बेकार दरवाज़ा क्यों तोड़ रहे हैं ?" ज़ुबेदा ने पूछा—"अगर पीटना है, तो मुझे पीटिए, इस बेचारे दरवाज़े ने क्या बिगाड़ा है ?"

"ज़ुबेदा !" सलीम ने झुँझलाते हुए कहा—"यह अपना मज़ाक अपने पास रक्खो, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।"

"तो मेरी भी ज़रूरत न होगी ?" ज़ुबेदा ने थोड़ा कष्ट होते हुए पूछा।

सलीम चुप हो गया।

"बोला न ?" ज़ुबेदा ने प्रश्न किया—"उत्तर देते हो या जाऊँ ? इस नाश्ते की ज़रूरत है या इसकी भी नहीं।"

सलीम मन-ही-मन कुढ़ कर रह गया। बोला नहीं। ज़ुबेदा समझ गई कि वह बेहद नाराज़ है। इस तरह न मानेगा। वह मुलायम पड़ गई। तश्तरी से उसने थोड़ा-सा हलुआ निकालकर सलीम के होठों में लगाते हुए बड़े प्यार से कहा—"लो, खा लो।"

"मैं नहीं खाता !" सलीम ने उसका हाथ झिटकते हुए कहा।

"तुम कितने अच्छे हो !" ज़ुबेदा बोली—"मन होता है, इसी तरह बार-बार हलुआ तुम्हारे होठों से लगाती रहूँ और तुम हटाते रहो। लो फिर !" कहकर उसने हाथ बढ़ा दिया।

सलीम मुस्किरा उठा। उसका मुँह अपने आप फैल गया। ज़ुबेदा ने हलुआ उसके मुँह में भर दिया।

"और ?"

सलीम ने सिर हिलाया।

"लो।" ज़ुबेदा ने उसे दूसरा कौर खिलाते हुए कहा—"मैं इसी तरह खिलाती रहूँ और तुम खाते रहो। बोलो, मज़ा आ रहा है न ?"

"नहीं।" सलीम ने कहा—"न खाने में मज़ा आता है, न पीने में।"

"अच्छा।" ज़ुबेदा बोली—"तो फिर किस तरह मज़ा आता है ? फ़रहाद की तरह जीने में ?"

"नहीं।" सलीम बोला—"फ़रहाद बेचारा ज़िंदा कहाँ रहा ? मैं तो उसकी ज़िंदगी को भी मौत ही समझता हूँ।"

"क्यों ?" ज़ुबेदा ने चंचलता से पूछा।

"इसका जवाब अपने आपसे पूछो !" सलीम ने हलुए का कौर मुख में रखते हुए कहा—"तुम सब-की-सब एक ही क़िस्म की हो। केवल नाम में अंतर है, जैसी शीरीं वैसी ज़ुबेदा !"

"अच्छा जनाब।" ज़ुबेदा ने नख़रे दिखाते हुए कहा—"हम सब एक ही क़िस्म की हैं, और आप ?"

"मैं क्या ?" सलीम बोला—"मैं फ़रहाद नहीं हूँ, जो गली-गली की खाक छानूँ, जा रहा हूँ अपने घर।"

"घर में क्या रक्खा है ?" ज़ुबेदा ने हँसकर कहा—"यहाँ बटेरें हैं, जुम्मन है, गोश्त है, चपातियाँ हैं, वहाँ क्या है ?"

"मैंने कह दिया न ?" सलीम बोला—"बेकार की बातें न करो।"

ज़ुबेदा रूठ गई। तश्तरी उठाकर बोली—"अब आपसे बात न करूँगी।" और वह कमरे के बाहर निकल गई ! सलीम सिहर उठा। धीरे से बोला—"सुनो तो !"

"ज़ुबेदा फिर लौटकर न आई। सलीम बैठा सोचता रहा।

उसे अपनी ग़लती पर दुःख हुआ। उठकर भीतर गया। ज़ुबेदा कहीं दिखाई न पड़ी। उसने राहत से पूछा—"ज़ुबेदा कहाँ गई ?"

"अपने कमरे में होगी !" राहत ने पान लगाते हुए कहा—"लो, पान तो खा लो।"

सलीम पान खाकर बाहर निकल आया। कमरे के भीतर जाने की उसकी हिम्मत न हुई। जब वह अपने कमरे में पहुँचा, तो क्या देखता है कि बीच का दरवाज़ा खुला पड़ा है और ज़ुबेदा खड़ी रो रही है।

सलीम अपने को न रोक सका। वह ज़ुबेदा की ओर बढ़ा। उसके हृदय में झंझावात उठने लगे। वह दो क़दम भी न चल पाया होगा कि सूबेदार साहब ने पुकारा—"सलीम मियाँ ?"

सलीम ने एक बार दुखी एवं मासूम निगाह से ज़ुबेदा की ओर निहारा। वह सिसक रही थी। सलीम का मन भारी हो गया। ज़ुबेदा ने भीगी पलकों से सलीम की ओर देखा और द्वार बंद कर लिया। सलीम बाहर चला आया। ज़ुबेदा की सिसकियाँ अब भी उसके कानों में गूँज रही थीं।

"सलीम साहब !" सूबेदार साहब ने कहा—"ज़रा देखिए तो, ये घुड़सवार कहाँ जा रहे हैं ?" मेरे ख़याल से तो ये.......। सूबेदार साहब कुछ सोचकर बोले—"आपकी ही फ़ौज के मालूम होते हैं ?"

"हाँ।" सलीम ने ध्यान से देखते हुए कहा—"शायद शातिर है।"

सब लोग आते हुए घुड़सवारों को खड़े होकर एकटक देखने लगे। थोड़ी देर में शातिर अपने घुड़सवारों-सहित सूबेदार साहब के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सूबेदार साहब उसका स्वागत करने को आगे बढ़े। सलीम जैसे-का-तैसा खड़ा रहा।

"सलीम !" शातिर ने घोड़े से उतरते हुए कड़ककर कहा— "शाह शर्की की पीठ में छुरा भोंककर तुम यहाँ छिपे हो !"

सलीम की समझ में कुछ भी न आया। यों वह जानता था कि शातिर उसका प्रतिद्वंद्वी है, किंतु वह प्रतिद्वंद्विता सलमा के पीछे थी। शाह शर्की की पीठ में छुरा भोंकने-जैसी कोई बात तो थी नहीं। सलीम सोच ही रहा था कि शातिर ने एक घुड़सवार को इशारा करते हुए कहा—"नाज़िम, इसे पकड़ लो !"

नाज़िम ने सलीम को पकड़ लिया। शातिर ने डपटकर कहा—"यह ग़द्दार है, ग़द्दार ! इसके हाथ-पैर बाँधकर घोड़े पर लाद लो।"

नाज़िम ने वैसा ही किया। सलीम ने थोड़ा-बहुत प्रतिरोध किया, किंतु वह विवश था। शाही सेना के सामने ख़ाली हाथ सलीम कुछ भी न कर सका, और वह बंदी बना लिया गया।

"और जनाब आप !" शातिर ने सूबेदार साहब की ओर देखकर कहा—"आप इन ग़द्दारों को पनाह देकर अपने घर में कुचक्र रचा करते हैं !" शातिर के मुख से इतना सुनते ही सूबेदार साहब की रूह फ़ना हो गई। साँस घुटने लगी, और उन्हें चक्कर-सा आने लगा। वह लड़खड़ाते हुए विनम्र स्वर में बोले—"मेरा कोई क़सूर नहीं है।"

"चुप !" शातिर ने तड़पकर कहा—"बेहया कहीं का ! तुम्हीं सबने जाल-फ़ौरेब रच-रचकर बाबर सैयद का मुँह काला कर दिया। और, यह सलीम।" सलीम की ओर क्रोध से उसने देखते हुए कहा—"चिट्ठियाँ लिख-लिखकर राजा डल को बुलाता रहा। यह नहीं समझता था कि सलमा की इज़्ज़त पर दाग़ लगने से वह अछूता न रहेगा। यह राज़ किसी-न-किसी दिन खुलकर ही रहेगा।"

"शातिर !" सलीम ने आवेश में कुछ कहना चाहा। वस्तु-स्थिति उसकी समझ में आ गई थी।

"चुप !" शातिर ने क्रोध से फटकारते हुए कहा—"पाजी कहीं का, सोचा होगा कि यह भेद न खुलेगा। नमकहराम ! जिसका नमक खा रहा है, उसी की पीठ में कटार घुसेड़ता है।" कहता हुआ शातिर क्रोध से सलीम की ओर देखने लगा। दूसरे सिपाही ने सूबेदार साहब को बाँधकर घोड़े पर लाद लिया।

जुम्मन घर की तरफ़ भागा।

"यह कौन है ?" शातिर ने पूछा।

"मेरा नौकर।" सूबेदार साहब बोले। उनकी घिग्घी बँध गई थी।

जुम्मन ने घर में जाकर राहत एवं ज़ुबेदा से सब कुछ बताया। वे दोनो झपटकर दरवाज़े पर आईं। इधर शातिर सलीम एवं सूबेदार साहब को बाँधकर चल पड़ा। ज़ुबेदा ने झाँककर देखा, सलीम और उसके पिता के हाथ-पैर बँधे हैं। उन्हें घोड़े पर लादे सिपाही चले जा रहे हैं। वह चीख़ पड़ी। शातिर चौंक उठा। उसकी निगाह ज़ुबेदा पर पड़ी। उसका सौंदर्य देख वह सिहर उठा।

"सलीम मियाँ इसी के चक्कर में थे।" शातिर ने मन-ही-मन में कहा। उसका घोड़ा आगे बढ़ा। ज़ुबेदा और राहत चीख़ती-चिल्लाती रहीं। शातिर ने एक बार पुनः ज़ुबेदा की ओर देखकर मुँह फेर लिया। जुम्मन बाहर नहीं निकला। आँगन में ही सिर पर दोनो हाथ रक्खे बैठा रहा।

सलीम के विषय में शातिर ने सूबेदार साहब से पहले ही बता दिया था कि सलमा के कांड में उसका गुप्त हाथ है। उधर सलीम के लगातार ग़ायब रहने पर उनका विश्वास पक्का हो गया कि यह सब सलीम की ही बदमाशी है। धीरे-धीरे यह समाचार सलमा तक पहुँच गया। यद्यपि उसे इन बातों पर विश्वास

नहीं हुआ, फिर भी उसका मन आशंका से भर गया था। वह सोचती रही—"हो न हो सलीम का हाथ अवश्य है। उसका उस दिन मेरे साथ किनारे तक न जाना तथा घटना के बाद से आज तक दिखाई न पड़ना क्या अर्थ रखता है?"

शातिर अपने कुचक्र में सफल हुआ। उसने इस बात का ख़ूब विज्ञापन कर दिया कि यह संपूर्ण घटना सलीम की ही बदमाशी से हुई है। फल-स्वरूप गुप्त मंत्रणा हुई। उसमें यह निश्चय हुआ कि इस षड्यंत्र का संचालन कड़े के तथाकथित सूबेदार साहब के घर से होता है। हो सकता है, अब ये लोग कोई नया गुल खिला दें, अतः इन्हें बंदी बना लेना ही उचित है। इसी मंत्रणा के प्रतिफल के रूप में शातिर सलीम एवं सूबेदार साहब को बंदी बनाकर ले गया।

जब शातिर सलीम को लेकर क़िले में पहुँचा, तो चारो ओर से सलीम पर व्यंग्यमयी बौछारें हुईं। कोई उसे ग़द्दार बताता, तो कोई विश्वासघातक! दोनो को सैयद साहब के सामने पेश किया गया। सैयद साहब ऐसे ही हृदय में ज्वालामुखी छिपाए बैठे थे। उन्होंने क्रोध से एक बार सलीम की ओर देखा, और फिर उसे बंदी-गृह में ले जाने का आदेश दिया। सूबेदार ने सैयद साहब से कुछ कहना चाहा, मगर उनका निवेदन अस्वीकार कर दिया गया। दोनो को बंदी-गृह में अलग-अलग बंद कर दिया गया, और कड़ा पहरा लगा दिया गया। शातिर अब प्रसन्न था।

राजा डल का भेजा हुआ पत्र सैयद साहब के पास पहुँचा। उस समय वह दरबार में बैठे थे। घुड़सवार पत्रवाहक ने पत्र देते हुए कहा—"सूबेदार साहब, इस पत्र का उत्तर आज ही अपेक्षित है।"

सूबेदार बाबर सैयद ने पत्र हाथ में ले लिया। घुड़सवार बाहर निकल गया। पत्र पर राजा डल की मुहर देख सूबेदार साहब चौंक पड़े। काँपते हाथों उन्होंने पत्र खोला। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी

आँखें लाल हो गईं। मुख-मंडल तमतमा उठा। शरीर काँपने लगा—"काफ़िर कहीं का!" वह अपने आप बकने लगे।

"सलमा का डोला दे दूँ या युद्ध की चुनौती स्वीकार करूँ?"

कुछ सोचकर उन्होंने कहा—"लड़की का डोल दूँगा उस काफ़िर को! मुझे युद्ध की चुनौती स्वीकार है।"

उन्होंने आवेश में अपने हाथ से पत्रोत्तर लिखना प्रारंभ किया। एक पंक्ति भी न लिख पाए होंगे कि शातिर ने कक्ष में प्रवेश करते हुए पूछा—"सूबेदार साहब, यह घुड़सवार कौन है?"

"शातिर!" सूबेदार साहब बोले—"यह राजा डल का क़ासिद है। ख़त लेकर आया है।"

"कैसा ख़त?" शातिर ने बैठते हुए पूछा।

सूबेदार साहब ने पत्र शातिर की ओर बढ़ा दिया। शातिर ने पूरा पत्र पढ़ लेने के बाद सूबेदार साहब से पूछा—"तो क्या आप इसका जवाब लिख रहे हैं?"

"हाँ।" सूबेदार साहब बोले—"मुझे युद्ध की चुनौती स्वीकार है। बदमाश कहीं का, सलमा का डोला माँगता है! उसकी इतनी हिम्मत!"

"मेरी एक राय है।" शातिर ने कहा—"यदि आप मुनासिब समझें, तो।"

"क्या?" सूबेदार साहब ने कुछ सोचकर पूछा।

"इस ख़त के जवाब में लिख दीजिए कि निश्चित उत्तर कुछ दिनों के बाद आपके पास भेज दूँगा, और इस घुड़सवार को वापस कर दीजिए।"

"इसके बाद क्या।" शातिर कुछ सोचकर बोला—"जल्दबाज़ी करने की कोई ज़रूरत नहीं। बाद में सलाह करके सही जवाब लिख दिया जायगा। इस तरह बिना तैयारी के युद्ध की चुनौती

स्वीकार कर लेने से काम न चलेगा। अगर उसने कल आपके ऊपर चढ़ाई कर दी, तब?"

"लड़ मरूँगा!" सैयद साहब आवेश में बोले—"मगर सलमा का डोला देकर ख़ानदान में दाग़ न लगाऊँगा।"

"ठीक है।" शातिर बोला—"आपके अकेले लड़ मरने से सवाल नहीं हल हो जाता। अगर दो-चार जानें क़ुर्बान कर देने से यह हल हो जाय, तो सबसे पहले शातिर हाज़िर है। नीति से काम लीजिए। थोड़े-से सैनिकों को क़त्ल कराकर क़िले को मक़बरा बनाने से अच्छा है युद्ध की तैयारी कर ली जाय।"

"लेकिन उसके लिये समय चाहिए।" सैयद साहब बोले—"और अब समय है नहीं।"

"समय है।" शातिर आत्मविश्वास से बोला—"यदि नहीं है, तो निकाला जायगा।"

"कैसे?"

"यही तो मैं कहता हूँ।" शातिर ने कहा—"उन्हें नम्रता के साथ जवाब दे दीजिए। आग न उगलिए। गरम लोहे को ठंडा लोहा ही काटता है।"

सैयद साहब कुछ शीतल पड़ गए। उन्होंने शातिर से पूछा—"फिर क्या होगा?"

"इसी बारे में बातें करनी हैं।" शातिर ने उत्तर दिया—"इसे वापस कर दीजिए, तब शाम को इतमीनान से बातें होंगी।"

सूबेदार साहब ने शातिर के परामर्श के अनुसार राजा डल्ल को, बड़ी नम्रता से, पत्रोत्तर लिख दिया, तथा उसे पत्र-वाहक को सौंपकर स्वयं ज़नानख़ाने में चले गए। आज न तो उनके चेहरे पर रौनक़ थी, और न दिल में उमंग ही। वह उदास, चिंतित एवं खिन्न-मुद्रा में अपने कक्ष में पड़े-पड़े सोचते रहे। सदरुन खाना तैयार

किए बैठी थी। सलमा दीपक जलाकर क़ुरान-शरीफ़ पढ़ रही थी।

काफ़ी रात बीत जाने पर जब सैयद साहब के कक्ष से मदिरा की गंध न आई, क़िले में तंबाकू की सुगंधि न फैली, तो बेगम साहबा धीरे-धीरे उनके कक्ष की ओर चलीं। सैयद साहब पलँग पर लेटे हुए थे। उनकी आँखें छत की ओर थीं। दाहने हाथ की तर्जनी ओठों पर थी, और वह पड़े-पड़े सोच रहे थे। बेगम साहबा के आने की उन्हें आहट तक न मिली।

"आज खाना न खाइएगा क्या ?" बेगम साहबा ने सैयद साहब से कहा, और फिर उनके चेहरे की ओर दृष्टिपात करके पूछा—"अरे ! आप इतना उदास क्यों हैं ?"

"आओ, बैठो।" सैयद साहब ने गंभीरता से कहा—"उदास तो नहीं हूँ, फिर भी बात कुछ ऐसी ही है।"

"ख़ैरियत तो ?" बेगम साहबा ने बैठते हुए प्रश्न किया—"सलीम को क्यों बंद करवा दिया ?"

"सलीम जाय भाड़ में !" सूबेदार साहब ने कहा—"उसी की बदौलत तो यह सब हो रहा है !"

"क्या हुआ ?" बेगम साहबा ने जिज्ञासा से पूछा।

"या तो राजा डल से लड़ूँ, या सलमा का डोला डलमऊ भेज दूँ।"

"आयँ !" बेगम साहबा के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई, बोलीं—"आप यह क्या कह रहे हैं ?"

"ठीक कह रहा हूँ।" सूबेदार साहब बोले—"आज ही राजा डल का ख़त आया है।" उन्होंने पत्र बेगम की ओर बढ़ा दिया। वह पढ़ने लगीं।

सलमा ने क़ुरान-शरीफ़ पढ़ना बंद कर दिया था, और अपने कक्ष में जाने की तैयारी कर रही थी। उसके कानों में सूबेदार

साहब के कुछ शब्द पड़ चुके थे, और वह घटना-क्रम से परिचित होने के लिये विह्वल हो उठी थी।

बेगम साहबा अभी पूरा पत्र पढ़ भी न पाई थीं कि सदरुन ने बताया—"शातिर मियाँ बाहर खड़े हैं।"

"यहीं बुला ला।" सैयद साहब ने सदरुन से कहा।

सदरुन शातिर को लेकर अंदर चली आई। सलमा उस समय अपने कक्ष की ओर जा रही थी। शातिर उसे तिरछी निगाहों से देखकर मुस्किराता हुआ सूबेदार साहब के पास चला गया।

"आओ शातिर!" सूबेदार साहब बोले—"मौक़े से आ गए, यहीं बातें हो जायँ।"

"जी हाँ!" शातिर ने बैठते हुए कहा—"यही सोचकर मैं भी आया हूँ कि जहाँ इस काम में जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं, वहाँ देर करना भी ठीक नहीं।"

बेगम साहबा ख़त पढ़ चुकी थीं। उन्होंने एक ठंडी साँस भरते हुए कहा—"इसका जवाब दे दिया?"

"हाँ।" सूबेदार साहब ने कहा।

"क्या दिया?"

"लड़ाई की चुनौती मुझे स्वीकार है।"

"या अल्लाह!" बेगम साहबा ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"गए थे नमाज़ छुड़ाने, रोज़ा गले पड़ा। ईद क्या मनाने आए, जान पर आफ़त आ गई।" इतना कह वह उठ खड़ी हुईं। उन्हें जाते देख शातिर ने कहा—"कहाँ चलीं चाची! थोड़ा रुको तो।"

बेगम साहबा बैठ गईं। शातिर बताने लगा—"ख़त के जवाब में लिख दिया गया है—'हमें तीन-चार दिनों का मौक़ा दिया जाय, हम तभी सही उत्तर दे सकेंगे।' अब इसके बाद क्या करना है, यह आज ही निश्चय हो जाना चाहिए, क्योंकि अभी शाह शर्की

को भी ख़बर देनी है, तैयारी करनी है। इतनी जल्दी तो सब हो नहीं सकता। इधर शाह साहब की भी राय है कि डलमऊ के क़िले को तब तक जीता नहीं जा सकता, जब तक क़िले का भेद मालूम न हो जाय। राजा डल को हराना कोई मज़ाक़ नहीं। हमें इसका बदला पूरी तैयारी से लेना है, तभी उसका मुहब्बत का नशा उतरेगा। मगर इसके लिये तैयारी की आवश्यकता है, और इतनी जल्दी तैयारी हो नहीं सकती।"

"तो फिर?" बेगम साहबा ने पूछा।

"उसे धोखे में क्यों न रक्खा जाय?" शातिर ने सूबेदार साहब की ओर देखकर कहा—"वह सलमा को पाने के लिये बेचैन है, उसे बड़ी आसानी से धोखा दिया जा सकता है।"

"कैसे?"

"सलमा की तरफ़ से एक ख़त उसके पास पहुँचा दिया जाय कि मैं आपसे मुहब्बत करती हूँ। यह ख़त बिलकुल उसी तरह का हो, जिस तरह एक माशूक़ा अपने आशिक़ को लिखती है। मुझे यक़ीन है, सलमा का ख़त पाकर उसका जोश ठंडा पड़ जायगा। उससे ख़त का जवाब भी माँगिए। सलमा के प्रेम-पत्र का यदि उसने जवाब भी दे दिया, तब तो काम बन जायगा। उधर ख़तों का सिलसिला जारी रहेगा, और इधर हम अपनी तैयारी भी करते रहेंगे।"

"यह ख़त लेकर जायगा कौन?" सूबेदार साहब ने प्रश्न किया।

"यह काम किसी ऐसी लड़की से कराया जाय, जो क़िले के भीतर तक पहुँच सकती हो। ऐसी हालत में ही क़िले का भेद हमें मिल सकेगा।"

"यह बात मेरी में समझ आ नहीं रही है।" सूबेदार साहब ने कहा—"राजा डल इतना मूर्ख नहीं है कि वह एक अनजान लड़की पर विश्वास करके क़िले के भीतर घुसने की इजाज़त दे देगा।"

"आप नहीं समझे।" शातिर बोला—"अगर राजा डल को विश्वास हो जाय कि इस ख़त को सलमा ने उसके पास चोरी से भेजा है, और कोई इसके बारे में कुछ नहीं जानता, तो सब कुछ हो सकता है। धीरे-धीरे राजा डल का उस लड़की पर विश्वास हो जायगा, और वह उसी विश्वास का फ़ायदा उठाकर ख़ुफ़ियागीरी कर सकती है।"

"शातिर!" बेगम साहबा ने कहा—"किस लड़की की जान फ़ालतू है, जो वहाँ जायगी!"

"चाची!" शातिर ने कहा—"जिसे अपनी क़ौम से मुहब्बत होगी, वह जायगी, जिसे शाह शर्क़ी के प्रति वफ़ादारी होगी, वह जायगी, जिसे इस्लाम के प्रति दर्द होगा, वह जायगी। एक नहीं, हज़ारों लड़कियाँ ऐसी मौजूद हैं, जो बुर्क़े में उसी तरह लिपटी रहती हैं, जिस तरह बादलों में चाँद, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर वे क़हर ढा सकती हैं।"

"तो यह काम तुम्हारे ऊपर रहा।" सैयद साहब बोले—"किसी होशियार लड़की को तलाश करो। उसे मैं मुँह-माँगा इनाम दूँगा।"

"मगर एक बात है!" शातिर ने कहा—"क्या सलमा इसके लिये तैयार हो जायगी कि वह अपने हाथों से ख़त लिख दे।"

"नहीं।" बेगम साहबा बोलीं—"वह नहीं तैयार होगी और न उसके तैयार होने की ज़रूरत ही है।"

"क्यों?" शातिर ने पूछा—"फिर कैसे ख़त लिखा जायगा? ख़त तो वही लिख सकता है, जिसे उस दिन की एक-एक बात मालूम हो।"

"मुझे मालूम है!" बेगम साहबा बोलीं—"यह काम मेरे ऊपर छोड़ दो। ख़त मैं लिखूँगी, सलमा को इसके बारे में बताना उचित नहीं है।"

सलमा ने अपने कक्ष से बातें सुनने की बहुत-सी कोशिशें कीं, मगर वह पूर्णरूपेण सफल न रही। रात क़ाफी हो गई थी। सूबेदार साहब और बेगम यथास्थान बैठे रहे। शातिर अपने शिविर में चला आया। थोड़ी देर तक कक्ष में सन्नाटा रहा, फिर बेगम साहबा ने पुकारा—"सदरुन !"

सदरुन रसोई-घर में ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। उसे रह-रहकर हुसैन की याद आ रही थी जब वह यहाँ रहता था, तो कितनी रौनक़ रहती थी। अब तो ऐसा लगता है, मानो चारो ओर मनहूसियत छा गई हो। उसकी एक-एक अदा, मुस्कान, बातें, सभी कुछ सदरुन को सोचने के लिये विवश कर रही थी। सोचते-सोचते वह रसोई-घर में ही सो गई। बेगम साहबा की आवाज़ सुनकर वह हड़बड़ाकर उठ बैठी, धीरे से कक्ष के द्वार पर जाकर बोली—"खाना लाऊँ ?"

"हाँ।" सूबेदार साहब ने कहा।

बेगम साहबा उठकर खड़ी हो गईं। सुराही से मदिरा ढाल-ढालकर वह सैयद साहब को पिलाने लगीं। सदरुन खाना रखकर वापस चली गई। सैयद साहब का मन अब काफ़ी शांत था। मदिरा के नशे में उनकी परेशानी दूर हो गई थी। उन्होंने सदरुन से पूछा—"सलमा क्या कर रही है ?"

"सो रही है।" सदरुन ने धीरे से जवाब दिया।

"खाना खा चुकी या नहीं ?"

"खा चुकी हैं।" कहकर सदरुन रसोई-घर में चली गई।

सलमा ने यह सब कुछ सुना, किंतु वह बोली नहीं। पड़ी-पड़ी सोचती और अंदाज़ भिड़ाती रही कि आज क्या-क्या बातें हुई हैं, मगर वह सोच कुछ भी न पाई। केवल पड़ी रही, और सोचते-सोचते सो गई।

---

[१७]

कीचड़ से सनी सड़क पर जब गजराज मस्ती से डलमऊ की ओर चला जा रहा था, उस समय रात का एक-एक दृश्य उसकी आँखों में झूम रहा था। इसी पेड़ की छाया में, पानी की बौछारों के बीच, वह रेवंत को लेकर कुछ क्षण रुका था। इसी स्थान पर घोड़े का पैर फिसला था। यहीं गड्ढा मिला था। यहीं से ही रेवंत ने बातें करनी प्रारंभ की थीं। यहाँ से पानी कुछ धीमा पड़ गया था। सोचता हुआ गजराज डलमऊ के क़िले के द्वार पर आ पहुँचा। नंदू ने मुस्किराते हुए द्वार खोल दिया। गजराज ने घोड़े से उतरकर पूछा—"कहो नंदू, सब कुशल है?"

"हाँ, गजराज!" नंदू ने कहा—"सब ठीक है, अपनी कहो।"

"सब ठीक ही है।" कहते हुए गजराज ने धीरे से पूछा—"रेवंत का क्या हुआ?"

"मैं कुछ नहीं जानता।" नंदू ने उत्तर दिया—"सावित्री उन्हें रात में ही लेकर गई है। कह नहीं सकता, कहाँ छोड़ आई।"

गजराज ने संतोष की साँस लेते हुए कहा—"वह लौटी या नहीं?"

"लौट आई है।" नंदू बोला—"थोड़ी देर बाद ही वह लौट आई थी।"

"अच्छा!" गजराज ने हँसते हुए कहा—"मैं चलूँ, महाराज को एक आवश्यक पत्र देना है। भोजन का प्रबंध अपने ही यहाँ करना।"

"यह भी कोई कहने की बात है!" नंदू बोला—"सावित्री बिटिया

को ऐसे ही आधी रात तक अवकाश नहीं मिल पाता। मैं न करूँगा, तो क्या भूखे रहोगे।" फिर कुछ सोचकर पूछा—"रात में तो रहोगे न ?"

"कुछ कह नहीं सकता।" गजराज ने उत्तर दिया—"जैसा आदेश मिले। हो सकता है, अभी वापस जाना पड़े।" कहता हुआ वह आगे बढ़ा।

नंदू फाटक बंद करके सतर्कता-पूर्वक खड़ा हो गया।

महाराज अपने दरबार में बैठे थे। पार्श्व में ही महामंत्रीजी एक नक़्शा खोले उन्हें समझा रहे थे कि दुर्ग के इतने भाग की शरणार्थियों द्वारा मरम्मत हो चुकी है। इतना भाग अभी शेष है। इसके बाद राजपथ पर कार्य लगेगा। गंगा के तट को सँकरी गली को चौड़ा करके उसे भी राजपथ से मिलाना है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर सेनाएँ सरलता से गंगा-तट तक जा सकें।

महाराज ने मानचित्र को देखते हुए कहा—"ठीक है, किंतु इतना ध्यान रहे कि यह गंगा-तटवाली गली, जिसे चौड़ी किया जा रहा है, क़िले की पूर्वी सीमा को स्पर्श करती हुई राजद्वार तक आवे। और, इसके सामने पत्थरों के तीन बुर्ज बनवा दिए जायँ। पहला दुर्ग के द्वार पर, दूसरा मध्य में एवं तीसरा गंगा-तट पर। इनमें तोपें रक्खी रहेंगी, जो आवश्यकता पड़ने पर दुर्ग की रक्षा करेंगी।"

"जैसी आज्ञा!" महामंत्रीजी ने कहा—"यह कार्य तो राजपथ बन जाने के बाद ही होगा ?"

"हाँ।" महाराज बोले—"बाद में ही सही, किंतु इसे होना आवश्यक है।"

थोड़ी देर तक दरबार में सन्नाटा रहा। महाराज कुछ सोचते रहे। फिर विहँसकर महामंत्रीजी से बोले—"बाबर सैयद का कोई उत्तर आया ?"

"नहीं महाराज।" महामंत्रीजी ने कहा—"अभी तक तो कोई उत्तर नहीं मिला, पत्र-वाहक भी नहीं लौटा।"

"अब तक तो उसे लौट आना चाहिए।" महाराज ने कहा—"दो-एक गुप्तचरों को भेजिए, पता लगावें, क्या बात है।"

महामंत्रीजी उठकर दरबार से बाहर आए। जैसे ही वह बाहर पहुँचे, गजराज ने उन्हें झुककर अभिवादन किया। महामंत्रीजी विहँस उठे। अभिवादन का उत्तर देते हुए बोले—"कहो गजराज, कैसे आए?"

गजराज ने उत्तर में पत्र निकालकर महामंत्रीजी को दे दिया। उन्होंने उसे उलट-पुलटकर देखा, और उसे लेकर भीतर चले गए। गजराज खड़ा रहा।

"छोटे राजा का पत्र है, गजराज लाया है।" महामंत्रीजी ने महाराज से कहा।

महाराज ने पत्र ले लिया। खोलकर पढ़ना आरंभ किया। महामंत्रीजी बैठ गए। पत्र समाप्त करके महाराज ने गंभीरता से कहा—"बड़ा ग़ज़ब हो गया!"

"क्या महाराज!"

"रेवंत बंदी-गृह से निकल गया।"

"कैसे?"

"वह सुरंगवाले ख़ंदक़ में था।" महाराज बोले—"पहरेदार मार डाला गया। फाटक का ताला तोड़ दिया गया। रेवंत निकल गया, और किसी को आहट तक न मिली!"

"यह असंभव है!" महामंत्रीजी ने कहा—"इतनी सुरक्षित सुरंग से रेवंत के निकलने की बात समझ में नहीं आती।"

"हाँ।" महाराज ने कहा—"मुझे भी इस पर आश्चर्य है। बाल ने लिखा है, संभवतः क़िले के ही कुछ व्यक्ति मिले हुए थे।

उन्हीं का यह षड्यंत्र है। फिर कुछ सोचते हुए वह धीरे से बोले—"इन षड्यंत्रकारियों का नेतृत्व छोटी रानी कर रही हैं।"

"छोटी रानी?" महामंत्रीजी चौंक उठे—"सुभद्रा?"

"नहीं।" महाराज ने कहा—"सुभद्रा नहीं, कंचुकी। उसकी कटार वहाँ पर मिली है। उसी कटार से संरक्षक मारा गया है।"

"आश्चर्य! महान् आश्चर्य!!" महामंत्रीजी ने कहा—"छोटी रानी ने यह क्या जाल फैला रक्खा है! मुझे इसे पर विश्वास नहीं!"

"नहीं।" महाराज बोले—"बात सत्य है। छोटे राजा कभी झूठ नहीं कह सकते। हो सकता है, हमारे क़िले के भी लोग उस षड्यंत्र में शामिल हों, तथा छोटी रानी ने अपने बाप को छुड़ाने के लिये यह सब किया हो।"

"तब तो अनर्थ हो गया महाराज!" महामंत्रीजी ने कहा—"बाहर के षड्यंत्रकारियों से तो निपटा जा सकता है, किंतु घरवालों से नहीं।"

"यह सारी शरारत कंचुकी की है।" महाराज बोले—"बाज ने कई बार मुझे सतर्क किया था, किंतु मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया। महामंत्रीजी, अब उससे मैं निपटूँगा।"

"महाराज!" महामंत्रीजी ने कहा—"तब तो सतर्कता की आवश्यकता है, अन्यथा दुर्ग की हानि होने की संभावना है। हो सकता है, वह रेवंत की पुनर्प्रतिष्ठा में लगी हों।"

"हाँ", महाराज बोले—"वह रेवंत को अब सामंत नहीं, राजा के रूप में देखना चाहती है। आपको पता नहीं, कंचुकी में अपने बाप के सभी गुण विद्यमान हैं। यदि समय के पूर्व कोई क़दम न उठाया गया, तो अहित की संभावना है।"

"तब तो इसका प्रबंध अविलंब होना चाहिए।" महामंत्रीजी ने

कहा—"हो सकता है, रेवंत उधर से आक्रमण करे, और षड्यंत्र-कारी दुर्ग में विस्फोट कर दें !"

"यही योजना है।" महाराज बोले—"रेवंतका भागना ही इस बात का संकेत है कि बहुत बड़ा षड्यंत्र रचा जा चुका है।" इतना कहकर वह चुप हो गए।

गजराज द्वार पर खड़ा हुआ अब तक आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। महाराज ने प्रतिहारी को बुलाकर कहा—"जाकर गजराज से कह दो कि वह प्रातःकाल पत्र लेकर जायगा।"

प्रतिहारी चला गया।

"महामंत्रीजी !" महाराज ने कहा—"आप चारों ओर रेवंत की ख़बर लगाने के लिये गुप्तचर भेज दीजिए।" कहते हुए महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने कक्ष में पहुँच सावित्री को पुकारा। सावित्री मधु-कक्ष के सुरा-चषकों को साफ़ करके उन्हें सुवासित कर रही थी। महाराज की आवाज़ सुनकर कक्ष में आ पहुँची।

"सावित्री !" महाराज ने रोष-पूर्ण मुद्रा में कहा—"कंचुकी क्या कर रही है ?"

"पूजा कर अपने कक्ष की ओर गई हैं।" सावित्री ने धीरे से कहा।

"पूजा ?" महाराज ने दुहराया—"ऊपर से पूजा करती है, भीतर से षड्यंत्र !" सावित्री काँप उठी। वह पलकें झुका धरती की ओर देखने लगी।

"उस पुजारिन को यहाँ बुला ला।" महाराज ने व्यंग्य से कहा—"पूजा-पाठ के लिये हृदय पवित्र होना चाहिए।"

सावित्री दबे पैरों चल पड़ी। उसका मन आशंका से भर गया था। कंचुकी जल-पान करने जा रही थी। सावित्री को देखकर बोली—"आओ सावित्री, अच्छे समय से आई हो, कुछ खा लो।"

सावित्री कुछ भी न बोली। यथावत् गंभीर बनी खड़ी रही।

"बैठो न !" कंचुकी ने अपने सूखे, बिखरे बालों की लटों को समेटते हुए कहा—"उदास क्यों हो ?"

"छोटी रानी !" सावित्री ने गंभीरता से कहा—"महाराज आपको तत्काल बुला रहे हैं।" संभवतः आपके विरुद्ध किसी ने कुछ कह दिया है।"

"क्यों ?" कंचुकी ने पूछा।

"कह रहे थे," सावित्री बोली—"ऊपर से पूजा करती है, और भीतर से षड्यंत्र !"

कंचुकी विहँस उठी। बोलीं—"तो बुरा क्या कहा !"

वह उठकर खड़ी हो गईं। जल-पान का सामान वहीं रक्खा रह गया। सावित्री छोटी रानी को महाराज के कक्ष में छोड़कर बाहर निकल आई। महाराज ने एक बार जलते नेत्रों से कंचुकी की ओर देखा। फिर बोले—"पूजा कर चुकी !"

"हाँ महाराज !" कंचुकी ने मृदुलता से उत्तर दिया।

"भगवान् की पूजा करो, और पति के विरुद्ध षड्यंत्र ! क्या यही तुम्हारा धर्म है ?" महाराज ने व्यंग्य से कंचुकी को आहत करते हुए कहा।

"मैं आपका उद्देश्य समझी नहीं !" कंचुकी ने विनम्रता से कहा।

"देखो, अभी समझाता हूँ !" कहकर महाराज ने पुकारा—"सावित्री !"

"हाँ महाराज !" सावित्री ने दबे स्वर में कहा।

इसे ले जाकर महिला-बंदी-गृह में बंद करवा दे, तथा दो सैनिकों का पहरा लगवा दे। और सुन, बंदीगृह की चाभी मेरे पास रहेगी।"

सावित्री काँप उठी। कंचुकी को महाराज के इस बेतुके आदेश पर क्रोध आ गया। उसका चेहरा लाल पड़ गया। वह आवेश में बोली—"मेरी मर्यादा का भी कुछ ध्यान है ?"

"हाँ, है !" महाराज बोले—"अपराधी की भी मर्यादा !"

"मेरा अपराध ?"

"इतना बड़ा षड्यंत्र करके मुझसे अपराध पूछने आई हो। रेवंत को बंदी-गृह से भगाने का कुचक्र किसने रचा ?"

"मैं नहीं जानती।"

"तुम क्या जानो !" महाराज बोले—"मैं नहीं समझता था कि तुम इतना गरल छिपाए हो। पिता ने विश्वासघात करके भार शिवों को मिटा दिया। अब तुम मेरा सर्वनाश करने पर लगी हो, कंचुकी !" महाराज ने क्रोध से कहा—"इसी बंदी-गृह में तुम्हारे प्राण ले लूँगा !"

"ले लीजिए।" कंचुकी ने कहा—"शरीर आपको दे चुकी हूँ, तो प्राण उससे अलग नहीं हैं।" फिर कुछ सोचकर कहा—"यदि प्राण ही लेना है, तो बंदी-गृह की आवश्यकता नहीं, आप यों भी ले सकते हैं।"

"चुप !" महाराज ने दाँत पीसते हुए कहा—"मुँह लड़ाते हुए शर्म नहीं आती ?"

"महाराज !" कंचुकी के धैर्य का बाँध टूट गया। बोली—"यदि आप विवेक से काम नहीं लेते, तो मैं भी प्राणों पर खेल रही हूँ। बंदी-गृह में जाने के पूर्व मैं प्रमाण चाहती हूँ।"

"मेरे आदेश के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं।"

"महाराज !" कंचुकी तड़पकर बोली—"यह सब छोटे राजा का षड्यंत्र है, जिन्होंने मेरे वयोवृद्ध पिता का धर्म नष्ट किया है।"

"चुप !" महाराज ने दाँत पीसकर कहा—"मैं छोटे राजा के विरुद्ध एक शब्द नहीं सुनना चाहता। रेवंत को तूने भगवाया है। मलखान की हत्या तेरी कटार से हुई है।" महाराज काँप रहे थे। सावित्री की ओर देखकर बोले—"देखती क्या है, सुअर की बच्ची ! इसे बंद कर आ।"

सावित्री काँपती हुई आगे बढ़ी। महाराज की यह बात सुनकर कंचुकी कुचली हुई नागिन की तरह फुफकारती हुई बाहर निकल आई, और स्वयं बंदी-गृह में प्रविष्ट हो गई।

सावित्री ने छलकते नयनों से द्वार बंद किया। ताला लगाया। रक्षकों को तैनात किया। फिर महाराज को बंदी-गृह की चाभी देकर बाहर खड़ी हो गई।

"सावित्री!" महाराज ने गरजकर कहा—"जब तक यह अपने षड्यंत्र का रहस्योद्घाटन नहीं कर देती, तब तक इसे अन्न-जल कुछ भी न दिया जायगा।"

सावित्री केवल सिर हिलाकर रह गई।

साँझ होने पर जब सावित्री अपनी कोठरी में आई, तो उसने गजराज से पूरा कांड बताते हुए कहा—"महाराज ने आज छोटी रानी को बंद करवा दिया है। वह बंदी-गृह में हैं, न उन्हें अन्न दे रहे हैं, और न जल।" कहती हुई सावित्री सिसक पड़ी। बोली—"कह रहे हैं, जब तक यह रेवंत के भगाने का षड्यंत्र न बतावेगी, तब तक उसे अन्न-जल कुछ न दिया जायगा।" इतना कह वह गजराज की ओर देखने लगी। फिर बोली—"कटार कैसी है?"

"कटार!" गजराज चौंक पड़ा। उसे श्यामा की ग़लती का ध्यान आया। बोला—"सावित्री, यह हमारी ग़लती है। वह कटार छोटे राजा ने कंचुकी को प्रेम की भेंट-स्वरूप दी थी। जिसे उन्होंने स्वीकार न किया था। जब वह उसे तोड़ने जा रही थीं, तब श्यामा ने उसे उनसे छीनकर अपने पास रख लिया था। उसी कटार से सुरंग-रक्षक मलखान की हत्या हुई है। श्यामा ने इतनी ग़ल्ती अवश्य की कि वह उस कटार को वहीं छोड़ आई, किंतु उसका भी दोष नहीं। वह मलखान के पेट में इस तरह धँस गई थी कि श्यामा की निकाली ही न निकली। अब वह छोटे राजा के हाथ

लग गई है। वह उसे पहचान गए हैं। यही कारण है, कंचुकी पर संदेह किया जा रहा है। चूँकि वह कटार उन्होंने कंचुकी को दी थी, इसलिये उसके घटना-स्थल पर मिलने पर उनका कंचुकी पर संदेह करना स्वाभाविक ही है।

"हूँ!" सावित्री ने लंबी साँस छोड़ते कहा—"अब क्या हो? ये सब छोटी रानी के प्राण ले लेंगे।"

"सावित्री!" गजराज बोला—"सचमुच अब बड़ी भीषण समस्या आ गई है। हो सकता है, छोटी रानी आत्मग्लानि से बंदी-गृह में स्वयं आत्महत्या कर लें! या महाराज ही उन्हें मरवाने का षड्यंत्र रचें, अतः तुम्हें सतर्कता से कार्य करना है।"

यह सुनते ही सावित्री के नयन बरस पड़े। बोली—"मैं क्या कर सकती हूँ। यदि महाराज ने देख लिया, तो मेरी भी वही दशा होगी।"

"होने दो।" गजराज बोला—"तुम्हारी भी वही दशा होती है, तो कोई चिंता की बात नहीं, किंतु छोटी रानी की रक्षा तुम्हें अपने प्राणों की बाजी लगाकर करनी है।"

सावित्री मौन हो गई। गजराज भोजन करके विश्राम करने लगा। सावित्री ने खाना नहीं खाया। वह रात-भर पड़ी-पड़ी रोती रही। गजराज उसे समझाता रहा। अंत में विवश हो गजराज ने कहा—"सावित्री, मैं नहीं समझता था, तुम इतनी कायर हो!"

"मैं कायर नहीं हूँ!" सावित्री बोली—"और न मुझे अपने प्राणों का मोह है।"

"फिर?" गजराज ने प्रश्न किया—"इतनी दुर्बलता दिखाने से लाभ?"

सावित्री फफक पड़ी। धीरे से बोली—"मुझे अपने नहीं, उस बच्चे के प्राणों का मोह है, जो आज दो मास से मेरे जीवन के

सहारे पल रहा है।" इतना कह, वह गजराज से लिपटकर सिसकने लगी।

गजराज सहम गया। उसकी साध पूरी हो गई थी। उसने सावित्री को अपनी छाती में दबाकर कहा—"धत् पगली! कहीं इस प्रकार आँसू बहाए जाते हैं।"

सावित्री चुप न हुई, वह रोती ही रही। गजराज उसके बालों को सहला-सहलाकर सांत्वना देता रहा।

प्रभात हुआ। गजराज सावित्री से बिदा लेकर चल पड़ा। सावित्री क़िले के भीतर चली गई। चारो ओर छोटी रानी के षड्-यंत्र की चर्चा हो रही थी। भाँति-भाँति की आवाज़ें क़िले में उठ रही थीं। अन्य रानियाँ उनकी इस दुर्दशा पर प्रसन्न थीं। एक दूसरे के कक्ष में जा-जाकर बातें कर रही थीं।

सावित्री महाराज के कक्ष में गई। उसका द्वार बंद था। महा-राज अभी तक उठे न थे, वह इधर-उधर देखती हुई लौट पड़ी। बंदी-गृह के पास जाकर उसने धीरे से पुकारा—"छोटी रानी!"

सावित्री की आवाज़ सुनकर कंचुकी उठ बैठी। बोली—"सावित्री, मैं आज रानी नहीं, बंदिनी हूँ।" फिर रुँधे कंठ से कहा—"तुम क्यों आईं मेरे पास?"

"छोटी रानी!" सावित्री ने कहा—"मैं आपकी हूँ, यह कष्ट अब देखा नहीं जाता। बोलो, क्या करूँ?"

"जो कुछ महाराज आदेश दें, वही करो!" कंचुकी ने आवेश में कहा—"मेरे पास तुम्हारी क्या, किसी के भी आने की आव-श्यकता नहीं।" इतना कहकर उन्होंने मुख फेर लिया। सावित्री थोड़ी देर तक बैठी रोती रही। फिर बोली—"कुछ खा लो, इस तरह कब तक रहोगी?"

"मैं कुछ न खाऊँगी।" कंचुकी ने झुँझलाकर कहा—"तुम यहाँ से चली जाओ।"

सावित्री उठी नहीं। वहीं बैठी रोती रही। फिर बोली—"प्राण देने से काम न चलेगा, मैं भोजन का प्रबंध करती हूँ।"

"नहीं।" कंचुकी ने कहा—"सावित्री, यदि तुम मुझे अधिक परेशान करोगी, तो मैं अभी महाराज के पास सूचना भेजती हूँ।"

सावित्री ने एक बार छलकती आँखों से कंचुकी की ओर देखा। फिर कहा—"यदि तुम कुछ न खाओगी, तो तुम्हारे साथ भूखी रह-कर मैं भी प्राण दे दूँगी।" इतना कहकर वह चली गई। कंचुकी ने एक बार सहमी निगाहों से सावित्री की ओर देखा, फिर वह बंदी-गृह के फाटक का पर्दा गिराकर लेट गई। उनकी आँखों में आँसू आ गए थे, हृदय में तूफ़ान उठ रहे थे, और ख़ून में रह-रहकर उबाल आ रहा था।

निश्चित समय के बहुत बाद महाराज दरबार में पहुँचे। उन्होंने गजराज को बुलवाया। वह प्रातःकाल से ही उनकी प्रतीक्षा में बैठा था। उसे पत्र देकर महाराज ने कहा—"इसे छोटे राजा को दे देना, और कह देना, यदि अवकाश मिले, तो एक दिन के लिये चले आएँ।"

गजराज ने पत्र लेकर महाराज की ओर निहारा। उनका मन उदास था। चेहरे पर परेशानी के चिह्न उभरे हुए थे। गजराज अभिवादन करके चल पड़ा।

महाराज दरबार में उदास मन बैठे रहे। रह-रहकर उनके सामने कंचुकी का रूप झूम उठता था। उसके षड्यंत्र का स्मरण आते ही वह काँप उठते थे। "कंचुकी!" महाराज ने मन-ही-मन कहा—"कितनी विश्वासघातिन निकली........!" वह पुनः सोचने

लगे, फिर अतीत के गर्त में उलझ गए। शोडषी कंचुकी की छवि उनके सामने आई, जब उन्होंने उसे प्रथम बार देखा था। उसका अंग प्रत्यंग, ऐसा लगता था, मानो साँचे में ढला हो। उसका अभूत पूर्व सौंदर्य देखकर वह आत्मविभोर हो उठे थे। गेहुँआँ रंग, बड़ी-बड़ी कमल की पंखुड़ी-जैसी पराग-भरी आँखें, सुगठित शरीर, लंबे-काले केश एवं सदा प्रसन्न रहनेवाली मुख-मुद्रा! बातें करती थी, तो फूल बरसते थे। महाराज इस अनिंद्य सौंदर्य के समक्ष अपने को सँभाल न सके थे। उन्होंने कंचुकी के पास विवाह का प्रस्ताव भेज दिया था। रेवंत इस प्रस्ताव से सहमत न हुआ, क्योंकि महाराज मद्यपी थे।

महाराज ने पुनः कंचुकी से मिलने की इच्छा प्रकट की। रेवंत ने प्रसन्नता-पूर्वक अवसर दिया। कंचुकी सकुची-सिमटी महाराज के समक्ष आई। महाराज ने उसे अपने निकट बैठाते हुए स्नेह से पूछा—"कंचुकी, तुम जानती हो, मैं आज तुम्हारे पास क्यों आया हूँ।"

कंचुकी लजाकर रह गई। उसने कोई उत्तर न दिया।

"बोलो।" महाराज ने अपनी आँखें उसके कपोलों पर गड़ाते हुए पूछा—"तुम राजरानी बनोगी?"

कंचुकी चुपचाप भूमि की ओर देखती रही। उसकी छाती धड़क रही थी।

महाराज ने बहुमूल्य उपहार उसके समक्ष रखते हुए कहा—कंचुकी, मेरी यह प्रथम भेंट है। बोलो, स्वीकार करोगी?"

"महाराज!" कंचुकी का मुख खुला। उसने धीरे से कहा—"उपहार व्यक्तित्व के प्रतीक होते हैं, और व्यक्तित्व प्रतीक होता है व्यक्ति का।"

"तो?" महाराज ने साश्चर्य पूछा—"इसका अर्थ?"

"मैं आपके योग्य नहीं, अतः आपके व्यक्तित्व के प्रतीक इन उपहारों को भी स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।"

"क्यों?" महाराज ने लज्जित होते हुए पूछा।

"इसलिये कि इनमें प्रेम नहीं, वासना की गंध है!" कंचुकी ने शांत भाव से कहा—"मैं विवश हूँ, आप मुझे क्षमा करें।"

"कारण?" महाराज ने पूछा।

"मुझे आपसे उतनी घृणा नहीं है, जितनी आपकी मदिरा से।" कहकर कंचुकी ने सिर झुका लिया।

"यदि मैं मदिरा-पान त्याग दूँ, तब?"

"वह छूटती नहीं।" कंचुकी विहँसकर बोली—"यदि आप मुझे अपने चरणों में स्थान देना चाहते हैं, तो मदिरा-पान न करने की प्रतिज्ञा कीजिए।"

महाराज ने प्रतिज्ञा की। कंचुकी का उनके साथ विवाह हुआ। किंतु वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रह सके, और आज........।" सोचते-सोचते महाराज गंभीर हो उठे। उनके हृदय की राजरानी कंचुकी आज विश्वासघातिन है। कल तक जो जीवन थी, प्राण थी, सर्वस्व थी, वही आज बंदिनी है।

"ठीक है!" महाराज ने अपने आप कहा—"पर उसने ऐसा किया क्यों?" वह उठकर अपने कक्ष में चले आए।

कक्ष के द्वार पर सावित्री विचारों में डूबी उदास बैठी थी। महाराज ने उसकी ओर एक बार वक्र-दृष्टि से देखा, और फिर कक्ष में चले गए।

"सावित्री!" महाराज ने कक्ष में पहुँचकर पुकारा।

सावित्री महाराज के समक्ष सिर झुकाकर खड़ी हो गई।

"कंचुकी का क्या हाल है?"

"मुझे ज्ञात नहीं।"

"क्यों ?"

"वहाँ गई ही नहीं।"

"तुम्हें जाना चाहिए था।" महाराज ने कहा—"शाम को उसके लिये भोजन का प्रबंध कर देना।"

सावित्री स्वीकृति-सूचक सिर हिलाकर बाहर चली आई।

थोड़ी देर में वह पुनः कक्ष में लौट आई। उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था। लिफ़ाफ़ा उसने महाराज के हाथों में रख दिया। महाराज ने पूछा—"कौन लाया है ?"

"मैं नहीं जानती।" सावित्री बोली—"महामंत्रीजी ने दिया है।"

महाराज ने लिफ़ाफ़ा खोलकर देखा। वह बाबर सैयद का था। महाराज पढ़ने लगे। सावित्री खड़ी रही। पत्र पढ़ चुकने के बाद महाराज की समझ में यह बात न आई कि सैयद साहब तीन-चार दिनों का अवसर क्यों माँग रहे हैं। उनका मस्तिष्क चकरा रहा था। वह उठकर मधु-कक्ष की ओर चले। सावित्री उनके पीछे-पीछे।

मधु-कक्ष में पहुँचकर वह पीने लगे, और सावित्री पिलाने लगी। धीरे-धीरे नशा चढ़ने लगा, और महाराज बेसुध होने लगे। सावित्री उन्हें हाथ का सहारा देकर पुनः शयन-कक्ष तक लाई, और लिटाकर चली गई।

उस समय रात अपने यौवन की ओर बढ़ रही थी। आकाश साफ़ था। जगमगाते हुए तारे क़िले की शोभा को एकटक निहार रहे थे। गंगा की लहरें क़िले से टकराती हुई बह रही थीं, और नाविक तट पर पड़े-पड़े गीत गा रहे थे। कुछ दूरी पर एक साधु धुनी रमाए बैठा नाविकों का गीत तन्मयता के साथ सुन रहा था।

---

[१८]

चारों ओर भीषण अंधकार छाया हुआ था। काली रात सायँ-सायँ कर रही थी। आकाश में यत्र-तत्र बादलों के कुछ सफ़ेद, चितकबरे एवं काले टुकड़े बिखरे थे, जो कभी-कभी डूबते हुए चाँद का मुख छिपा लेते थे, और कभी-कभी सितारों का। गंगाजी में भीषण बाढ़ आ गई थी। वे क़िले की दीवारों को काटती हुई भीषण हाहाकार कर रही थीं। कगारों के गिरने से जल के प्रवाह में और भयानकता आ गई थी। गलियों एवं गलियारों में लंबी-लंबी घास उग आई थी। झिल्ली, झींगुर तथा अन्य छोटे-छोटे कीड़े बोल रहे थे। लंबी-लंबी घास में लुकते-छिपते तथा निकलकर फिर ओझल होते हुए जुगुनू इधर-उधर भटक रहे थे। कुछ दूरी पर पोखरों में मेंढक बोल रहे थे।

ख़ेमे में दीपक जल रहा था। इस काली-अँधेरी रात में शातिर अपने शिविर में पड़ा हुआ सोच रहा था—"सलमा न तो सलीम से मुहब्बत करती है, और न राजा डल से! तो फिर किससे क्या करती है? नफ़रत! नहीं, नहीं, यह उसकी चाल-मात्र है। जिस सलीम को साथ लिए वह गंगा के किनारे महीनों रँगरेलियाँ करती रही, उसी से आज वह नफ़रत करती है?" वह मुस्किरा उठा—"और मुझसे!"

शातिर सोचकर हँस पड़ा—"कहती थी, तुम मेरे एक अच्छे दोस्त की तरह हो!"

"सलमा मेरी दोस्त है, माशूक़ा नहीं, क्योंकि वह मुझसे मुहब्बत नहीं करती।"

"और मैं ?"

रास्ते के सभी काँटे निकल गए। अब मैं आज़ाद हूँ! सलीम जेल में है। हुसेन जौनपुर में है। राजा डज के ख़िलाफ़ षड्यंत्र रचा ही जा रहा है। अब या तो सलमा मेरी होकर रहेगी या उसे भी कुछ भुगतना पड़ेगा।" सोचता हुआ वह अपने आप ही अट्ट-हास कर उठा। कहती है—"यदि मुझे धोखा देना होगा, तो बीवी बनकर भी दे सकती हूँ, मगर यह नहीं सोचती कि बीवी बनने के पहले से ही धोखा दे रही है। वह एक अच्छी दोस्ती की नहीं दगाबाज़ी की निशानी है।"

शातिर अपने आप सोच रहा था। हँस रहा था। खंडन-मंडन कर रहा था कि शिविर के पास कुछ आहट-सी मालूम हुई। वह चुप हो गया। तथा ध्यान से सुनने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि दो आदमी खड़े हुए धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। उसने अपनी तलवार निकालकर हाथ में ली, और ज़ोर से डपटकर पूछा—"कौन है ?"

"उई !" एक चीख़ निकलकर अंधकार में समा गई।

शातिर ने बाहर निकलकर देखा, एक आदमी अँधेरे में भगा जा रहा है। उसने उसे झपटकर पकड़ लिया, और गर्दन पकड़कर शिविर में ले आया। शिविर में पहुँचकर शातिर ने उसे छोड़ दिया, और पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

"जी !" व्यक्ति ने काँपते हुए कहा—"ख़ुदा के लिये मेरी जान बख़्शिए, मेरा नाम जुम्मन है।"

"जुम्मन।" शातिर ने कुछ सोचकर कहा—"सूबेदार साहब का नौकर ?"

"जी नहीं !" जुम्मन ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"आपका ख़ादिम।"

शातिर मुस्किरा उठा। उसने जुम्मन को बैठने का इशारा करते हुए कहा—"इतनी रात को यहाँ क्यों घूम रहा है? ख़ुफ़ियागीरी करता है?"

"जी नहीं।" जुम्मन ने हाथ जोड़कर कहा—"यह काम मेरे पुरखे करते थे।"

"और तू क्या करता है?"

"फ़रमाबरदारी।" जुम्मन ने दोनो हाथ अपनी कमर पर रख उसे लचकाते हुए उत्तर दिया।

शातिर अपनी हँसी न रोक सका। उसने जुम्मन को डाँटते हुए कहा—"सीधे बैठ।"

जुम्मन बैठ गया। शातिर ने पूछा—"यहाँ क्यों आया है?"

"नाम लिखाने।"

"नाम लिखाने!" शातिर ने चौंककर पूछा—"यह कोई मदरसा थोड़े है।"

"फ़ौज तो है!" जुम्मन ने तालियाँ पीटते हुए कहा—"सुना है, लड़ाई होनेवाली है?"

"उल्लू के पट्ठे!" शातिर ने खींचकर एक तमाचा जुम्मन के गाल पर मारा—"तेरे ही बल पर लड़ाई होगी! भग यहाँ से?"

जुम्मन रोने लगा। हाथ जोड़कर बोला—"मैं फ़ौज में भरती होने नहीं आया था।"

"फिर कहाँ आया था?" शातिर ने डपटकर पूछा—"सलीम का पता लगाने?"

"नहीं।" जुम्मन ने मुँह बनाते हुए कहा—"दिल बहलाने।"

"तो इधर आ, तेरा दिल बहला दूँ!" कहकर शातिर ने जुम्मन के दोनो कान पकड़कर हिला दिए।

"मुझे छोड़ दीजिए।" जुम्मन चिल्लाया—"मैं अपना दिल बहलाने नहीं आया था।"

"फिर किसका ?"

"दरियाए गंगा का !" जुम्मन ने उँगली उठाते हुए कहा—"वह देखो, शोर कर रही हैं।"

ज़ुबेदा बाहर, पगडंडी में, खड़ी-खड़ी जुम्मन पर कुढ़ रही थी। वह आगे बढ़ी, और काँपते हाथों से शिविर का द्वार खोलकर धीरे से बोली—"शातिर साहब, माफ़ कीजिएगा, मैं आपसे कुछ बातें करना चाहती हूँ।"

शातिर ने घूमकर देखा, एक हसीन औरत काले बुर्के में लिपटी खड़ी है, उसने जुम्मन को छोड़ दिया, और धीरे से कहा—"मैंने आपको पहचाना नहीं।"

"जी !" ज़ुबेदा ने कहा—"मैं कड़े के सूबेदार साहब की लड़की, ज़ुबेदा हूँ।"

शातिर उठकर खड़ा हो गया। वह ज़ुबेदा को पहचान गया था, मगर अपने को छिपाए रहा। उसने पास ही पड़ी चौकी पर ज़ुबेदा को बैठने का संकेत किया। ज़ुबेदा बैठ गई। उसने अपना नक़ाब उलट लिया। नक़ाब उलटते ही उस छोटे-से शिविर में मासूम चाँद का छोटा-सा टुकड़ा विहँस पड़ा। शातिर बड़े ग़ौर से ज़ुबेदा की ओर देखता रहा। फिर बोला—"कहिए, कैसे तकलीफ़ की ?"

"शातिर साहब !" ज़ुबेदा बोली—"मैं आपको पहचानती नहीं थी। जब आपने सलीम एवं सूबेदार साहब को गिरफ़्तार किया था, तब यह जुम्मन वहाँ मौजूद था। चलते समय मैंने भी आप को देखा था। इस समय, इतनी रात को, मैं आपका ख़ेमा ढूँढ़ती-ढूँढ़ती इसी जुम्मन के साथ यहाँ तक आई हूँ। मैं आपसे कुछ बातें करना चाहती हूँ।"

"कीजिए।" शातिर ने कहा—"शौक़ से कीजिए।"

"क्या मैं जान सकती हूँ कि सलीम और मेरे वालिद का क्या क़ुसूर था?"

"ज़ुबेदा!" शातिर ने कहा—"सलीम ने बहुत बड़ा गुनाह किया है। तुम्हें नहीं मालूम, उसने ख़त लिखकर राजा डल को बुलाया है। आज हालत यह हो गई है कि राजा डल ने संदेश भेजा है कि या तो सलमा का डोला भेज दीजिए या लड़ाई के लिये तैयार रहिए। ऐसी हालत में सलीम के साथ जो कुछ किया गया, वह अभी कम है।"

"यह तो रही सलीम की बात!" ज़ुबेदा बोली—"अगर सलीम ने ऐसा किया है, तो यह बहुत ही बेहूदी बात है। मगर अब्बाजान ने क्या किया है?"

"वह इन साजिशों में शामिल रहे या उनका हाथ रहा है!"

ज़ुबेदा चुप हो गई। कुछ सोचकर बोली—"क्या आप मेरी इस हालत पर रहम करेंगे?"

"ज़रूर!" शातिर ने कहा—"कहिए, मैं जिस लायक़ हूँ, तैयार हूँ।"

"अगर अब्बाजान बंद रहे, तो हम सब भूखों मर जायँगे।" ज़ुबेदा ने रुँधे कंठ से कहा—"मैं समझती हूँ, उनकी कोई ख़ता नहीं है। घर में दूसरा कोई नहीं, जो हमारी मदद कर सके। मा हैं, वह सौतेली हैं। उन्हें मेरी क्या फ़िक्र। वह अपने घर जाने को तैयार बैठी हैं। रह गई मैं, यदि मेरे ऊपर आप कुछ रहम कर सकते हैं, तो कर दीजिए, नहीं तो मैं भी गंगा में डूब मरूँगी!" इतना कह ज़ुबेदा शातिर की ओर देखने लगी। उसकी आँखें भीग गई थीं। वह कुछ रुककर बोली—"इस अँधेरी रात में मैं इसीलिये

आपके पास आई और आँचल फैलाकर अपने वालिद की भीख माँगती हूँ।" कहते-कहते ज़ुबेदा रो पड़ी।

शातिर द्रवीभूत हो गया। उसने ज़ुबेदा से कहा—"मैं सूबेदार साहब की हालत बख़ूबी जानता हूँ। घर में टका नहीं है, महज नाम के सूबेदार बने बैठे हैं। मेरे भी दिल में रहम है। मैं उन्हें छोड़ दूँगा। मगर एक शर्त है।

"क्या?" ज़ुबेदा ने आँसू पोंछते हुए कहा।

"हम लोग अभी इस योग्य नहीं हैं कि राजा डल से लोहा ले सकें। हमें उसकी तैयारी करनी है। उनके क़िले का भेद भी जानना है। क्योंकि बिला भेद जाने इस क़िले पर हमला करना कोई आसान काम नहीं। इस मामले में मैं आपकी मदद चाहता हूँ।"

"मैं किस क़ाबिल हूँ!" क़िले का भेद मैं कैसे दे सकूँगी।"

"मैं बताता हूँ।" शातिर बोला—"राजा डल सलमा से मुहब्बत करते हैं। यदि सलमा का ख़त उन्हें मिलता है, तो वह अवश्य उसका जवाब देंगे। जवाब न भी देंगे, तो भी असमंजस में पड़ ही जायँगे। तुम्हें महज़ सलमा की नौकरानी बनकर राजा के पास ख़त ले जाना है। धीरे-धीरे जब तुम उनका विश्वास प्राप्त कर लोगी, तब क़िले की पोशीदा बातें भी तुमसे छिपी न रहेंगी। मुझे विश्वास है, तुम शाह शकी की इज़्ज़त बचाने के लिये इससे इनकार न करोगी। अगर तुम तैयार हो, तो मैं सूबेदार साहब को अभी छोड़ दूँ, और उन्हें इतनी दौलत दिला दूँ कि तुम सब लोग ज़िंदगी-भर शान के साथ बैठे-बैठे खा सको।"

"मैं अपनी तरफ़ से कोई वादा नहीं करती!" ज़ुबेदा बोली—"यदि आप इजाज़त दें, तो मैं सूबेदार साहब से पूछकर उनकी राय ले लूँ।"

"बेशक!" शातिर बोला—"आप उनकी राय ले सकती हैं,

मुझे कोई एतराज़ नहीं। मैं मदद के लिये जुम्मन को भी आपके साथ कर सकता हूँ।"

ज़ुबेदा चुप रही। शातिर ने जुम्मन की ओर देखकर कहा—"क्यों बे, जायगा ?"

"न !" जुम्मन ने मुँह बनाया, "मजा मारें गाजी मियाँ, धक्का सहे ढफाली !"

"मुहब्बत सलमा और राजा डल की है, मरे जुम्मन ! इन्हें आप दौलत दे रहे हैं, जुम्मन को क्या मिलेगा ?"

"दुलहन !" शातिर ने हँसकर कहा—"पहले काम तो कर !"

"मैं नहीं लेता दुलहन !" जुम्मन बोला—"पहले अपने लिये इंतज़ाम कर लो, तब फिर जुम्मन को देना।"

शातिर शरमाकर रह गया। ज़ुबेदा मुस्किरा उठी, और शातिर से बिदा लेकर चली आई। जुम्मन उसके साथ था।

प्रातःकाल ज़ुबेदा ने बंदी-गृह में ही सूबेदार साहब से भेंट की। शातिर की बात बताई, सूबेदार साहब से राय माँगी—"क्या इसके लिये आप इजाज़त देते हैं ?"

"मैं सब चीज़ों के लिये तैयार हूँ।" सूबेदार साहब बोले—"बशर्ते कि इस हवालात से छुटकारा मिल जाय। मेरी हालत तो देख !" उन्होंने ज़ुबेदा को अपना पेट दिखाते हुए कहा—"सालों ने खाना तक न दिया। यही हाल रहा, तो मेरी यहीं क़ब्र बनेगी।"

ज़ुबेदा पहले से ही समझती थी कि सूबेदार साहब कितने मज़-बूत दिल के आदमी हैं। उसने शातिर को स्वीकृति दे दी। सूबेदार साहब छोड़ दिए गए। उन्हें बहुत-सा धन दिया गया। वह ख़ुशी-ख़ुशी मानिकपुर चले आए। सलीम वहीं पड़ा सड़ता रहा।

"मैंने तो आपकी शर्त मान ली।" ज़ुबेदा ने शातिर से कहा—"मगर मेरी भी एक शर्त है।"

"क्या ?"

"सलीम को यहाँ कोई तकलीफ़ न होने पाए।"

"क्यों ?" शातिर ने पूछा—"सलीम से इतनी हमदर्दी क्यों ?"

"यों ही !"

शातिर चुप रहा। ज़ुबेदा ने कहा—"बोलो, मंज़ूर है ?"

"ज़ुबेदा !" शातिर ने गंभीरता से कहा—"सलीम ने ऐसा काम तो नहीं किया है कि उसके ऊपर रहम किया जाय। यदि तुम कहती हो, तो मंज़ूर है। फिर भी तुम्हें एक बात बतानी पड़ेगी।"

"क्या ?" ज़ुबेदा ने धड़कते हृदय से पूछा।

"तुम्हारी सलीम के ऊपर इतनी हमदर्दी क्यों है ?"

"एक इंसान पर एक इंसान की हमदर्दी होती ही है।"

"बहुत से और भी इंसान हैं !" शातिर ने कहा—"दुनिया में महज़ सलीम ही नहीं है।"

"उन पर भी हमदर्दी है।" ज़ुबेदा बोली—"सलीम मेरा मामू है। आप उस पर रहम करें।"

"ज़ुबेदा !" शातिर ने कहा—"ठीक है, मैं हमदर्दी रक्खूँगा, मगर एक उम्मीद पर।"

"कौन-सी उम्मीद !" ज़ुबेदा ने प्रश्न किया।

"यही कि सलीम के साथ जब तुम्हारी सगाई हो, तो मुझे बुलाना न भूलना।"

ज़ुबेदा यह सुनते ही शरमा कर रह गई। दबे स्वर में बोली—"आप ग़लत समझ रहे हैं।"

"हो सकता है।" शातिर ने कहा—"फिर भी मैं आपको मुबारकबाद अभी से देता हूँ—इसलिये नहीं कि आपको सलीम से मुहब्बत है, बल्कि इसलिये कि आप-जैसी लड़की को पाकर सलीम सुधर जायगा। उसकी ज़िंदगी बन जायगी।"

ज़ुबेदा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सिर झुकाए खड़ी रही। इतने में जुम्मन सामने से आता हुआ दिखाई पड़ा। ज़ुबेदा ने कहा—"शातिर साहब, अब मैं चली, मुझे उम्मीद है, आप मेरी बात का ख़याल रक्खेंगे।"

"अवश्य।" शातिर ने कहा—"आप जा सकती हैं। मैं सलीम का ख़याल रक्खूँगा।" फिर जुम्मन की ओर देखकर कहा—"यह कहाँ से आ रहा है?"

"घर से।" ज़ुबेदा बोली—"सूबेदार साहब को छोड़ने गया था।"

ज़ुबेदा शातिर के पास से चल पड़ी। शातिर ने सैयद साहब से पूरी घटना बतलाई। और कहा—"ज़ुबेदा-जैसी होशियार लड़की से सब काम बन जायगा। मुझे उसके ऊपर पूरा इतमीनान है।"

"कहीं धोखा न हो जाय।" सैयद साहब ने संदेह प्रकट करते हुए कहा।

"नहीं।" शातिर बोला—"धोखे की गुंजाइश नहीं, क्योंकि ज़ुबेदा सलीम से मुहब्बत करती है, और जब वह काम कर देगी, मैं तभी सलीम को छोड़ूँगा।"

"यह बात है?" सूबेदार साहब विहँसकर बोले—"तब तो अच्छा शिकार हाथ लगा।

"जी हाँ।" शातिर ने कहा—"काम पक्का है। अब अगला क़दम उठाने में देर न करनी चाहिए।"

दोनो बातें करते-करते क़िले के दीवाने-ख़ास में आकर बैठ गए, और शतरंज खेलने लगे।

सूबेदार साहब के बंदी-गृह से मुक्ति पा जाने के समाचार ने सलीम का पारा और भी गरम कर दिया। यद्यपि उसे शातिर की बदमाशी की जानकारी पहले से ही थी, और वह यह भी जानता

था कि सलमा के पीछे उसकी और शातिर की प्रतिद्वंद्विता ही इसका मूल कारण है, किंतु बेचारा कर क्या सकता था। वह बुरी तरह कुचक्र में फँस चुका था। ज़ुबेदा पर भी वह कम नाराज़ न था। भूखा-प्यासा सलीम बंदी-गृह में पड़ा-पड़ा क्रोध से पागल हो रहा था। एक लड़की सलमा थी, जिसने उसके साथ यह व्यवहार किया। दूसरी ज़ुबेदा है, जो अपने बाप को तो छुड़ा ले गई, मगर सलीम की ओर उसने देखा तक नहीं! ख़ुदा ही बचाए इन लड़कियों से!—सलीम अपने आप सोचने लगा—"इन लड़कियों पर कोई यक़ीन नहीं। जबतक जिसके चंगुल में रहती हैं, तब तक उसी की आवाज़ पर नाचती हैं। थोड़ा-सा मनमुटाव हुआ नहीं कि ऐसा लगता है, जैसे पहचानती ही नहीं। यह चुड़ैल ज़ुबेदा!" सलीम बुदबुदाया—"नागिन है, नागिन! अभी तक घर में भूखों मारती रही, अब यहाँ पर मौजें मार रही है। मिले, तो गला घोंट दूँ। अपने बाप को तो छुड़ा ले गई, और मेरी ओर देखा तक नहीं।"

सलीम पड़ा-पड़ा सोच ही रहा था कि ज़ुबेदा खाने की रक़ाबी और पानी का गिलास लिए हुई आई। शातिर साहब का इजाज़त-नामा उसने पहरेदार सिपाही को दिया, और खाना सलीम की ओर बढ़ा दिया।

"यह क्या है?" सलीम ने गरजकर पूछा।

"खाना है।" ज़ुबेदा बोली—"शातिर साहब से मैंने इजाज़त ले लिया है। अब आपको भूखों न मरना पड़ेगा।"

"सलीम ने ग़ुस्से से खाने की तश्तरी फेंक दी, और कहा—"मैं कोई कुत्ता थोड़े हूँ, जो शातिर के रहम पर ज़िंदा रहूँ!"

ज़ुबेदा काँप उठी। वह सलीम की ओर देखने लगी।

"मैं नहीं खाता!" सलीम बोला—"ले जा इसे, अपने वालिद को खिला दे।"

"सलीम साहब !" ज़ुबेदा ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"आपके लिये तो मैं इतनी क़ुर्बानी करके डलमऊ जा रही हूँ, और आप फटकार रहे हैं !"

"भग यहाँ से !" सलीम बोला—"मुझे तेरी क़ुर्बानी की ज़रूरत नहीं।"

"मेरी एक इस्तदुआ है।"

"कैसी इस्तदुआ ?" सलीम फिर तड़प उठा—"तू गई होगी शातिर के पास, मेरी हमदर्दी में रोई होगी। उसने रहम कर दिया, यही न ?"

"नहीं।" ज़ुबेदा बोली—"मैं वहाँ नहीं गई।"

"झूठी कहीं की !" सलीम ने तेज़ आवाज़ में कहा—"तुझे पता है, वह मेरा दुश्मन है ! दुश्मन ! यह सारा जाल उसी का रचा है। वह सलमा को पाने के लिये यह सब कर रहा है, शाह शर्की की हमदर्दी में नहीं।" कहकर सलीम जलती आँखों से ज़ुबेदा की ओर देखकर बोला—"यदि सलीम ज़िंदा रहा, तो वह शातिर से इसका बदला लेकर रहेगा।"

"सलीम साहब !" ज़ुबेदा चीख़ पड़ी—"ख़ुदा के लिये ऐसी बातें न कीजिए, नहीं तो मैं सिर पटककर यहीं मर जाऊँगी।"

"मैं शातिर का भेजा खाना न खाऊँगा।" सलीम बोला—"अगर तुझे कुछ हमदर्दी है, तो अपने घर से खाना बनाकर ला, या यहीं कहीं इंतज़ाम कर।"

"मैं इंतज़ाम किए देती हूँ।" ज़ुबेदा ने सिसकते हुए कहा, और वह तश्तरी एवं गिलास उठाकर चल पड़ी।

बाहर आकर उसने रो-रोकर शातिर से सब कुछ बताया। शातिर ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"अच्छी बात है, मैं इंतज़ाम

करवाए देता हूँ।" और उसने सदरुन को बुलाकर सलीम के खाने का भार सौंप दिया।

"नहीं।" ज़ुबेदा बोली—"वह यहाँ का खाना खाएँगे ही नहीं।"

"तो फिर ?" शातिर ने व्यंग्य से कहा—"जौनपुर से तो खाना आवेगा नहीं।"

"आवेगा।" ज़ुबेदा बोली—"मेरी छोटी चाची (मा) के पास ख़बर भेजवा दीजिए, तथा सवारी का इंतज़ाम कर दीजिए। वह इन्हें रोज़ खाना खिला जाया करेंगी। उनके हाथ से खाने में इन्हें कोई एतराज़ न होगा।"

शातिर तैयार हो गया। ज़ुबेदा ने एक ठंडी साँस लेकर गंगा-तट की ओर निहारा। हरहराती हुई लहरें उछल रही थीं। वृत्ताकार भँवरें बन-बनकर बिगड़ रही थीं। दोनो किनारे पानी में ऐसे डूबे हुए थे कि उन्हें उभरने का मौक़ा ही न मिल पा रहा था।

ज़ुबेदा एक लंबी साँस छोड़कर रह गई। उसकी आँखें पुनः छल-छला उठी थीं। शातिर वहीं खड़ा रहा।

---

[१६]

रेवंत के भगाने का अपराध ख़ूबचंद के सिर पर पड़ा। महामंत्रीजी ने उसे बंदी बनाकर उसी सुरंग में रख दिया, जहाँ से रेवंत भगा था। ख़ूबचंद ने लाख सफ़ाई दी। सिर पटका कि रेवंत के भगने तथा नसहा घोड़े के ग़ायब होने की दोनो घटनाओं का आपस में कोई संबंध नहीं है। घोड़ा प्रतियोगिता में गजराज को गिराकर भगा था। सैनिक उसे रात-भर खोजते रहे। प्रातःकाल ढूँढ़कर यहाँ लाए। मगर महामंत्रीजी ने एक बात न मानी। गुप्तचरों ने प्रमाण पर प्रमाण प्रस्तुत किए। बेचारा ख़ूबचंद परेशान हो गया। अंत में वह महाराज के सामने लाया गया। महाराज से भी उसने वे ही बातें बताईं; किंतु महाराज ने उसे यह कहकर बंदी-गृह में भेज दिया कि गजराज नहीं है, जब तक वह आ नहीं जाता और सही, प्रमाण नहीं मिल जाता, तब तक अभियुक्त को छोड़ना उचित नहीं।"

गुप्तचर अब भी अपना कार्य कर रहे थे। इस बार सुरंग के फाटक पर भीषण पहरा था।

दूसरे दिन दोपहर के पूर्व ही गजराज आ गया। उसने सबसे पहले महाराज का पत्र छोटे राजा को दिया। वह पत्र खोलकर पढ़ने लगे। लिखा था "……रेवंत के बंदी-गृह से भागने के समाचार से मुझे अत्यंत दुख तथा आश्चर्य हुआ। उससे भी अधिक खेद इस बात पर है कि इसमें कुछ सैनिकों तथा कंचुकी का हाथ है। सैनिकों पर कड़ी निगाह रखिए। कंचुकी इस समय कारागार में है। या तो वह रहस्य बतावेगी या वहीं पड़ी-पड़ी सड़ जायगी। मैंने भी चारो ओर गुप्तचर भेज दिए हैं। अत्यधिक सतर्कता की आवश्य-

करता है। अन्यथा इन षड्यंत्रकारियों से विध्वंस की आशंका है। कुछ आवश्यक परामर्श करना है। यहीं चले आओ।"

पत्र पढ़ते ही छोटे राजा प्रसन्नता से आत्मविभोर हो उठे। रेवंत के भगने का दुःख ख़ुशी में बदल गया। कंचुकी को नीचा दिखाने में उन्हें सफलता मिली। उन्होंने स्मित बदन से पत्र की इन पंक्तियों को दुहराया "या तो कंचुकी रहस्य बतावेगी, या यहीं पड़ी-पड़ी सड़ जायगी।"

"बड़ा अच्छा हुआ!" छोटे राजा ने मन-ही-मन कहा—"अब देखता हूँ, कंचुकी के अभिमान को। उसका मान मर्दन कर दूँगा। डलमऊ चलकर देखूँ तो, वह सीख़चों के भीतर कैसे रह रही है।" सोचते हुए वह उठ खड़े हो गए। उन्होंने महामंत्रीजी से अपनी डलमऊ-यात्रा के विषय में आवश्यक तैयारी का आदेश देकर अपने कक्ष में चले गए।

"श्यामा!" उन्होंने प्रसन्नता से पुकारा। श्यामा आई। उसे देखकर प्रसन्नता से छोटे राजा बोले—"श्यामा, आज मुझे इतना पिला दे कि सब कुछ भूल जाऊँ।"

श्यामा मुस्किरा उठी। बोली—"जो आज्ञा।" और वह सुरा-चषक भर-भर देने लगी।

"श्यामा!" महाराज ने स्नेह से पूछा—"तू इधर उदास क्यों रहती है?"

"कहाँ महाराज!" श्यामा विहँसकर बोली—"उदास तो नहीं हूँ।"

"झूठ बोलती है।" महाराज ने कहा—"मेरी उस दिन की बात से नाराज़ तो नहीं है?"

"भूल जाइए महाराज!" श्यामा ने कहा—"उन बातों को भूल जाना ही अच्छा है।"

"नहीं।" महाराज ने कहा—"जब मैं अधिक पी लेता हूँ, तब मुझे अपने आपका ध्यान नहीं रहता, ऐसी दशा में यदि कुछ बक जाया करूँ, तो बुरा न मानना।"

श्यामा मुस्किराती हुई बोली—"महाराज, मैं तो इसीलिये हूँ ही, परिचारिका जो ठहरी, बुरा मानकर क्या करूँगी।"

"नहीं श्यामा!" महाराज बोले—"मेरे दुर्ग में परिचारिकाएँ कन्या की तरह रहती हैं, मुझे अपने ऊपर स्वयं दुःख है, मेरे मन में ऐसे विचार क्यों उठे।"

"महाराज!" श्यामा ने गंभीरता से कहा—"छोड़िए इस प्रसंग को। मेरी इज़्ज़त, मेरा जीवन और मेरा शरीर सभी कुछ तो आपके टुकड़ों पर पल रहा है। आपने पुत्रीवत् मुझे पाला है, मैं अपने मा-बाप की मृत्यु आपका सहज वात्सल्य पाकर भूल चुकी हूँ।"

"श्यामा!" महाराज बोले—"तू मेरी कन्या-तुल्य है। मगर एक बात करना।"

"क्या?" श्यामा ने पूछा।

"जब मैं अधिक पी लिया करूँ," महाराज कुछ सोचकर बोले—"तब तू मेरे सामने से हट जाया कर।"

"अच्छी बात है?" श्यामा ने कहा—"अब चली जाऊँ, इस समय भी तो आप अधिक पी गए।"

महाराज मुस्किराने लगे। बोले—"मैं आज अधिक प्रसन्न हूँ। मेरा लक्ष्य पूरा हो गया है। बोल, तुझे क्या पुरस्कार दूँ?"

"कुछ नहीं!" श्यामा ने कहा—"आप मुझे कन्या-तुल्य समझते रहें, यही मेरे लिये सबसे बड़ा पुरस्कार है।"

"महाराज माने नहीं। उन्होंने श्यामा को एक बहुमूल्य शाल देते हुए कहा—"ले।"

श्यामा ने हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया और महाराज को हाथ जोड़कर नमन किया। महाराज आपे से बाहर हो रहे थे। श्यामा ने ध्यान से देखा, वह शाल छोटी रानी सुभद्रा का था, जिसे वह यहीं रख गई थीं। श्यामा पुनः विहँस उठी, और सोचने लगी—"यह सब नशे में तो नहीं बक गए।"

उसी समय महामंत्रीजी का संदेश मिला। महाराज लड़खड़ाते क़दमों से बाहर निकलकर घोड़े पर सवार हुए और थोड़े-से सैनिकों को लेकर डलमऊ की ओर चल पड़े।

उनके चले जाने पर श्यामा ने संतोष की साँस ली। वह मुस्कि-राती हुई सुभद्रा के कक्ष में जा पहुँची। सुभद्रा उस समय कक्ष का द्वार बंद किए हुए पड़ी थी। श्यामा ने द्वार खोलकर धीरे से कहा—"छोटी रानी, सो रही हो क्या?"

"नहीं श्यामा!" सुभद्रा बोली—"सोच रही थी कि इतना बड़ा कांड दुर्ग में कैसे हो गया और किसी को ख़बर तक न मिली।"

श्यामा हँस पड़ी। बोली—"लो, यह शाल! कहाँ भूल आई थीं?"

"भूल तो नहीं आई।" सुभद्रा ने कहा—"महाराज के कक्ष में रक्खा था।"

"हूँ!" श्यामा ने चंचलता से कहा—"महाराज ने इसे मुझे पुरस्कार में दे दिया है।"

"तो ले जा।" सुभद्रा ने हँसकर कहा।

"नहीं रानी!" श्यामा बोली—"वह होश में नहीं थे, बोले—"अपने जीवन की सबसे बड़ी प्रसन्नता के अवसर पर मैं तुझे पुर-स्कार देता हूँ।"

"कैसी प्रसन्नता?" सुभद्रा ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं क्या जानूँ?" श्यामा ने कहा—"होगी कोई प्रसन्नता,

रेवंत का पता लग गया होगा, कहीं गए तो हैं? वाहिनी लेकर!"
इतना कहकर श्यामा ने शाल छोटी रानी के पास रख दिया।

"श्यामा!" सुभद्रा शाल उठाती हुई बोली—"ले जा इसे।"

"मैं नहीं लेती!" श्यामा ने कहा—"कल वसूल करने लगेंगे, तो?"

"मैं दे रही हूँ।" कहती हुई सुभद्रा ने शाल श्यामा के सिर पर ओढ़ दिया—"ले, ओढ़ तो देखूँ, तेरे कैसा लगता है।"

"रहने दो।" श्यामा ने कहा—"मुझे बहू बनने की आवश्यकता नहीं है।"

"तो क्या यों ही रहेगी?" सुभद्रा ने उसके गाल पर चपत लगाते हुए पूछा।

"कोई अपराध है!" श्यामा बोली—"जिस प्रकार दिन कट जायँ, उसी प्रकार रहना चाहिए।"

"अच्छी बात है।" सुभद्रा ने कहा, और श्यामा के शरीर पर शाल लपेट दिया।

श्यामा सहम कर रह गई। सुभद्रा खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—"देख, कितना अच्छा लगता है।"

तुम्हारी वस्तु है, तुम्हीं देखो!" कहती हुई श्यामा अपनी कोठरी में चली आई। शाल उसके हाथ में था।

श्यामा आज अत्यधिक प्रसन्न थी। कोठरी का द्वार खोल उसने बिस्तरा ठीक किया। भूमि पर चटाई बिछाई। द्वार बंद करके कपड़े उतारे और फिर लेट गई। झरोखे से पुरवाई के मादक झोंके आ-आकर श्यामा के सुनहरे बालों से खेलते रहे। आँचल उड़ता रहा। श्यामा बार-बार बालों को समेटती, मुस्काती, एवं इठलाती रही। शाल वहीं पड़ा रहा। आकाश में बादल घुड़दौड़ मचाए थे। श्यामा का मन रह-रहकर हिलोरें ले रहा था। उसने तकिया उठा-

कर अपना सिर और ऊँचा किया, फिर धीरे-धीरे गाने लगी—

"गंगा मा किहेंव असनान, बिंदिया लइगै मछरिया !
जाय कहेव मोरे बारे ससुर से—
गंगा मा जाल छोड़ाव, बिंदिया लइगै मछरिया !
जाय कहेव मोरे बारे जेठ से—
गंगा मा सेतु बँधाव, बिंदिया लइगै मछरिया !
जाय कहेव मोरे बारे देवर से—
गंगा कै जल उलिचाव, बिंदिया लइगै मछरिया !
जाय कहेव मोरे बारे बलम से—
गंगा कै पूजा कराव, बिंदिया लइगै मछरिया !
गंगा मा किहेंव असनान, बिंदिया लइगै मछरिया !

वायु के झोंके-पर-झोंके आते रहे। बाल उड़-उड़कर लहराते रहे, और श्यामा तन्मयता से गाती रही। न उसे तन की सुधि थी, न मन की, न जीवन की। लोकगीत की एक-एक कड़ी उसके कोमल, मधुर एवं सुरीले कंठ से निकलकर शरीर को पुलकित करती रही।

गजराज द्वार पर खड़ा-खड़ा सुनता रहा। मुस्किराता रहा। फिर धीरे से द्वार खोलकर बोला—"गंगा की पूजा तो मैं करा आया, तुम्हारी बिंदिया मिले या न मिले !"

"धत् !" श्यामा लजाकर उठ बैठी। उसने अपने कपड़े ठीक किए, तकिया बाहर फेंका। सिर पर आँचल छोड़कर शरमाते हुए कहा—"कब लौटे ?" और वह उठकर खड़ी हो गई।

"दोपहर के पूर्व !" गजराज ने चारपाई पर बैठते हुए उत्तर दिया।

"अभी तक कहाँ थे ?" श्यामा ने चटाई पर बैठते हुए पूछा।

"अपनी कोठरी में !" गजराज ने कहा—"आज बड़ी प्रसन्न दिखाई पड़ रही हो। क्या गा रही थी।

"कुछ नहीं।" श्यामा ने हँसकर कहा—"मैं नहीं समझती थी कि कोई चोर मेरा गाना सुन रहा है। फिर कुछ रुककर बोली—"डलमऊ का क्या समाचार है ?"

"क्या बताऊँ श्यामा !" गजराज ने कहा—"कंचुकी इस समय बंदी-गृह में है।"

"क्यों ?" श्यामा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। क्षण-भर पहलेवाली मस्ती जाती रही।

"तुम्हारी ग़लती से !" गजराज ने कहा—"उस कटार के विषय में छोटे राजा को कंचुकी के ऊपर संदेह हुआ। उन्होंने बड़े महाराज को पत्र लिखकर पूरी घटना से अवगत कराया। यह उसी का परिणाम है। अब स्वयं डलमऊ गए हैं। पता नहीं क्या करें !"

"हे भगवन् !" श्यामा ने लंबी साँस भरकर कहा—"अब क्या होगा ? कंचुकी बेचारी व्यर्थ में मारी गई। यहाँ भी कुछ सुना !"

"न।" गजराज बोला—"कोई विशेष बात।"

"हाँ।" श्यामा मुस्किरा उठी। बोली—"घोड़ा ले गए तुम और रेवंत के भगाने के संदेह में बंदी हैं ख़ूबचंद !"

"यह अच्छा रहा।" गजराज ने कहा—"उसका क्या अपराध था।"

गुप्तचरों के प्रतिवेदन पर। ख़ूबचंद का घोड़ा प्रातःकाल सई के कछार में मिला है। उसी के संदेह में वह बंदी बनाए गए। तुम्हारी प्रतीक्षा थी, क्योंकि तुम्हें ही उनके पक्ष में सफ़ाई देनी है।

"ठीक है।" गजराज बोला—"मैं सफ़ाई दूँगा, उस बेचारे का क्या दोष। घोड़ा मुझे गिराकर शाम को ही भाग गया था। मेरा

पैर उखड़ गया है, सभी जानते हैं, यह देखो, अब भी काले-काले दाग़ बने हैं।"

"क्या अब हो सकता है ?" श्यामा बोली—"महाराज हैं नहीं, जब तक वह लौटकर आते नहीं, तब तक तुम्हारी सफ़ाई न होगी। बेचारा ख़ूबचंद तो बेमौत मरा !"

"महाराज को आने दो।" गजराज बोला—"मैं स्वयं सब कुछ बताऊँगा, फिर धीरे से विहँसता हुआ कहने लगा—"श्यामा, एक बात बताऊँ।"

"बताओ।" श्यामा ने कहा—"मगर पहले उस दिनवाली बात बता दो, तब ?"

"वही बात है।" गजराज बोला—"रेवंत ने, जानती हो, मलखान को मारने को क्यों कहा था ?"

"हाँ।" श्यामा बोली—"यही न कि कहीं यह रहस्य न खोल दे।"

"सो तो है ही।" गजराज ने धीरे से कहा—"दूसरी बात और भी है ?"

"क्या ?" श्यामा ने जिज्ञासा से पूछा।

"रेवंत कह रहे थे कि तुम्हारे पिता को कुंतीपुर-युद्ध में मारनेवाला मलखान ही था।"

"सच !" श्यामा ने आश्चर्य से पूछा—"यही था मेरे पिता का हत्यारा !"

"हाँ।" गजराज बोला—"उन्हें इसी ने धोखे से मार डाला था, और समाचार फैला दिया था कि वह शत्रु-सेना द्वारा मारे गए।"

"यह अच्छा रहा।" श्यामा बोली—"यदि यही बात पहले मालूम होती, तो मैं उस पापी के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालती।"

"श्यामा !" गजराज ने आगे कहा—"इस विषय में रेवंत के

अतिरिक्त कोई कुछ नहीं जानता था। यही कारण था कि वह तुम पर विशेष स्नेह रखते थे। जब तुम यहाँ चली आई, और परिचारिका के रूप में कार्य करने लगी, तो वह तुमसे रुष्ट भी हो गए थे।

श्यामा की पलकें अपने पिता की स्मृति में सजल हो गईं; किंतु हृदय में संतोष था। उसने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—"गजराज, साँझ हो रही है, चलूँ, क़िले की ओर!" वह उठ खड़ी हुई। गजराज अपनी कोठरी में चला आया।

छोटे राजा, संध्या होने के पूर्व ही डलमऊ अपने दल-बल-सहित पहुँच गए। महामंत्रीजी ने उनका स्वागत किया। उन्हें आदर के साथ बैठाया। सैनिकों को शिविरों में स्थान दिया। राजा डल उस समय अंतःपुर में थे। उन्हें छोटे राजा के आगमन की सूचना दी गई।

महामंत्रीजी उनसे बातें करने लगे। फिर कुशल-क्षेम पूछते हुए बोले—"छोटे राजा, महाराज आ ही रहे हैं, तब तक आप विश्राम करें।"

"नहीं महामंत्रीजी!" छोटे राजा ने कहा—"यह भी कोई समय है कि विश्राम किया जाय।" फिर हँसकर महामंत्रीजी के पोपले मुख की ओर देखकर बोले—"विश्राम तो अब आपको करने की आवश्यकता है।"

"हाँ महाराज!" महामंत्रीजी ने कहा—"वृद्ध हो चला हूँ, आपके टुकड़ों में जीवन पार हो गया। अब विश्राम की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है।"

"ठीक है।" छोटे राजा बोले—"जवानी आपने रायबरेली में बिताई, अब बुढ़ापा यहीं गंगा-तट पर काट दीजिए, अच्छा रहेगा। फिर कुछ सोचकर कहा—"कुमुदिनी कैसी है?"

"ठीक है।" महामंत्रीजी बोले—"जब से उसकी माता का देहांत हो गया है, तब से बहुत चिंतित रहती है। स्वास्थ्य भी

ख़राब हो गया है। वही एक लड़की है, उसे भी निपटा दूँ, तब राम-भजन करूँ।"

"अब तो सयानी हो गई होगी?" छोटे राजा बोले—"बचपन में तो बड़ी वाचाल थी। दिन-भर उपद्रव किया करती थी, याद है न राजदरबारवाली घटना!"

"हाँ महाराज!" महामंत्रीजी मुस्किराकर बोले—"तब बच्ची थी, अब काफ़ी गंभीर है।"

उसी समय महाराज आ गए। सब लोग उठकर खड़े हो गए। महाराज ने छोटे भाई को छाती से लगाते हुए कहा—"कहो, ठीक हो न?"

"छोटे राजा ने उनके चरणों का स्पर्श किया। सब लोग यथा-स्थान बैठ गए। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। उसे भंग करते हुए महाराज बोले—"यह रेवंत कैसे निकल गया?"

"छोटे राजा ने खेद के साथ संपूर्ण घटना आद्योपांत बताकर कहा—"जब अपने ही घर में षड्यंत्रकारी विद्यमान हों, तो एक क्या, सैकड़ों रेवंत जा सकते हैं!" इतना कहकर वह रुक गए। फिर महाराज की ओर दृष्टिपात करते हुए बोले—"खूबचंद सेना के कड़े नियंत्रण में बंदी है। गुप्तचर अब भी दौड़-धूप कर रहे हैं, किंतु घटना-क्रम स्पष्ट नहीं हो रहा है।"

"छोटे राजा!" महाराज गंभीरता से बोले—"अत्यधिक सत-र्कता की आवश्यकता है। मैं स्वयं इस घटना से परेशान हूँ, कंचुकी भी कुछ रहस्य नहीं बता रही है।"

"महाराज!" छोटे राजा ने आग में घी डालते हुए कहा—कंचुकी रानी आपकी धर्मपत्नी हैं। मैं अधिक कुछ न कहूँगा। फिर भी वह इस दुर्ग में उसी तरह पल रही हैं, जैसे नागिन! नागिन का विष तो मंत्रों से उतारा जा सकता है, मगर कंचुकी का नहीं।"

"उसका भी उतरेगा। महाराज ने आवेश में कहा—"बंदी-गृह

में अपने-आप ठीक हो जायगी।" फिर छोटे राजा की ओर देखकर कहा—"चलो, कक्ष में चलें, वहीं विचार-विमर्श होगा।"

दरबार उठ गया। दोनो भाई अंतःपुर में चले आए, और मधु-कक्ष में बैठकर बातें करने लगे। सावित्री सिर झुकाए उन्हें मदिरा का चषक भर-भर देती रही। कंचुकी के विषय में जितना अधिक-से-अधिक कहा जा सकता था, छोटे राजा ने कहा। सावित्री सब सुनती और कुढ़ती तथा मदिरा पिलाती रही। फिर बाहर आकर बैठ गई। बातों का क्रम चलता रहा। थोड़ी देर में महाराज ने सलमा की घटना का उल्लेख करते हुए छोटे राजा को बाबर सैयद का पत्र दिखाया, और पूछा—"इसका क्या अर्थ है?"

"कुछ नहीं।" छोटे राजा बोले—"यह एक राजनीतिक चाल-मात्र है। यदि आप आदेश दें, तो मैं अभी, रातोरात, कड़े का दुर्ग विध्वंस करके सलमा का डोला उठवा लाऊँ?"

"नहीं।" महाराज बोले—"यह उचित नहीं तथा धर्म-विरुद्ध भी है।"

"धर्म!" छोटे राजा ने नशे में कहा—"जब पद्मिनी एवं अर-गल की रानी के विषय में उन्होंने धर्म का पालन नहीं किया, तो हमारे सामने भी उसका बंधन नहीं है।"

"यह ठीक है।" महाराज ने कहा—"किंतु यदि हमने उन्हीं का अनुसरण किया, तो हममें और उनमें अंतर क्या रहा। इतना आवेश नहीं दिखाया जाता। जब वह तीन-चार दिनों का अवकाश माँग रहा है, तो उसे समय न देना राजतंत्र के विरुद्ध है।"

"होगा विरुद्ध।" छोटे राजा ने कहा—"यदि उसने तैयारी करके आपके विरुद्ध चढ़ाई कर दी, तब?"

"तब क्या!" महाराज बोले—"मैं तैयार हूँ। तुम भी तैयार रहना। ककोर एवं रतमान को भी सजग कर देना। हम चार भाई हैं। चार दुर्ग हैं। चार सेनाएँ हैं। भय कैसा?"

छोटे राजा और महाराज में खूब गरमागरम बातें हो रही थीं। उसी समय बड़ी रानी की परिचारिका मालती आती हुई दिखाई पड़ी। उसे अपने निकट बुलाकर सावित्री ने धीरे से पूछा—

"कहाँ चली मालती?"

"छोटे राजा को बुलाने आई हूँ।" मालती ने रुकते हुए कहा—"बड़ी रानी स्मरण कर रही हैं।"

"अभी यहीं खड़ी रह!" सावित्री बोली—"वे लोग बातें कर रहे हैं, थोड़ी देर में सूचना दूँगी। क्या काम है?"

"मैं क्या जानूँ!" मालती बैठती हुई बोली।

"मालती!" सावित्री ने गंभीरता से कहा—"मेरा एक काम है, तू करेगी?"

"करूँगी क्यों नहीं?" मालती ने कहा—"पहले काम तो बताओ?" कुछ सोचकर सावित्री बोली—"शपथ खा!"

"भगवान् की शपथ", मालती बोली—"तुम्हारे लिये प्राण तक देने को तैयार हूँ।"

"इसकी आवश्यकता नहीं।" सावित्री हँसकर बोली—"केवल छोटे राजा और बड़ी रानी की बातें तू ध्यान से सुनती रहना और मुझे बताना कि ये दोनों क्या षड्यंत्र करते हैं। जानती है कुछ?" सावित्री ने प्रश्न किया—"रेवंत को भगाया है बड़ी रानी ने, और दंड पा रही हैं कंचुकी रानी!"

"सच?" मालती ने पूछा।

"हाँ, हाँ।" सावित्री बोली—"कल वह आए थे न! बता रहे थे कि बड़ी रानी का पूरा हाथ है। मगर कहे कौन?" फिर धीरे से उसके कान में कहा—"जब यह रात-रात-भर ग़ायब रहती हैं, तब यही सब तो किया करती हैं।"

"हाँ बहन।" मालती बोली—"उस दिन कैसी दशा थी

इनकी ! हे राम ! कुछ कहा नहीं जाता । तुमसे तो ख़ूब चिढ़ी हैं ।"

"ज्ञात है ।" सावित्री बोली—"मुझे सब कुछ ज्ञात है । मालती ! छोटी रानी चूल्हे भाड़ में जायँ, और ! मुझे किसी से कोई मतलब नहीं । फिर धीरे से कहा—"ये लोग मुझे यहाँ से निकालने पर तुले हैं । बड़ी रानी का स्वभाव तू जानती ही है । वह मुझे फूटी आँखों से भी नहीं देखना चाहतीं । इसी से मैं कहती हूँ कि अगर मेरे विषय में कुछ छोटे राजा से कहें, तो अवश्य बताना ।"

"अवश्य ।" मालती ने कहा—"विश्वास रक्खो बहन ! यह तो सभी पर बीतेगी, आज तुम पर है, तो कल मुझ पर ।"

"यह तो है ही ।" सावित्री कहकर उठ खड़ी हुई । कक्ष के कपाट खोलकर महाराज से बोली—"महाराज, छोटे राजा को बड़ी रानी स्मरण कर रही हैं ।"

"अभी आया ।" कहकर छोटे राजा ने महाराज से पूछा—"यह कौन है ?"

सावित्री अब तक बाहर जा चुकी थी ।

महाराज ने कहा—"नहीं जानते, यह मेरी परिचारिका सावित्री है । तुम्हारे गजराज........।"

"हाँ-हाँ, समझ गया ।" छोटे राजा बोले—"गजराज की बहू है । यही तो शायद अभी मदिरा पिला रही थी ।"

"हाँ, यही थी ।" महाराज ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

"बड़ी सुंदर है !" छोटे राजा हँसकर बोले—"इसी से तो गजराज नित्य ही डलमऊ के लिये तैयार रहता है ।"

ये शब्द सावित्री के कान में पड़े । वह जल-भुनकर अंगार हो गई ।

छोटे राजा बड़ी रानी के कक्ष की ओर चले गए । मालती उनके साथ थी । महाराज अपने शयनागार में आकर विश्राम करने लगे ।

---

[२०]

काफ़ी रात बीत चुकी थी। क़िले में चारों ओर सन्नाटा था। केवल बड़ी रानी वासुमती के कक्ष के अधखुले द्वार से दीपक का प्रकाश चमक रहा था। मालती द्वार पर बैठी थी। उसका आधा शरीर प्रकाश में था और आधा अंधकार में। महाराज भोजन आदि से निवृत्त होकर विश्राम कर रहे थे। सावित्री ने एक थाली में भोजन परोसा, और दूसरे हाथ में पानी लिया। कक्ष का द्वार बंद किया। फिर धीरे-धीरे बंदी-गृह की ओर चली। कंचुकी बंदी-गृह में भूमि पर पड़ी थीं। उन्हें बिछाने के लिये एक चटाई दी गई थी, जिसे उन्होंने बाहर फेंक दिया था। वह पड़ी-पड़ी सोच रही थी। "एक दिन वह था, जब महाराज उसके द्वार पर स्वयं विवाह का प्रस्ताव लेकर गए थे। प्रतिज्ञा कर आए थे। तब से आज तक उसे वह प्राणों से अधिक समझते रहे। और एक दिन आज है कि उसके रूप की, उसकी योग्यता की, उसकी पावनता की कोई इज़्ज़त नहीं। वह कल तक राजरानी थी, आज बंदिनी है! बंदिनी भी ऐसी कि जिसे न भोजन मिल रहा है, न जल!" कंचुकी अतीत की स्मृतियों में डूबी थी। उसकी आँखों से अविरल अश्रु-प्रवाह हो रहा था। आँचल भीग गया था। वह सोच रही थी—"आज मैं विश्वासघातिनि हूँ! और रेवंत?" उसने अपने आप प्रश्न किया। "उसका बूढ़ा पिता आज पता नहीं, कहाँ होगा। खाने को कहीं मिला होगा या नहीं, किस झोपड़ी में उसने शरण ली होगी।" सोचते-सोचते कंचुकी का हृदय टीस उठा। वह बिलखकर बोली—

"हे भगवन्! मुझे अपने पास बुला लो! इस नरक-कुंड में अब नहीं जिया जाता।"

"छोटी रानी!" सावित्री ने अवरुद्ध कंठ से पुकारा।

"सावित्री!" कंचुकी ने सिर ऊपर उठाते हुए कहा—"मुझे मेरी हीरेवाली अँगूठी तो ला दे।"

"क्यों?" सावित्री ने आँखों में आँसू भरकर पूछा।

"मैं उसी को चूस-चूसकर प्राण दे दूँगी।" कंचुकी ने विह्वलता से कहा—"अब नहीं जिया जाता।"

"छोटी रानी!" सावित्री ने नयनों के आँसू पोंछकर कहा—"पागल न बनो, समय का फेर है। आपत्तियों से इस तरह घबराया नहीं जाता। उठो तो।"

कंचुकी उठकर बैठ गई। बोली—"सावित्री, आओ, आज मैं तुमसे कुछ गुप्त बातें करके अपने मन के अरमान निकाल दूँ। पता नहीं, कल तक जीवित रहूँ या नहीं।" कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा—"तुम कहती हो, समय का फेर है। समय का नहीं, सावित्री! बुद्धि का फेर है! भगवान् ने उस समय मेरी बुद्धि हर ली थी, जब मैं इनसे विवाह करने को तैयार हो गई थी। पिताजी कहा करते थे—"मेरी कंचुकी बड़ी साहबी है! यह भार शिवों का मस्तक ऊँचा करेगी! मेरे वंश को प्रकाश देगी....! और आज?" कंचुकी फफक पड़ी। उसने आँचल से अपना मुख छिपा लिया। हिचकियों का ताँता बँध गया। "और आज?" कंचुकी ने कातर स्वर में कहा—"मैं किसी को मुख दिखाने लायक़ न रही।

सावित्री को ऐसा लगा कि वह महाराज का गला दबोच दे। बंदी-गृह की चाभी लाकर कंचुकी को मुक्त कर दे। किंतु विवशता आँखों से आँसू बनकर फूट पड़ी। उसने बहते हुए आँसुओं को आँचल से पोंछकर कहा—"छोटी रानी!"

"कहो सावित्री !" कंचुकी बोली—"सब कुछ सुन रही हूँ, कुछ कहो तो ?"

"क्या कहूँ !" सावित्री ने कहा—"मैं नहीं समझती थी कि आपमें इतनी दुर्बलता है।"

"दुर्बलता !" कंचुकी ने उत्तर दिया—"समाज ने मुझे चकनाचूर कर दिया है सावित्री।"

"छोटी रानी !" सावित्री ने दृढ़ता से कहा—"समाज से प्रतिशोध इस प्रकार आँसू बहाकर नहीं लिया जाता। तुम आज आँसू बहाकर अपने पिता के नाम को कलंकित कर रही हो ! सोचो तो, अपने वंश के शिवनंदी, भवदात् और शिशुचंद्रदात् आदि प्रतापी राजा आज स्वर्ग में बैठे क्या सोच रहे होंगे ! क्या तुम उसी वंश की हो, जिसमें महाराज भवनाग की कन्या ने सम्राट् प्रवरसेन के लड़के गौतमीपुत्र से विवाह करके अपनी कीर्ति-पताका फहरा दी थी ! आज तुम उन्हीं के मुख पर कालिख लगा रही हो। तुम्हारी यह दुर्बलता देखी नहीं जाती। मैं नहीं समझती थी कि तुम्हारे शरीर के रक्त से भार शिवों के ओज, शौर्य एवं बलिदान की गरमाहट जा चुकी है। रानी ! तुम पड़ी-पड़ी आँसू बहाती हो, लो बहाओ ! मैं जा रही हूँ। अब यहाँ न आऊँगी !" कहती हुई सावित्री उठ खड़ी हुई।

"सावित्री।" कंचुकी ने आवेश में कहा—"मैं वही हूँ, जो थी ; मगर अब वह आदर्श नहीं रह गया। उसके केवल खँडहर शेष हैं।"

"छोटी रानी !" सावित्री ने उत्तर दिया—"खँडहरों में भी दीप जलाया जाता है। तुम अपने भग्नावशेषों को अँधेरे में न छोड़ो। उठो, यह भोजन रक्खा है ; खा लो। तुम्हें संभवतः यह पता न होगा कि जब से तुम बंदी-गृह में हो, मैंने भी अन्न-जल ग्रहण नहीं किया।" कहकर सावित्री ने भोजन की थाली खिसका दी।

उन्होंने जैसे-तैसे थोड़ा-बहुत खाया। पानी पिया। अब उनकी आत्मा कुछ शांत थी। आँसू निकल जाने से भार हलका हो गया था।

"सावित्री!" कंचुकी ने कहा—"जाओ, तुम भी कुछ खा लो। व्यर्थ में मेरे साथ अपने शरीर को कष्ट न दो। इससे तुम्हें नहीं, उस अज्ञात शिशु को तकलीफ़ पहुँचेगी, जो तुम्हारे रक्त से पल रहा है।"

सावित्री उठी नहीं। जड़वत् बैठी रही। उसने वहीं पर रानी की थाल का बचा हुआ खाना खाया। पानी पिया। और पास ही भूमि पर लेट गई। पहरेदार वीरसेन आँखों में आँसू भरे पहरा देता रहा।

जब कंचुकी आश्वस्त हो गई, तो सावित्री ने उसे सो जाने का संकेत किया। छोटे राजा के आगमन के विषय में, वह पहरेदार के भय से कुछ भी कह न सकी। लेटे,लेटे उसने वीरसेन से कहा— "भैया, मुझे यहाँ सोने की आज्ञा देते हो?"

वीरसेन कुछ न बोला। केवल हाथ से भीगी पलकें पोछकर दूसरी ओर देखने लगा।

"भोजन तो मैं महाराज की आज्ञा से लाई हूँ। सावित्री ने कहा—"यहाँ रात-भर सोने के लिये तुम्हारी आज्ञा चाहती हूँ।" कहकर सावित्री वीरसेन की ओर देखने लगी। फिर चौंककर उठ बैठी—"अरे तुम रो रहे हो?"

वीरसेन कुछ न बोला। वह टहलने लगा।

सावित्री बोली—"यह छोटी रानी का स्वभाव चाहे जो कुछ करे। सुना था, शकुंतला जब आश्रम से चली थी, तो पशु-पक्षी भी रो पड़े थे। और आज छोटी-रानी के बंदी होने पर पहरेदार भी न रोवेगा, तो कौन रोएगा?" कहती हुई सावित्री कंचुकी की

ओर देखने लगी। वह करवट बदले कुछ सोच रही थीं। सावित्री आँचल से मुख ढककर लेट गई।

वीरसेन खड़ा पहरा देता रहा।

प्रभात होते ही छोटे राजा रायबरेली की ओर चल पड़े। महामंत्रीजी ने उन्हें विदा किया। छोटे राजा ने चलते समय महामंत्रीजी को अलग बुलाकर कुछ कहा, और फिर बोले—"ककोर एवं रलमान को भी इसकी सूचना दे देना।"

"अवश्य।" महामंत्रीजी ने कहा—"यवनों का कौन विश्वास, पता नहीं, किस समय आक्रमण कर दें।"

"हाँ।" छोटे राजा ने कहा—"आप तो जानते हैं, यह शत्रुता पुरानी है।"

"मैं सब जानता हूँ। महामंत्रीजी ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

छोटे राजा उछलकर घोड़े पर सवार हो गए। सैनिक पीछे-पीछे चल पड़े। राजपथ से होकर वह क़िले की छटा देखते हुए एक प्रहर दिन चढ़ते-चढ़ते अपने दुर्ग में आ गए। यहाँ आने पर उन्होंने गजराज को बुलाकर, ख़ूबचंद के विषय में पूछ-ताछ की। गजराज ने आद्योपांत घटना बताकर कहा—"महाराज ख़ूबचंद ने जो कुछ कहा है, सत्य है। घोड़ा मुझे गिराकर भाग गया था। अब भी मेरे पैर में चोट है। संपूर्ण दुर्ग इस घटना से परिचित है। सैनिक मुझे उठाकर कोठरी तक लाए थे। उस दिन तो मैं चल-फिर भी नहीं सकता था।"

गजराज के सफ़ाई देने पर महाराज ने ख़ूबचंद को छोड़ दिया। उसे आदेश दिया कि वह परिश्रम के साथ सैन्य-संगठन करे, तथा जितने धन की आवश्यकता हो, सूचित करे। फिर गजराज की ओर देखकर कहा—"गजराज! अब तुम मेरे पत्र-वाहक न रहोगे।"

"क्यों महाराज ?" गजराज ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिये कि तुम्हारा डलमऊ का आना-जाना मैं छुड़ाना चाहता हूँ।" महाराज ने मुस्किराते हुए कहा—"सावित्री को मैं देख आया हूँ, जब तक तुम पत्र-वाहक रहोगे, किसी-न-किसी बहाने वहाँ अवश्य पहुँचोगे।"

"नहीं महाराज!" गजराज ने शरमाते हुए कहा—"बिना आपकी आज्ञा मैं कभी नहीं जाता।"

"ठीक है।" महाराज ने कहा—"अब तुम सेना में काम करो।

"जो आज्ञा।" कहकर गजराज ने सिर झुका दिया। उसे सेना की एक टुकड़ी का नेतृत्व मिल गया।

गजराज इस आदेश पर प्रसन्न भी था और दुखी भी। प्रसन्न इसलिये था कि उसकी पदोन्नति हो गई थी। दुखी इसलिये था कि सावित्री से अब बहुत कम मिल पावेगा। वह अजीब असमंजस में पड़ा था। "अब क्या होगा?" उसने अपने आप प्रश्न किया। तत्काल ही उसका चेहरा चमक उठा—"बोला, डलमऊ कोई रामेश्वरम् नहीं है, जब चाहूँगा, रातोरात पहुँच जाऊँगा। महाराज को भी ख़बर न लग पाएगी।" सोचता हुआ वह अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। रास्ते में क़िले की ओर जाती हुई श्यामा मिली। उसे रोककर उसने कहा—"श्यामा, मेरा मुँह मीठा कराओ!"

"क्यों?" श्यामा ने पूछा—"बड़े प्रसन्न हो, क्या बात है?"

"बात!" गजराज बोला—"एक नहीं, दो-दो।"

"बोलो तो", श्यामा ने प्रसन्नता से कहा।

गजराज बोला—"सुन, ख़ूबचंद जूट गया, एक! मैं सेनापति हो गया, दो!!"

गजराज ने ऐसे ढंग से कहा कि श्यामा हँस पड़ी। हँसती हुई

वह दुर्ग के भीतर चली गई, और गजराज अपनी कोठरी में चला आया।

* * *

प्रातःकाल दैनिक-क्रिया से निवृत्त हो सावित्री ने कंचुकी के लिये जल-पान बनाया। बंदी-गृह में उसे देकर वह महाराज के कक्ष में चली गई। कक्ष को उसने साफ़ किया। महाराज के स्नान का प्रबंध किया। पूजा का सामान एकत्रित कर उसे यथास्थान रक्खा। फिर वह द्वार पर आकर बैठ गई। नित्य-क्रिया से निवृत्त हो महाराज ने पुकारा—

"सावित्री!"

सावित्री उनके सामने जाकर खड़ी हो गई।

"कंचुकी ने कुछ खाया?" महाराज ने धीरे से पूछा।

"नहीं।" सावित्री ने उत्तर दिया—"कुछ भी नहीं खाया।"

"नहीं खाया, तो मरने दे!" महाराज ने क्रोध में कहा—"अब न जाना उसके पास।"

सावित्री ने प्रत्युत्तर में केवल सिर झुका दिया।

"देखता हूँ उसके स्वाभिमान को।" महाराज बोले—"चकनाचूर कर दूँगा संपूर्ण दंभ और वह हाथ में नंगी तलवार लेकर बंदी-गृह की ओर चल पड़े।

सावित्री काँप उठी। वह खड़ी हो कुछ सोचने लगी। फिर दबे-पैरों महाराज के पीछे-पीछे चली।

"कंचुकी!" महाराज ने बंदी-गृह के फाटक पर पहुँचकर पुकारा—"बोल, क्या चाहती है?"

कंचुकी रानी उठकर बैठ गई। महाराज की कर्कश आवाज़ से उसका अंतस् डोल उठा। उन्होंने पलकें ऊपर उठाकर देखा—"महाराज हाथ में नंगी तलवार लिए खड़े हैं। क्रोध से उनका

शरीर काँप रहा है, और चेहरा तमतमाया हुआ है। उनका यह रौद्र-रूप देखकर कंचुकी रानी भयभीत हो गईं। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।"

क्षण-भर कक्ष में सन्नाटा रहा। पहरेदार सतर्कता से खड़ा था।

"तेरे षड्यंत्रों से मैं ऊब चुका हूँ।" महाराज गरज उठे—"मैं आज उसका निबटारा करके रहूँगा।"

"महाराज!" कंचुकी रानी ने कातर स्वर में कहा—"मैंने कोई षड्यंत्र नहीं किया, आपको भ्रम है।"

"भ्रम है! और मुझे?" महाराज बोले—"तू छत पर चढ़कर इधर-उधर घूमती रहती थी, परिचारिकाओं से ठिठाली करती रहती थी, तब मैं कुछ न बोला, और अब तूने षड्यंत्र रचकर अपने बाप को क़िले से भगवा दिया। मलखान की हत्या करवा दी। इतने पर भी मुझे भ्रम है!"

"महाराज!" कंचुकी रानी बोलीं—"आपको सब कुछ कहने का अधिकार है, कह लीजिए। मैं तो केवल यही कहूँगी कि जिसने आपसे यह सब बताया है, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, भगवान् उसका कल्याण करें!" रही पिताजी की बात, मैंने कोई षड्यंत्र नहीं किया, और न उनके भगाने में मेरा हाथ है। आपको धोखा दिया जा रहा है।"

"धोखा?" महाराज चौंककर बोले—"धोखा तू दे रही है, जो मेरी ही छत्र-छाया में पलकर मेरे साथ विश्वासघात करती है।" फिर कुछ रुककर उन्होंने पूछा—"क्या कहती है, रेवंत को भगाने में तेरा हाथ नहीं है?"

"नहीं।" कंचुकी रानी ने दृढ़ता से कहा—"मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानती।"

"ज़बान सँभाल कर बोल!" महाराज ने आवेश में कहा—"तेरी

भेजी हुई कटार से मलखान की हत्या नहीं हुई ?" ऊपर से कहती है, मुझे धोखा दिया जा रहा है। बोल, वह कटार लेकर कौन गया था ?"

"कटार !" कंचुकी आश्चर्य-चकित होकर बोली—"यदि वह कटार मेरी बताई जाती है, तो मैं उसे देखना चाहती हूँ।"

"हाँ, दिखाऊँगा।" महाराज बोले—"मैंने उसे मँगाया है। वही तेरे षड्यंत्र का भंडाफोड़ करेगी। केवल उसके आने-भर की देर है। नहीं तो यह तलवार होगी और तेरा सिर !" मैं नहीं समझता था कि जिसे मैं दूध पिला रहा हूँ, वह नागिन है।"

"यदि आपका कथन सत्य है, तो मैं भी प्रमाण चाहती हूँ।"

"क्या कहा ?" महाराज तड़प उठे—"मैं झूठा हूँ ! तेरा यह साहस कि तू मुझे झूठा कहे ! विश्वासघातिनि !" उन्होंने अपनी तलवार बाहर खींच ली।

"महाराज !" बड़ी रानी ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"इस समय क्षमा कीजिए। हाथ-कंगन को आरसी क्या ? दो-एक दिन में प्रमाण आ ही जायगा।" कहती हुई बड़ी रानी महाराज का हाथ पकड़कर उन्हें कक्ष की ओर खींच ले गईं।

"वाह रे धर्म !" सावित्री ने व्यंग्य से कहा—"बड़ी धर्मवाली बनी है, उस दिन तेरा धर्म कहाँ था, जब वह रात-भर ग़ायब थी, और तू महाराज से झूठ बोली थी। बोल ?"

मालती मुस्किरा उठी। बोली—"वह भी धर्म ही था।"

"हाँ, हाँ, क्यों न कहे।" सावित्री ने व्यंग्य-पूर्वक कहा—"अपने स्वामी से झूठ बोलना, बहाने बाज़ी करना, उन्हें धोखा देना धर्म है। तथा अपनी सहेली से कोई बात बताना अधर्म ! बड़ा ऊँचा है तेरा आदर्श !"

मालती लजा गई। चुपचाप सावित्री के मुख की ओर देखने लगी।

"बोल ?" सावित्री ने कहा—"भगवान् की शपथ का स्मरण कर।"

"कंचुकी !" मालती बोली—"यह सब माया उन्हीं की है।"

"कैसी माया ?" सावित्री ने उसके गालों को नोचते हुए कहा—"तू अपनी माया तो बता ?"

"सुन !" मालती धीरे से बोली—"क्या बताऊँ बहन ! ये लोग बड़ा भीषण षड्यंत्र रच रहे हैं। रात-भर छोटे राजा और बड़ी रानी से कंचुकी रानी के विषय में बातें होती रहीं। दोनो ख़ूब हँसते रहे। इनके बंदी हो जाने पर वह बड़े प्रसन्न हैं।"

"तू क्या समझती है।" सावित्री बोली—"उन्हें दुःख होगा ! ये सब उनके प्राण लेने पर उतारू हैं। यह नहीं जानते कि कंचुकी रानी के ही प्रताप से क़िला रुका हुआ है। जिस दिन वह न होंगी, सब सत्यानाश हो जायगा।"

"हाँ बहन !" मालती बोली—"ये सब उन्हें मारने पर उतारू हैं। कह रहे थे, अच्छा बदला लिया।" फिर धीरे से सावित्री के कान में कहा—"कंचुकी रानी को विष देने की योजना बनी है।"

"सच ?" सावित्री ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ," मालती धीरे से बोली—"तुम्हें मेरी शपथ है, किसी से साँस न लेना। बड़ी रानी ने यह उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है।"

सावित्री ने उसके माथे पर हाथ रखकर शपथ लेते हुए कहा—"मैं किसी से न कहूँगी।" फिर गंभीर होकर बोली—"यह जानते हुए भी तू बड़ी रानी के पास खाना लिए जा रही है ?"

"क्या करूँ बहन !" मालती ने विवशता से कहा—"आज्ञा पालन करना ही पड़ता है।"

"वाह रे आज्ञा-पालन !" सावित्री ने क्रोध से कहा—"किसी

के प्राण जायँ, कोई आज्ञा-पालन करे। यदि इसी में विष मिला हो, तब ?"

मालती सिहर उठी। सावित्री ने उसके हाथ से थाली छीन कर खाना नाली में फेंक दिया। फिर ख़ाली थाली देती हुई बोली—"ले, इसे ले जा! कह देना कि खिला आई।"

मालती थाली हाथ में लेकर चल पड़ी।

"और सुन!" सावित्री ने धीरे से कहा—"उनका दिया कोई सामान छोटी रानी को न देना तथा कोई भी चीज़ न खिलाना, प्रत्युत् बाहर फेंक देना। छोटी रानी को मैं स्वयं भोजन करा दिया करूँगी। अच्छा!"

मालती सिर हिलाकर चुपके से बड़ी रानी के कक्ष में चली गई। सावित्री अपनी कोठरी में चली आई।

कोठरी के द्वार पर राधा बुआ चारपाई पर पड़ी हुई कुछ गुनगुना रही थी।

सावित्री ने धीरे से पूछा—"क्या गा रही हो बुआ ?"

"सोहर!" राधा ने हँसकर कहा—"चार-पाँच महीने बाद इसकी भी तो आवश्यकता पड़ेगी, इसलिये अभी से अभ्यास कर रही हूँ।"

सावित्री लजाकर रह गई। वह हँसकर अपनी कोठरी में चली गई। उसका जी रह-रहकर मिचला रहा था। सिर में हलका-सा दर्द था। देह टूट रही थी और मतली छाई हुई थी।

बाहर राधा बुआ गुनगुना रही थी—

"जसुदा के भए नँदलाल, बधइया बाजन लागी।"

थोड़ी देर बाद सावित्री निकली। उसका मन कुछ साफ़ हो गया था। वह राधा के पास आकर बैठ गई, और मुस्किराकर बोली—

"बुआ, मुझे भी सुनाओ!"

"क्या रे?" राधा ने हँसकर पूछा।

"वही, जो गा रही थी।"

"अच्छा, सुन।" राधा बोली—"तुझे एक नया सोहर सुनाऊँ।" और वह गाने लगी—

बंशी बजी कुंजन में, ललन खेलें मधुबन में!

सासु बुलाऊँ या माया बुलाऊँ,

माया की साध मोरे मन में!

ललन खेलें मधुबन में!

ननदी बुलाऊँ कि बहिनो बुलाऊँ,

बहिनी की साध मोरे मन में!

ललन खेलें मधुबन में!

देवरा बुलाऊँ कि भैया बुलाऊँ,

भैया की साध मोरे मन में!

ललन खेलें मधुबन में!

बंशी बजी कुंजन में, ललन खेलें मधुबन में!

सावित्री बैठी तन्मयता से सुनती रही। राधा बुआ गाती रहीं। रात का तमसावृत दुकूल धीरे-धीरे धरती ढँक रहा था।

---

[२१]

प्रातःकाल जब महाराज डल राजदरबार में आए, तो उनका चेहरा उतरा हुआ था। कंचुकी की एक-एक बात उनके हृदय में तीर की तरह गड़ गई थी। वह उस क्षेत्र के एकछत्र शासक हैं। आज तक किसी का साहस उनके सामने मुख खोलने का नहीं हुआ। बड़े-बड़े राजे-महाराजे उनके नाम से काँपते थे। चारो ओर उनकी धाक थी, किंतु आज ? कंचुकी ने उन्हें सब प्रकार से पराजित कर दिया था। वह सोच रहे थे—

"क्या कंचुकी ने सचमुच कोई षड्यंत्र नहीं किया ? रेवंत का भागना, मलखान की हत्या, कंचुकी की कटार ये सब किस बात के चिह्न हैं ? यदि उसने ऐसा नहीं किया, तो फिर यह सब करने-वाला कौन है ? क्या इस में गजराज का हाथ है ? नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता। कितना स्वामिभक्त सेवक है। गजराज और कंचुकी का संबंध कैसा ? हाँ, सावित्री माध्यम हो सकती है....।" सोचते-सोचते महाराज अपने ही विचारों में डूबने-उतराने लगे।

उसी समय एक गुप्तचर ने आकर ख़बर दी—"महाराज रेवंत का कहीं कुछ भी पता नहीं लग रहा है। थोड़ा-सा आभास यह मिलता है कि उसी दिन, रात्रि के अंतिम प्रहर में, एक व्यक्ति ने गंगा-पार किया है, किंतु केवटों का कहना है कि वह गुप्तचर था, और उसके पास राज्य-चिह्न था।"

"किसका राज्य-चिह्न !"

"महाराज का।" गुप्तचर बोला—"जब कि हममें से कोई

गंगा-पार नहीं गया। इसी से मुझे संदेह होता है कि संभवतः वह रेवंत ही है।"

"मेरा राज्य-चिह्न!" महाराज चौंके—"सभी गुप्तचर यहाँ विद्यमान हैं?"

"नहीं महाराज!" गुप्तचर बोला—"हममें से अधिकांश रेवंत की खोज में हैं। केवटों ने जो मुखाकृति जानेवाले व्यक्ति की बताई है, वैसी हमारे किसी साथी की नहीं है। यही मेरे संदेह का कारण है।"

"इस षड्यंत्र में कंचुकी का अवश्य हाथ है।" महाराज ने अब एक दूसरा प्रमाण पाकर अपने आप सोचा। फिर प्रकट रूप में गुप्तचर से कहा—"रेवंत अवश्य ही गंगा-पार निकल गया है। उसकी खोज करो। खोज में सावधानी रखना, क्योंकि दूसरे की राज्य-सीमा के अंतर्गत तुम लोगों का इस प्रकार जाना उचित न होगा।"

"जो आज्ञा!" कहकर गुप्तचर चल पड़ा।

उसके जाने के पश्चात् महाराज पुनः सोचने लगे—"मेरा राज्य-चिह्न! रेवंत को यदि मिला, तो कहाँ से मिला। क्या गुप्तचर-विभाग भी इस षड्यंत्र में सम्मिलित है।" सोचते-सोचते उनके मस्तिष्क में बिजली-सी चमक उठी। उन्होंने नंदू को बुला भेजा। नंदू काँपता हुआ महाराज के सामने आकर खड़ा हो गया।

"नंदू!" महाराज ने पूछा—"राजद्वार पर कौन पहरा देता है?"

"महाराज!" नंदू ने उत्तर दिया—"प्रवेश-द्वार पर मैं ही रहता हूँ।"

"रात में दुर्ग में किसी ने प्रवेश तो नहीं किया?"

"किया है।" नंदू ने उत्तर दिया—"गुप्तचरों का आना-जाना लगा रहता है?"

"नहीं।" महाराज बोले—"गुप्तचरों के अतिरिक्त तो कोई नहीं आया है?"

"आया है!" नंदू ने कहा—"कल गजराज आया था।"

"वह तो पत्र लेकर आया था।" महाराज ने कहा—"मेरा अभिप्राय किसी अपरिचित व्यक्ति से है।"

"नहीं महाराज।" नंदू ने कहा—"राजद्वार से तो कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं आया, अन्य स्थानों से मैं कह नहीं सकता।"

"अच्छा, जाओ।" महाराज बोले—"सतर्कता-पूर्वक कार्य करना।"

"जैसी आज्ञा!" कहता हुआ नंदू सिर झुकाकर चल पड़ा।

महाराज ने महामंत्रीजी को बुलाया। उनसे किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा गंगा-पार करने की चर्चा करते हुए बताया कि "गुप्तचर-विभाग भी संभवतः रेवंत के षड्यंत्र में सम्मिलित है, अन्यथा राज्य-चिह्न उसे कैसे प्राप्त हुआ?"

राज्य-चिह्न लेकर अज्ञात व्यक्ति द्वारा गंगा-पार जाने की घटना से महामंत्रीजी चौंक पड़े। उन्होंने तत्काल आदेश-पत्र निकाल कर सभी केवटों को राजदरबार में बुला भेजा। महामंत्रीजी ने एक एक से पूछना प्रारंभ किया। सभी इनकार करते गए। अंत में नाविक बिंदा ने बताया कि उस दिन रात्रि में एक व्यक्ति गंगा-पार गया है, और मैंने उसे उतारा है।

"कितनी रात को गया है?" महामंत्रीजी ने पूछा।

"अंतिम प्रहर में।"

"उसके साथ और कोई था?"

"नहीं," बिंदा ने कहा—"वह नितांत अकेला था।"

"आयु क्या थी?"

"वयोवृद्ध था।"

"मुखाकृति ?" महामंत्रीजी ने लंबी साँस छोड़ते हुए पूछा।

"मैं नहीं बता सकता।" बिंदा बोला—"अँधेरा था, मैं पहचान न सका।"

"फिर तुमने उसे उतारा क्यों ?" महामंत्रीजी ने क्रोध से पूछा।

"महाराज, बिंदा बोला—"उसके पास गुप्तचरों का राज्य-चिह्न था। मैं उतारने के लिये विवश था।"

महामंत्रीजी चुप हो गए। उन्होंने केवटों को जाने का आदेश दिया। फिर महाराज से जाकर बताया कि "रात्रि के अंतिम प्रहर में गंगा-पार करनेवाला व्यक्ति रेवंत ही है तथा इस षड्यंत्र में क़िले के विश्वासपात्र भी सम्मिलित हैं।"

"हाँ", महाराज ने कहा—"यह सब रहस्य कुछ समझ में नहीं आ रहा है। उसकी छान-बीन कीजिए। यदि गुप्तचर-विभाग भी इस प्रकार षड्यंत्र में सम्मिलित रहा, तब तो राज्य-कार्य चलना असंभव है। रेवंत का राज्य-चिह्न प्राप्त करना और इस प्रकार निकल जाना एक अभूत पूर्व घटना है। मेरी समझ में नहीं आता कि राज्य-चिह्न उसे कैसे मिला !"

उन्हें संभवतः इस बात का स्मरण नहीं था कि जब वह कंचुकी से प्रथम बार मिले थे, तो यह राज्य-चिह्न उसे केवल इसलिये दे आए थे कि उसके संदेश-वाहकों को कोई कष्ट न हो। यद्यपि कंचुकी ने कभी कोई संदेश-वाहक नहीं भेजा, फिर भी यह राज्य-चिह्न तो उसके पास सुरक्षित ही रहा। जिसे महाराज ने न कभी वापस माँगा और न कंचुकी ने दिया ही।

महाराज और महामंत्रीजी बातें कर ही रहे थे कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी—"महाराज, एक मर्द और एक औरत आपके दर्शन करना चाहते हैं।"

"मर्द और औरत ?" महाराज ने विस्मय से पूछा।

"हाँ महाराज!" द्वारपाल बोला—"एक मर्द है, जो संभवतः यवन प्रतीत होता है तथा उसी के साथ एक औरत भी है।"

"कहाँ से आए हैं?" महाराज ने कुछ सोचते हुए प्रश्न किया।

"कड़े से!" द्वारपाल बोला—"औरत कोई नर्तकी-सी प्रतीत होती है।"

"भेज दो।" महाराज ने कड़े का नाम सुनते ही उन्हें बुला भेजा। फिर पूछा—"क्यों आए हैं?"

"यह कुछ नहीं बताते।" द्वारपाल बोला—"कह रहे हैं, हम केवल महाराज से बतावेंगे।"

"अच्छी बात है।" महाराज बोले—"उन्हें आदर के साथ बुला लो! फिर महामंत्री जी की ओर देखते हुए पूछा—"ये बाबर सैयद के दूत तो नहीं हैं?"

"आने दीजिए।" महामंत्रीजी ने उत्तर दिया—"अपने आप पता लग जायगा।"

तब तक द्वारपाल ने दोनो को लाकर खड़ा कर दिया, और स्वयं सिर झुकाकर वापस चला गया।

महाराज ने ध्यान से देखा—"सामने फटी शेरवानी तथा गंदा पायजामा पहने और तुर्की टोपी लगाए एक व्यक्ति खड़ा है; जिसकी दाढ़ी एवं मूछों में इने-गिने थोड़े-से बाल हैं। उसी के पीछे एक नवयुवती खड़ी है, जो गरारा पहने है, और गुलाबी रंग की ओढ़नी से अपना सिर ढके हुए नीचे की ओर देख रही है।"

महाराज ने उन्हें ग़ौर से देखकर पूछा—"तुम्हार नाम?"

"जी, लोग मुझे जुम्मन कहते हैं, और इसका भी बताऊँ?" जुम्मन ने पीछे खड़ी हुई लड़की की ओर संकेत करते हुए कहा—"इसका नाम है ज़ुबेदा।"

महाराज विहँस उठे। बोले—"जुम्मन और ज़ुबेदा! तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?"

"यह मानिकपुर से आ रही हैं और मैं कड़े से।" जुम्मन ने आँखें मटकाते हुए उत्तर दिया।

"यहाँ कैसे आए?" महामंत्री जी ने जुम्मन से प्रश्न किया।

"यहाँ!" जुम्मन उनके पोपले मुख की ओर देखकर बोला—"यहाँ आए हैं गंगा नहाने!"

"क्या कहा?" महामंत्रीजी ने तेवर बदलते हुए पूछा। जुम्मन सिटपिटा गया, बोला—"जी, गंगा तो वहाँ भी हैं, मगर ऐसा मेला नहीं लगता, जैसा यहाँ कतिकी का लगता है।" इतना कह वह महाराज की ओर देखते हुए बोला—"जहाँपनाह की भी बहुत तारीफ़ सुनी थी, सोचा, मेला भी देख आऊँ और दीदार भी कर आऊँ?"

"अच्छा, तो अब हो गया दीदार?" महामंत्रीजी ने उसकी बेतुकी बातों से खीझकर कहा—"भग यहाँ से।"

जुम्मन ने एक बार महामंत्रीजी की ओर देखा, फिर महाराज से कहा—"परवरदिगार, कुछ इनाम मिल जाय।"

"चल-चल!" महामंत्रीजी ने फटकारा—"जब जाने लगना, तो ले लेना। कुछ हुनर भी जानता है?"

"जी हाँ!" जुम्मन ने तपाक से कहा—"दिखाऊँ?"

"दिखा!" महामंत्रीजी बोले।

जुम्मन ने कमर पर हाथ रखकर उसे लचकाते हुए कहा—

"डालन-रिसि की डलमऊ, सुरसरि-तीर निवास;
तहाँ चचा जुम्मन खड़े, करि भोजन की आस!'

फिर अपना पेट खोलकर बोला—"महाराज, हुनर क्या दिखाऊँ,

कई दिनों से खाना नहीं मिल पाया। किसी को देख-देखकर जीता हूँ!"

जुम्मन ने ऐसी अदा से कहा कि ज़ुबेदा शरमा कर रह गई। उसने मुख पीछे की ओर फेर लिया।

"किसको?" महामंत्रीजी ने गुस्से से पूछा।

"इसी शेरवानी को!" जुम्मन ने शेरवानी का पल्ला हाथ में लेते हुए उत्तर दिया।

महाराज जुम्मन की प्रत्युत्पन्नमति पर मुस्किरा उठे। उन्होंने प्रतिहारी को बुलाकर कहा—"इसके भोजन का प्रबंध करवा दे।"

"रहने का भी।" जुम्मन बोला—"परवरदिगार, खाना खाने के बाद जुम्मन से चला नहीं जाता।"

"चल हट!" महामंत्रीजी ने फटकारा और जुम्मन सलाम बजा कर चलता बना।

महाराज बैठे मुस्किराते रहे।

बाहर निकलकर जुम्मन ने प्रतिहारी से कहा—"यार, मेरे साथ जनाना है, कहीं रहने का इंतज़ाम करवा देना, नहीं तो सर्दी लग जायगी!"

द्वारपाल ने राधा बुआ के पासवाली कोठरी जुम्मन के लिये खोल दिया। जुम्मन ने अंदर घुसकर कोठरी का निरीक्षण करते हुए कहा—"सुनिए जनाब!"

"क्या?" द्वारपाल ने पूछा।

"सिर्फ़ कोठरी से काम न चलेगा।" जुम्मन ने कड़ककर कहा—"दो चारपाई, दो बिस्तरे, दो पत्तलों में खाना! क्या समझे?"

"मैं और कुछ न दूँगा!" द्वारपाल बोला—"केवल खाना मिलेगा।"

"कुछ पता है?" जुम्मन ने उत्तर दिया—"मैं शाही मेहमान

हूँ, तुम्हें सब कुछ करना पड़ेगा। महाराज की इजाज़त है। महज़ खाने से काम न चलेगा, कुछ और भी चाहिए ?"

"पीते भी हो ?" द्वारपाल बोला—"खाने के साथ वह भी मिल जायगी !"

"या ख़ुदा !" जुम्मन ने मुहँ बनाते हुए कहा—"हमारे मजहब में शराब पीना गुनाह है। हम लोग छूते तक नहीं, कुछ बिगड़े-दिल मुसलमान पी लेते हैं। फिर कुछ रुककर कहा—"जैसे सैयद साहब, सलीम साहब और ज़ुबेदा के अब्बा !"

"देखोजी !" द्वारपाल ने कहा—"मैं भाषण नहीं सुनना चाहता। यह बताओ, महाराज ने कब आज्ञा दी है ?"

"तुम्हारे आने से पहले !" कहता हुआ जुम्मन बाहर निकल आया। द्वारपाल चला गया। राधा बुआ चारपाई पर बैठी बैठी जुम्मन की ओर बड़े ध्यान से देख रही थीं। सावित्री की कोठरी में ताला झूल रहा था।

जुम्मन की निगाह राधा पर पड़ी। वह थिरक उठा। राधा की ओर उँगली उठाकर ज़ुबेदा से बोला—"देख ज़ुबेदा, इधर तो देख ! तेरी खाला बैठी है।" फिर आँखें मटकाकर कहा—"ख़ुदा ने अपनी सारी मेहनत इन्हें हुस्न देने में ख़र्च कर दी है। कितनी हसीन औरत है।"

"क्या कहा ?" राधा ने चारपाई से उठते हुए कहा—"दाढ़ीजार, मुझे खाला बना रहा है !"

"नहीं, नहीं।" जुम्मन बोला—"आपको नहीं, मैं इसे कह रहा था।" उसने ज़ुबेदा की ओर इशारा करके कहा—"कितनी हसीन औरत है, इसकी खाला भी ऐसी ही थी।"

"राधा बुआ चुप हो गईं। किंतु उनकी शंका मिटी नहीं।

उन्होंने आते हुए प्रतिहारी से पूछा—"हे बिहारी भैया, खाला किसे कहते हैं ?"

"मैं क्या जानूँ बुआ, सावित्री से पूछो !" विहारी ने चारपाई रखते हुए उत्तर दिया।

राधा ने पीछे की ओर मुख मोड़कर देखा। सावित्री अपनी कोठरी का ताला खोल रही थी। राधा ने सावित्री से पूछा—"हे सावित्री बिटिया, खाला किसे कहते हैं ?"

"मैं अभी बताती हूँ।" जुम्मन बोला—"ज़रा चारपाई तो बिछा लूँ।"

सामने जुम्मन और ज़ुबेदा को देखकर सावित्री विस्मय में पड़ गई। वह कोठरी का द्वार खोलकर लौट आई और राधा से पूछने लगी—"बुआ, ये कौन हैं ?"

"मैं क्या जानूँ !" राधा बोली—"यह, यह जो खड़ा है कलूटा, मुझे खाला कह रहा था !"

सावित्री खड़ी-खड़ी मुस्किराती रही। जुम्मन मियाँ चारपाई बिछा कर बैठ गए। थोड़ी देर में भोजन आ गया। जुम्मन और ज़ुबेदा दोनों ने डटकर खाना खाया, पानी पिया, और फिर बैठकर गप्पें लड़ाने लगे।

राधा बुआ थोड़ी देर तक पड़ी-पड़ी सोचती रहीं। ये कौन हैं ? यहाँ क्यों आए हैं, आदि-आदि। नाना प्रकार के प्रश्न उनके दिमाग़ में उठते रहे। जब एक भी शंका का समाधान न हुआ, तो वह सावित्री की कोठरी की ओर चलीं। सावित्री भोजन कर रही थी। उसने राधा को देखकर कहा—"आओ बुआ, कैसे कष्ट किया ?"

"सावित्री," राधा ने आँखें मटकाते हुए कहा—"ये तुरुक कहाँ आए हैं ?"

"मैं क्या जानूँ ?" सावित्री बोली—"तुम्हारे तो पड़ोसी हैं, पता नहीं लगाया ?"

"नहीं बिटिया !" राधा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"यह दाढ़ीजार बड़ा दुष्ट है। फिर धीरे से कहा—"इसके साथ एक लड़की भी है, जवान है, पता नहीं, कहाँ से भगा लाया है।"

"होगी !" सावित्री बोली—"अपने से क्या मतलब !"

"मतलब क्यों नहीं है। मैं अभी जाकर पूछती हूँ।" और वह अपना डंडा सँभालकर चलने लगीं।

"नहीं बुआ !" सावित्री ने कहा—"मैं भोजन कर चुकी हूँ, पता लगाए लेती हूँ।"

साँझ हो चुकी थी और कुछ-कुछ अँधेरा बढ़ने लगा था। आकाश में यत्र-तत्र दो-चार तारे दिखाई पड़ रहे थे। सावित्री धीरे-धीरे जुम्मन की कोठरी की ओर चली। जुम्मन मियाँ उस समय ग़ायब थे। वह फाटक पर बैठे हुए नदू से बातें झल रहे थे। कोठरी में ज़ुबेदा अकेली ही थी। सावित्री ने झाँककर देखा। कोठरी में अँधेरा था। वह वापस लौट आई और दीपक लेकर ज़ुबेदा की कोठरी में जा पहुँची। प्रकाश देखकर ज़ुबेदा उठ खड़ी हुई। सावित्री ने दीपक रखकर कहा—"बैठो।"

ज़ुबेदा बैठ गई। सावित्री थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बोली—"आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ?"

"कड़े से।" ज़ुबेदा ने अपनी बड़ी-बड़ी मासूम आँखों से सावित्री की ओर देखकर कहा—"मैं बाबर सैयद की नौकरानी हूँ, उन्हीं के हरम में रहती हूँ।"

"और यह ?" सावित्री ने पूछा—"जो आपके साथ है ?"

"यह मेरा भाई है।"

"यह भाई-बहन की जोड़ी कहाँ विचर रही है ?" सावित्री ने

ज़ुबेदा के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए हँसकर पूछा—"मैं तो समझ रही थी, यह आपका आदमी है।"

"नहीं बहन।" ज़ुबेदा ने लजाकर उत्तर दिया—"मेरी शादी अभी नहीं हुई।"

"क्यों?" सावित्री ने आश्चर्य से कहा—"क्या तुम लोगों के यहाँ बुढ़ापे में शादी होती है?"

"नहीं।" ज़ुबेदा संकोच से बोली—"ऐसी बात तो नहीं है, ग़रीबी चाहे जो कुछ करे।" फिर गंभीर होते हुए कहा—"तुम तो यहाँ क़िले में हो?"

"हाँ," सावित्री बोली—"मैं महाराज की प्रमुख परिचारिका हूँ।"

"परिचारिका क्या?" ज़ुबेदा ने अनभिज्ञता से पूछा—"परिचारिका लौंडी को कहते हैं।"

"हाँ", सावित्री बोली।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम सावित्री है।" उसने हँसकर कहा—"और तुम्हारा?"

"मेरा नाम है ज़ुबेदा।"

सावित्री ने एक बार पुनः ज़ुबेदा की ओर देखा। फिर पूछा—"यहाँ आई कैसे?"

"महाराज के पास आई हूँ," ज़ुबेदा ने कहा—"ख़त लेकर!"

"किसका ख़त?"

"सलमा का।"

"सलमा!" यह नाम सावित्री को स्मरण हो आया। उस दिन छोटे राजा और महाराज किसी सलमा के बारे में बातें कर रहे थे। फिर उसने ज़ुबेदा से पूछा—"यह सलमा कौन है, इसका और महाराज का क्या संबंध है?"

"यह महाराज जानते हैं।" ज़ुबेदा ने धीरे से कहा—"सलमा हमारे सूबेदार बाबर सैयद साहब की लड़की है। उसी ने चोरी से मुझे ख़त देकर महाराज के पास भेजा है।"

"तुम्हें सलमा ने भेजा है ?"

"हाँ, ज़ुबेदा ने ख़त दिखाते हुए कहा—"इसे महाराज के पास पहुँचाना है, वह जैसा कहें, किया जाय, पता लगा लो।"

"मैं अभी आई।" कहती हुई सावित्री बाहर निकल गई।

राधा बुआ अपने द्वार पर खड़ी हुई सावित्री की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे आते देखकर बोलीं—"हे सावित्री बिटिया, पता लगा, खाला किसे कहते हैं ?"

"हाँ बुआ," सावित्री बोली—"पता लग गया।"

"क्या पता लगा ?" राधा ने पूछा—"किसे कहते हैं ?"

"बिल्ली को !" सावित्री बोली—"समझ गई न।"

"क्या कहा ?" राधा ने आश्चर्य से पूछा—"वह कलूटा मुझे बिल्ली बना रहा था !"

"नहीं बुआ।" सावित्री बोली—"बिल्ली तो मौसी होती है, बुआ नहीं।" वह हँसती हुई क़िले के भीतर चली गई। राधा आश्चर्य एवं विस्मय से खड़ी रही।

मधु-कक्ष में दीपक जल रहा था। मदिरा की सुराही और सुरा-चषक यथा-स्थान रक्खे थे। महाराज बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। सावित्री ने धीरे से कपाट खोला। महाराज की तंद्रा टूटी। उन्होंने सावित्री को देखकर मुस्किराने का प्रयत्न करते हुए कहा—

"सावित्री तू नहीं रहती, तो मधु-कक्ष सूना-सूना लगता है।"

सावित्री के अधरों पर मुस्कान दौड़ गई। उसने मदिरा भरकर चषकमहाराज की ओर बढ़ा दिया।

जब महाराज पीने लगे, तो सावित्री ने कहा—"महाराज, ज़ुबेदा एक गुप्त-पत्र लेकर आई है।"

"किसका पत्र ?" महाराज ने मदिरा का घूँट पीकर पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानती।" सावित्री बोली—"कह रही थी, सलमा का पत्र है।"

"सलमा का ?" महाराज चौंक पड़े ! उन्होंने सुरा-चषक चौकी पर रखते हुए पूछा—"कहाँ है वह पत्र ?"

"उसी के पास है।" सावित्री बोली—"मुझे दिया नहीं, कह रही थी, केवल महाराज को दूँगी। संभवतः वह चोरी से आई है।"

महाराज क्षण-भर मौन रहे। "सलमा का पत्र है ? चोरी से आया है ?" फिर उन्होंने प्रकट रूप में कहा—"सावित्री, उसे यहीं बुला ला।"

सावित्री कुछ सोचती हुई बाहर निकल गई। जब वह वापस आई, तो ज़ुबेदा उसके पीछे-पीछे थी। सावित्री मधु-कक्ष में ज़ुबेदा को लेकर चली आई। ज़ुबेदा ने महाराज को झुककर सलाम किया। महाराज उसे प्यासी आँखों से देखने लगे। सावित्री बाहर चली गई।

"बैठो।" महाराज ने कहा।

ज़ुबेदा ने पत्र निकालकर महाराज को दे दिया और स्वयं एक ओर खड़ी हो गई।

पत्र हाथ में आते ही महाराज की छाती धड़क उठी। काँपते हाथों से उन्होंने पत्र खोला। मोती-जैसे सुंदर-सुंदर अक्षर चमक उठे। महाराज थोड़ी देर तक हस्त-लिपि देखते रहे। फिर पढ़ने लगे—

"मेरे शबे-ग़म के चाँद !

तुम उस दिन अचानक मेरी ज़िंदगी में चमक उठे। मगर मैं

आँखें भरकर तुम्हें देख न सकी। पूछोगे कैसे? इसका मैं कौन-सा जवाब दूँ? जबकि मेरी निगाहों में सियाह-पर्दा पड़ा हुआ था। हुस्न की मग़रूरी को उस हिलाल-ए-आरज़ू की किरणें रोशनी न दे सकीं। मैं अपने आप में डूबी रही। गंगा की मौजे मेरे पैरों को धोती रहीं। चीखती रहीं। चिल्लाती रहीं। मगर मेरी आँख न खुली। मैं बेहोशी में तुम्हें बहुत कुछ कह गई। और, तुमने मुस्किराते हुए सब कुछ सुन लिया। इसे मैं गर्दिश-ए-दौरा के सिवा क्या कहूँ? जिसने फूलों के गजरे की जगह पर मेरे हाथ में कटार पकड़ा दिया। मैंने तुम्हें चुनौती दी। तुमने उसे क़बूल कर लिया। मगर उस चुनौती को मंज़ूर करनेवाले ज़ालिम! तुमने कुछ नहीं सोचा और मेरी कलाई मरोड़कर कटार छीन ली। कलाई कसमसा उठी। उसी कसमसाहट में हुस्न की मग़रूरी, दिल के सामने मात खा गई। जिसे तुम समझ नहीं सके। समझते भी कैसे? तुम्हारी छाती में तो तूफ़ान उठ रहा था। राजा ठहरे न? एक सूबेदार की लड़की के दिल की बात क्या जानो! मेरी ज़िंदगी को झकझोरकर तुम चले गए। मैं घायल पंछी की तरह तड़पती रही। तुम्हारी एक-एक बात मेरी ज़िंदगी के अब्र पर घटा की तरह छाई हुई है। रात के सन्नाटे में, जब सैकड़ों मुस्किराहटों के साथ, शबे-ग़म मेरी पलकों में बरसात बनकर आती है, तब मैं देखती हूँ कि उसी तंबू में, दरियाए-गंगा के किनारे मेरी हसरतों की चिता जल रही है और तुम खड़े मुस्किरा रहे हो। ज़ालिम! क्या तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं हैं। तुम्हारे दिल में दर्द नहीं है? अगर है, तो अपने चमन की किसी डाल पर मुझे एक घोंसले की जगह दो, जिससे मैं तुम्हारे दर्द को, तुम्हारे आँसुओं को तुम्हारे पास रहकर पीती रहूँ।

"तुम्हें अपने इस चमन की बुलबुल की तलाश हो या न हो,

मगर बुलबुल बू-ए-गुल की तलाश में बेताब है। बोलो, मैं तुमसे वह टहनी पूछ रही हूँ, जहाँ अपने दर्दे-दिल के तिनकों से नशेमन बनाकर तुम्हें देख सकूँ !

"क्या लिखूँ, कुछ भी लिखा नहीं जा रहा। तुम्हारा याद नाम आते ही हसरतों के फूल खिल उठते हैं। उम्मीदों का चमन महक उठता है। उसकी ख़ुशबू तुम्हारे पास तक जाती हो या न जाती हो, मगर जो आग सुलगाकर तुम गए हो, उसकी तपन का असहाय तुम्हें भी होगा। इसी उम्मीद पर जी रही हूँ।

"ख़त का जवाब सिर्फ़ ज़ुबेदा के ही हाथों में देना। नहीं तो राज़ खुल जाने का अंदेशा है।

तुम्हारी याद में बेताब
सलमा"

पत्र समाप्त करते-करते महाराज स्वयं बेताब हो गए। ज़ुबेदा बैठी-बैठी उनके चेहरे की भाव-भंगिमा का अध्ययन करती रही। महाराज ने एक बार सहमी निगाहों से ज़ुबेदा की ओर देखा। फिर उसे जाने का संकेत किया। ज़ुबेदा सावित्री के साथ अपनी कोठरी में चली गई।

महाराज पड़े-पड़े सोचते रहे। सलमा का मादक रूप उनकी आँखों में झूमता रहा।

"बड़ी-बड़ी नशीली आँखें, चमकता हुआ चेहरा, उभरे हुए पुष्ट अवयव, बिखरी हुई केश-राशि !" क्या सलमा सचमुच मुझसे प्रेम करती है ?" महाराज ने अपने आप प्रश्न किया।

यदि ऐसी बात न होती, तो इस प्रकार छिपाकर पत्र भेजने की क्या आवश्यकता थी ? वह विस्मय में पड़ गए। "क्या मेरी क़ब्र पर ईद मनानेवाली सलमा का हृदय इतना कोमल है ?" कहाँ

उसका वह तमतमाता हुआ क्रोध-भरा चेहरा, कहाँ यह तड़पन ! कहाँ वह खुली चुनौती, कहाँ यह आत्म-समर्पण !"

वह सोचते रहे। उठते रहे। बैठते रहे। करवटें बदलते रहे और पत्र बार-बार पढ़ते रहे।

गगन में पूर्णिमा का चाँद हँसता रहा।

आज कार्त्तिक-पूर्णिमा थी। डलमऊ का पर्व-दिवस ! "राजपथ पर दूर-दूर से आए हुए स्नानार्थियों की भीड़ रात-भर 'गंगा-मैया की जय !' बोलती हुई चलती रही। शोर-गुल होता रहा। बैल-गाड़ियों की आवाज़ आती रही। बैलों के घुँघरू छमछमाते रहे। लोक-गीतों का सामूहिक स्वर गूँजता रहा। डलमऊ तीर्थ बन रहा था। उधर महाराज का हृदय अपने आप में आंदोलित होता रहा। उन्हें रात-भर नींद न आई।

उनकी आँखों में सलमा का रूप झूल रहा था।

---

[२२]

बड़ी रानी वासुमती अब नित्यप्रति कंचुकी के पास बंदी-गृह में आतीं ; प्रहरों बैठी रहतीं, और सब प्रकार से सहानुभूति दिखातीं। कंचुकी भी उनसे प्रभावित हो रही थी। वह आकुलता से उनकी प्रतीक्षा किया करती। उनके आने पर वह भी उठकर बैठ जाती। बातें करती। बातों से उसे संतोष मिलता। बंदी-गृह की यातना से उसका मुख पीला पड़ गया था। अनवरत अश्रु बहाते-बहाते आँखें निस्तेज होने लगी थीं। अंतस् में महान् पीड़ा छिपाए वह जी रही थीं। बड़ी रानी की सहानुभूति ने उस पर विजय पाई। वह उनसे दुख के दिनों में घुल-मिल गई।

सावित्री सतर्कता से बड़ी रानी के हर क़दम पर दृष्टि रखती। मालती प्रतिदिन भोजन लेकर आती और बाहर फेंककर चली जाती। सावित्री को उस भोजन पर विश्वास न था। वह स्वयं अपने हाथ से छोटी रानी को भोजन कराती। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। बड़ी रानी समझतीं, कंचुकी का विश्वास प्राप्त हो रहा है। कंचुकी समझती, बड़ी रानी बड़ी दयालु हैं, प्रतिदिन चोरी से भोजन भेज देती हैं। केवल श्यामा और सावित्री ही इस रहस्य को समझती रहीं।

संध्या हो रही थी। बड़ी रानी कंचुकी के पास बंदी-गृह के द्वार पर बैठी हुई मीठी-मीठी बातें कर रही थीं। कंचुकी ने अत्यंत दीनता से कहा—"बहन, ये सब मेरे पूर्व जन्म के पाप हैं, जिन्हें यहाँ भोग रही हूँ।"

"नहीं बहन।" बड़ी रानी ने उत्तर दिया—"व्यर्थ में निराश

होने की कोई आवश्यकता नहीं। जब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हें कोई कष्ट न होने पाएगा। हाँ, तुम्हें बंदी-गृह से मुक्त कराना मेरे वश की बात नहीं, फिर भी मैं प्रयत्न कर रही हूँ, और महाराज से मेरी वार्ता चल रही है।"

"भला सोचो बहन!" कंचुकी ने कातर हृदय से कहा—"मेरा क्या अपराध! पिताजी भगे कहाँ से, मारा कौन गया और परिणाम मैं भोग रही हूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि महाराज को किसी ने धोखा दिया है।"

"हो सकता है।" बड़ी रानी ने कहा—"पुरुषों में यही तो दोष होता है। फिर राजाओं में ? यदि वे कहीं कान के कच्चे हुए, तो बड़ी कठिनाई पड़ जाती है। जहाँ तक तुम्हारे संबंध की बात है, मेरा विश्वास है, यह तुम्हारा भ्रम-मात्र है। तुमसे किसी से कोई शत्रुता तो है नहीं, फिर षड्यंत्र कौन करेगा ?"

"मनुष्य की कौन गणना ?" कंचुकी ने लंबी साँस छोड़कर कहा—"जब स्वयं भगवान् ही रुष्ट हों, तो मनुष्य का शत्रु हो जाना स्वाभाविक ही है। यदि तुम इतनी कृपा न करतीं, तो मैं यहाँ भूखों मर जाती।"

"कृपा!" बड़ी रानी मुस्किराईं—"यह तो मेरा धर्म है। तुम मेरी छोटी बहन ही तो हो ?"

"दिन-भर में केवल एक बार तुम्हारा दिया हुआ भोजन मिलता है।" कंचुकी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"संपूर्ण दिन रोते-रोते बीतता है, न कोई पानी को पूछता है, न खाने को!"

"छोटी रानी", वासुमती ने स्नेह से कहा—"मैं अपना कर्तव्य कर रही हूँ, मुझे अधिक लज्जित न करो।" कहती हुई वह कंचुकी की ओर देखकर बोलीं—"तुम्हारे पास तक भोजन पहुँचाने में महाराज की आँख भी बचानी पड़ती है। यदि कोई देख ले, तो

मेरी भी कोई दशा शेष न रहे। फिर कुछ रुककर कहा—"खाना आने में तो काफ़ी देर है, कहो, तो थोड़ा-सा दूध भिजवा दूँ?"

"नहीं बहन।" कंचुकी ने कहा—"ऐसी कोई आवश्यकता नहीं।"

"पी लो!" बड़ी रानी ने कहा—"जल-पान का समय तो बीत रहा है—"कहती हुई वह खड़ी हो गईं। चलते-चलते बोलीं—"मैं लिए आती हूँ, अभी महाराज कक्ष से बाहर नहीं निकले!"

कंचुकी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

बड़ी रानी उठीं, और अपने कक्ष में चली गईं। उन्होंने मालती से दूध मँगवाया। जब मालती दूध रखकर चली गई, तो बड़ी रानी ने कक्ष के कपाट बंद कर लिए। अपनी संदूक़ खोलकर उन्होंने एक शीशी निकाली। उसे हाथ में लेकर वह ध्यान से देखने लगीं। फिर अचानक चौंक पड़ीं। उन्हें ऐसा लगा, मानो कोई पीछे से खड़ा देख रहा है। उन्होंने कक्ष की जंज़ीर बंद कर ली। काँपते हाथों से शीशी का ढक्कन खोल एक बार पुनः द्वार की ओर देखा। उनके शरीर में प्रकंपन हुआ। हृदय धकधकाने लगा। हाथ हिले, रुके, फिर हिले और शीशी से कुछ बूँदें दूध के कटोरे में गिर पड़ीं। उसी समय बाहर 'खट' की-सी आवाज़ हुई। वह चौंक पड़ीं। "किसी ने देख तो नहीं लिया?" उन्होंने ज़ोर से पुकारा—"मालती!" उनकी छाती धड़क रही थी।

कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने द्वार खोलकर देखा, मालती ग़ायब थी। बड़ी रानी ने संतोष की साँस ली। "बड़ा अच्छा हुआ, जो यहाँ नहीं है।" उन्होंने कटोरा उठाकर आँचल की छोर से छिपाया। कक्ष का द्वार बंद किया। इधर-उधर देखा, और फिर वह बंदी-गृह की ओर चल पड़ीं।

बंदी-गृह की ओर वह जा रही थीं। उनके पैर काँप रहे थे।

छाती धड़क रही थी। आँखें चारो ओर दृष्टिपात कर रही थीं और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थीं।

कंचुकी के निकट पहुँचकर वह बैठ गईं। उन्होंने एक बार बंदिनी कंचुकी के भोले मुख की ओर निहारा। उसकी भोली-भाली मासूम आँखें उनकी ओर देख रही थीं। कृशकाय एवं पावन शरीर में आत्मविश्वास झलक रहा था। वह देवकन्या-सी बैठी थी। बड़ी रानी की आत्मा डोल उठी।

"क्या मैं इसके प्राण ले लूँ!" उन्होंने अपने आप प्रश्न किया। शरीर सिहर उठा। "यदि भेद खुल गया, तो?" दुनिया क्या कहेगी........!"

"यह कंचुकी! भोली-भाली कंचुकी!" उन्होंने एक बार फिर कंचुकी की ओर देखा। उनके चेहरे पर कठोरता दौड़ गई। हृदय पत्थर बन गया—"इसी ने तो मेरी प्रतिष्ठा को मटियामेट किया है। जब से यह आई है, दुर्ग में मेरा कोई सम्मान नहीं रह गया है। मैं अपने पथ के इस काँटे को, जीवन की इस विडंबना को, बिना मसले न रहूँगी........।"

उन्होंने आँचल के नीचे से कटोरा निकाला। इधर-उधर दृष्टिपात किया। कोई दृष्टिगोचर न हुआ। फिर काँपते स्वर में कहा—"लो बहन, थोड़ा-सा दूध पी लो। भोजन में अभी देर है, कब तक भूखी रहोगी।" कहते-कहते उनकी छाती में झंझा डोल उठी। माथे पर पसीना छलक आया।

कंचुकी ने अपना हाथ बढ़ाकर कटोरा पकड़ लिया। वह उसे होठों से लगाने ही जा रही थी कि एक कड़कती आवाज़ आई—ख़बरदार!

कंचुकी चौंक पड़ी। बड़ी रानी काँपकर रह गईं!

सावित्री सामने खड़ी थी। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था,

और वह कह रही थी "ख़बरदार! छोटी रानी, कटोरा वहीं रख दो। इस दूध को होठों से न लगाना।"

कंचुकी का शरीर काँप उठा। उसने विस्मय से सावित्री की ओर देखते हुए कटोरा वहीं रख दिया।

"तुम्हारा यह साहस!" सावित्री बड़ी रानी की ओर देखकर बोली—"एक तो वह ऐसे ही बंदी-गृह में पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं, ऊपर से तुम उनके प्राण लेने आई हो। तुमसे यह आशा न थी।" कहते-कहते सावित्री का मुख लाल हो गया।

बड़ी रानी उठ खड़ी हुईं। कंचुकी कभी सावित्री की ओर, कभी कटोरे की ओर देखती रही। सावित्री ने आवेश में कहा—"इस कटोरे को अलग फेंक दो छोटी रानी! इसमें विष मिला है विष।" फिर बड़ी रानी की ओर देखकर कहा—"अन्न से पेट नहीं भरता, तो अब आदमी खाने चली है! हत्यारिन!!"

"मालती!" बड़ी रानी उठकर चिल्लाती हुई भगीं।

सावित्री ने झपटकर उन्हें पकड़ लिया। वह मूर्च्छित-सी होने लगीं। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। "बैठ यहीं!" सावित्री ने झकझोरते हुए कहा—"मालती को चिल्ला रही है!"

"सावित्री!" बड़ी रानी बोली—"ज़बान सँभालकर बोल!"

क़िले-भर में हड़कंप मच गया। शोर-गुल सुनकर अन्य रानियाँ घटना-स्थल पर आ पहुँचीं। मालती महाराज को भी बुला लाई। महाराज को देखते ही बड़ी रानी चिल्लाकर उनसे लिपट गईं।

"क्या बात है?" महाराज ने आवेश में पूछा।

"सावित्री मुझे अपमानित कर रही है।" बड़ी रानी चिल्लाईं।

"सावित्री! तेरा यह साहस!"

"महाराज!" सावित्री तड़पकर बोली—"जिस क़िले में मैं पल रही हूँ, जिसका नमक खा रही हूँ, उस क़िले का विध्वंस न होने

दूँगी।" उसने बड़ी रानी की ओर उँगली उठाकर कहा—"आज महीनों से मैं देख रही हूँ, सभी षड्यंत्र की जड़ यह हैं·······!"

"देखिए महाराज! देखिए!" बड़ी रानी चिल्लाईं।

"चुप रह!" महाराज सावित्री की ओर देखकर बोले—"नहीं, तो तेरा सिर उतार लूँगा।"

"महाराज!" सावित्री ने सिर झुकाकर कहा—"यह सिर आपका है, उतार लीजिए। यदि मेरे बलिदान से क़िले की रक्षा हो सके, तो मैं उसे अपना सौभाग्य हीसमझूँगी। किंतु आज?" सावित्री ने सिर उठाकर कहा—"चाहे आप मुझे मार डालिए, चाहे बोटी-बोटी काट डालिए। किंतु आपके विरुद्ध जो षड्यंत्र रचा जा रहा है, मैं उसका भंडाफोड़ करके ही दम लूँगी। महाराज, जो यह आपसे लिपटी खड़ी हैं, इनकी करतूत देखिए।"

"कैसी करतूत?" महाराज ने गरजकर पूछा।

"कुछ नहीं महाराज! कुछ नहीं! सावित्री मुझे फँसाना चाहती है।"

"महाराज!" सावित्री बोली—"वह देखिए, कटोरे में दूध भरा रक्खा है। वह दूध नहीं, विष है! जिसे पिलाकर यह कंचुकी के प्राण लेने आई हैं।

महाराज कटोरे की ओर देखकर सिहर उठे। कंचुकी के पास ही वह दूध से भरा हुआ रक्खा था। कंचुकी सिर झुकाए बैठी थी।

सावित्री का शरीर अब भी काँप रहा था। उसने महाराज को संबोधित करते हुए कहा—"महाराज! यदि मेरी बात पर विश्वास न हो, तो इस दूध को किसी कुत्ते को पिलाकर देखिए। पीते ही मर जायगा।" फिर बड़ी रानी की ओर देखकर बोली—"यह और छोटे राजा मिलकर भीषण षड्यंत्र कर रहे हैं। रेवंत का भागना, मलखान का मारा जाना तथा छोटी रानी का बंदी-गृह में पड़ना इन्हीं के षड्यंत्र का प्रतिफल है।"

पर विश्वास नहीं करता।" महाराज बोले—"सावित्री,
कार विना प्रमाण के लांछन लगाना अपराध है।"
?" सावित्री बोली—"महाराज, मुझे क्षमा करें, मैं
हूँ।"

सावित्री के मुख की ओर एकटक देखने लगे।
ती गई—"महाराज, इन रहस्यों के पीछे पता नहीं,
पा हुआ है। इसमें छोटे राजा और कंचुकी रानी की
है।"

हा ?" महाराज चौंके—"प्रेम-कथा ?"

ावित्री बोली—"विवाह के पूर्व वह इनसे प्रेम करते
ह घृणा। उन्होंने गुप्त रूप से इनके साथ विवाह करने
ों प्रयत्न किए, किंतु छोटी रानी उनके सभी प्रस्तावों
रहीं। अंत में इस घटना ने प्रतिशोध का रूप धारण
में आपके प्रतिज्ञा करने पर यह आपकी रानी बनकर
। महाराज ! मुझे क्षमा करें—"प्रतिज्ञा तो आपने
की भी आपके कक्ष की शोभा बढ़ाने लगी, किंतु क्या
वचनों को पूरा किया ? इससे कंचुकी को कितना दुःख
नती हूँ। आपसे विवाह कर लेने का यह परिणाम
रानी बंदी-गृह में हैं और विष का कटोरा उनके
है।" कहते-कहते सावित्री की साँस फूल आई। उसने
त्या कि वह आवेश में आकर महाराज के सम्मुख
तिक्रमण कर गई है। उसने हाथ जोड़कर सिर झुका

?" महाराज ने आश्चर्य से पूछा।

ती हूँ।" सावित्री बोली—"आपसे इन्होंने इस
विवाह कर लिया था कि आप मदिरा छोड़ देंगे।

इधर आपने भी अपने वचनों को पूरा न किया और उधर छोटे राजा भी बदला लेने को बौखला उठे।" फिर उसने बड़ी रानी की ओर संकेत करके कहा—"इन सब षड्यंत्रों का केंद्र यह हैं। आपको इस विषय में कोई भी जानकारी नहीं। मैं आपसे बताती हूँ कि रेवंत ने कोई ग़द्दारी नहीं की, उनके ऊपर इस प्रकार के लांछन लगाना षड्यंत्र ही है।"

"क्या कहा, रेवंत ने ग़द्दारी नहीं की!" महाराज ने विस्मय से पूछा।

"नहीं।" सावित्री बोली—"वह भी छोटे राजा का कुचक्र है, केवल कंचुकी रानी से बदला लेने के लिये। उन्होंने बूढ़े एवं धर्मनिष्ठ रेवंत को धोखे से मदिरा पिलाकर उनका धर्म नष्ट किया। फल-स्वरूप आत्मग्लानि से वह दुखी होकर राजा सेढूराय से जा मिले। आप पता लगाएँ। यदि मेरी बात असत्य निकले, तो मेरी बोटी-बोटी काटकर यहीं फेंक दें। राजा सेढूराय की विजय एवं भार शिवों की पराजय के मूल कारण छोटे राजा हैं।"

महाराज की समझ में अब सावित्री की बातें कुछ-कुछ आने लगी थीं। वह मौन थे। उनके चेहरे के भाव रह-रहकर बदल रहे थे। सावित्री कह रही थी—"धोखे से छोटे राजा ने उन्हें बंदी बनाया है। एक निर्दोष, बूढ़े व्यक्ति की दुर्दशा केवल इसलिये की गई कि उसने अपनी कन्या को उनकी वासना-तृप्ति का साधन नहीं बनने दिया। उन्होंने रेवंत से दिल खोलकर बदला लिया। अब वह कंचुकी के पीछे पड़े हैं। जहाँ तक मैं समझती हूँ, न तो मलखान की हत्या में कंचुकी का हाथ है, और न रेवंत के भागने में। कंचुकी रानी का अपराध केवल यही है कि रेवंत उसके पिता हैं। इसी नाते सब कुछ कहा जा सकता है। जिस कटार को प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत करके प्रख्यापन किया जा रहा है, वह भी छोटे राजा की ही

है। कंचुकी रानी की नहीं। आप उसे मँगाकर देखें, सत्य सामने आ जायगा।"

महाराज मूर्तिवत् खड़े रहे। सावित्री कहती गई—"महाराज, जो कुछ मैं कह रही हूँ, आप उस पर ध्यान दीजिए। रेवंत को भगाने में किसका हाथ है, अपने आप पता लग जायगा। यह भी छोटे राजा का एक कुचक्र-मात्र है, जो उन्होंने रेवंत को भगाकर कंचुकी रानी की कटार की अफ़वाह उड़ाई, रानी को बदनाम किया, जिससे आपके और इनके बीच में अंतर पड़ जाय। वह सफल भी हुए। आज आपकी छोटी रानी बंदी-गृह में हैं। एक रानी का बंदी होना भार शिवों के इतिहास में पहली घटना है। फिर भी आप स्वामी हैं, सब कुछ कर सकते हैं, किंतु मैं विश्वास के साथ, क्षमा माँगती हुई, कह सकती हूँ कि आप इन कुचक्रों को किंचित् मात्र भी नहीं समझ सके। समझते भी कैसे? जब कि इन षड्यंत्रों की प्रमुख नायिका बड़ी रानी अपने झूठे वचनों से आपको पथ-भ्रष्ट करती रहीं।"

"महाराज!", बड़ी रानी चिल्लाई—"यह झूठ कहती है!"

"झूठ!" सावित्री तड़पी—"उस दिन छोटे राजा और आपसे कक्ष के भीतर क्या-क्या बातें हुई हैं?"

"कुछ नहीं।" बड़ी रानी ने कहा—"तुझसे प्रयोजन!"

"हाँ, मुझसे प्रयोजन है!" सावित्री बोली—"महाराज, जब छोटे राजा का किसी प्रकार कोई वश न चला, तो उन्होंने कंचुकी रानी को विष देने की योजना बनाई। विष देने का भार इन्होंने लिया। वही विष सामने कटोरे में भरा रक्खा है। देख लीजिए।"

"सावित्री!" ज़बान सँभालकर बोल, बड़ी रानी ने कहा—"मैं अपमान नहीं सह सकती। आवारा कहीं की! चुड़ैल!"

कंचुकी रानी सिर झुकाए बैठी थी। महाराज का शरीर क्रोध से काँप रहा था।

"चुप रहिए।" सावित्री बोली—"मैं आवारा हूँ, चुड़ैल हूँ। कंचुकी रानी छत पर चढ़कर आने-जानेवालों से आँखें लड़ाती हैं, ये सब बातें तुमने महाराज से कही हैं। अपने को दूध की धोई बताया है। किंतु हमारी आवारागर्दी क़िले के भीतर ही है, आपकी तरह बाहर नहीं।"

"चुप, झूठी कहीं की!" बड़ी रानी ने आवेश में कटार निकालकर कहा—"सीमा से आगे बढ़ेगी, तो फाड़ दूँगी तेरा पेट!"

"महाराज!" सावित्री बोली—"मैं झूठी हूँ! सीमा से आगे मैं बढ़ नहीं रही, जो कुछ कह रही हूँ, सत्य है। हाँ, अप्रिय सत्य अवश्य है। बिना इसे कहे वस्तु-स्थिति सामने नहीं आ पाती, क्या करूँ, विवश हूँ! आप इनसे पूछें कि जिस दिन रेवंत बंदी बनाए गए थे, आप छोटी रानी से रुष्ट होकर इनके कक्ष में, अर्धरात्रि को गए थे, तब यह कहाँ थीं?" आपके विवाहवाली अँगूठी यह किसे दे आई हैं। मैं आवारा हूँ, छोटी रानी आवारा हैं या यह स्वयं। इसका निर्णय आप करें। इतना कहकर उसने अँगूठी महाराज के सामने फेंक दी—"बोली, यह मुझे गंगा-तट पर मिली है। वहाँ कैसे पहुँची, इसका रहस्य इन्हीं से पूछिए।"

महाराज ने अँगूठी उठाकर हाथ में ले लिया। बड़ी रानी का कंठ अवरुद्ध हो गया था। एक भी शब्द वह न कह सकीं।

"मालती!" महाराज ने गंभीर होते हुए कहा—"एक कुत्ता तो बुला!"

मालती बाहर से एक कुत्ता पकड़ लाई। महाराज ने अपने हाथ से दूध का कटोरा उठाकर कुत्ते को पिलाया। कुत्ता दूध पी गया। सब लोग खड़े-खड़े देखते रहे। थोड़ी देर में ही कुत्ता बेहोश होकर

गिर पड़ा। उसके मुख से झाग निकलने लगा। आँखें चढ़ गईं। अवयव नीले पड़ गए और वह हाथ-पैर पटकने लगा। थोड़ी देर में उसका मुँह ऊपर उठा। वह खुला और फिर खुला का खुला ही रह गया। उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

महाराज ने क्रोध से बड़ी रानी की ओर देखा। वह काँप उठीं। महाराज कुछ न बोले। उन्होंने बंदी-गृह का ताला खोलकर कंचुकी को बाँहों में भरकर उठा लिया, और छाती से लगाते हुए कहा—"देवी, मुझे क्षमा करो!"

कंचुकी के शरीर में रोमांच हो आया। आँखें बरस पड़ीं। वह महाराज के वक्ष में सिर झुकाकर सिसकने लगीं। महाराज ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"कंचुकी, मैंने अज्ञानता-वश तुम्हें बहुत कष्ट दिया। आज मेरी आँखों पर पड़े हुए अविवेक के परिधान को सावित्री ने फाड़कर फेंक दिया है। मैं सब कुछ समझ चुका हूँ, सचमुच तुम देवी हो।"

कंचुकी की हिचकियाँ और बढ़ गईं। कंठ से आवाज़ ही नहीं फूटी। वह बिलख-बिलखकर महाराज की छाती अपने आँसुओं से भिगोती रही।

"कंचुकी!" महाराज गंभीर स्वर में बोले—"विवाह के बाद सचमुच मैं अपने वचनों को भूल गया था। किंतु आज मैं तुमसे क्षमा माँगते हुए अपनी तलवार की शपथ खाकर कहता हूँ कि अब मदिरा-पान नहीं करूँगा।"

इतना सुनते ही कंचुकी के बड़े ज़ोरों की हिचकी आई, और वह महाराज के चरणों पर लोटने लगी। महाराज ने अपने पैरों को हटाते हुए कहा—"सावित्री, इसे कक्ष में ले चल, और मधु-कक्ष में सदैव के लिये ताला बंद कर दे।"

सावित्री छोटी रानी को लेकर कक्ष की ओर चली। वह दो

क़दम भी न चल पाई होगी कि महाराज ने कुत्ते की ओर उँगली उठाते हुए बड़ी रानी से कहा—"कुत्ते की मौत तू कंचुकी-जैसी देवी को मारने जा रही थी, पापिन कहीं की !" कहते हुए वह चल पड़े।

"महाराज !" कंचुकी ने लौटते हुए कहा—"मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, बड़ी रानी को क्षमा कर दीजिए।"

"चुप रहो।" महाराज ने क्रोध में कहा—"उसके विषय में मैं एक बात भी नहीं सुनना चाहता।"

"नहीं महाराज !" कंचुकी ने उनके पैर पकड़कर कहा—"जब आप अंधकार से प्रकाश की ओर आ चुके हैं, तब यह उचित नहीं कि किसी को अंधकार में रक्खें, मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी को कष्ट हो।"

महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बाहर निकल गए। कंचुकी करुणा, दया एवं क्षमा की मूर्ति-सी खड़ी रही।

बड़ी रानी अपने कक्ष की ओर धीरे-धीरे बढ़ीं।

साँझ हो गई थी। क़िले में चारो ओर बत्तियाँ जगमगा रही थीं। प्रकाश फैला हुआ था। बाहर बैलगाड़ियों पर बैठे हुए नर-नारी कार्त्तिकी-स्नान का पुण्य लूटकर वापस जा रहे थे। लोक गीतों का स्वर जन-रव एवं बैलगाड़ियों की खड़खड़ाहट में डूब रहा था।

---

[२३]

आधी रात का समय था। दुर्ग में चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। यत्र-तत्र टिमटिमाती हुई दीपशिखाएँ अंधकार की काली चादर को व्यर्थ ही आलोकित करने का प्रयत्न कर रही थीं। दुर्ग से कुछ दूरी पर लगे हुए सैनिकों के शिविर में पहरेदार पहरा देता हुआ आवाज़ लगा रहा था—"सोते-जागते रहो!" यह ललकार गंगा की लहरों से टकराकर विजन-वन-प्रदेश में गूँज रही थी। उस प्रतिध्वनि को या तो चौंक-चौंककर वन्य-पशु सुन रहे थे या विचारों में डूबी हुई सलमा।

आज चार-पाँच दिन से, जब से ज़ुबेदा एवं जुम्मन पत्र लेकर गए हैं, तब से सलमा को रात-भर नींद नहीं आ पाई। कभी वह राजा डल के ऊपर कुढ़ती, तो कभी अपने ऊपर। कभी अपनी मम्मी एवं सैयद साहब पर, तो कभी शातिर पर। कई दिन से यही क्रम चल रहा था। दिन तो किसी-न-किसी प्रकार बीत जाता, मगर रात न कटती। सलमा अपने बिस्तरे पर पड़ी करवटें बदल रही थी। पास में ही दीपक जल रहा था। वह कभी उठकर बैठ जाती; कभी खड़ी हो झरोखे से गंगा की शुभ्र जल-राशि की ओर देखने लगती; कभी लेटकर फिर सोचने लगती। पहरुवा अभी-अभी पहरा देकर उधर से निकला है। उसकी आवाज़ सुनकर सलमा चौंक पड़ी। "बदतमीज़!" सलमा ने उठते हुए कहा—"मनहूस रात-भर सोने नहीं देता।" वह उठ खड़ी हुई। दीपक की लौ उसने तेज किया। काग़ज़ निकाला। क़लम-दावात उठाई। बैठकर कुछ सोचने लगी।

"विश्वासघात !" ये सब लोग मेरे साथ विश्वासघात कर रहे हैं ! मेरी ज़िंदगी के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं ! मज़ाक कर रहे हैं ! जिस आदमी को मैंने खुली चुनौती दी, जिसे कटार निकालकर मारने दौड़ी, जिसके क़िले की एक-एक ईंट गिराकर उसकी क़ब्र पर ईद मनाने की मैंने क़सम खाई, उसी काफ़िर डल के लिये मेरी तरफ़ से मुहब्बत का ख़त लिखकर भेजा है। शर्म नहीं आती इन्हें ऐसा करते हुए। ये ममी, मेरी मा !—सलमा ने मुँह बनाया—बूढ़ी हो रही हैं, मगर तमीज़ नहीं। अपनी बेटी का यह अपमान करते हुए उन्हें लाज नहीं लगती। कहती हैं, इज़्ज़त और राज़ का मामला है। तो सलमा क्या करे, उसके नाम का यह दुरुपयोग ! मुहब्बत का ख़त लिख-लिखकर एक राजा को धोखे में छोड़ा जा रहा है। उसका भेद लिया जा रहा है। ये सब उस पर चढ़ाई करके उसे मटियामेट करेंगे। यदि चढ़ाई कर सकते हैं, तो करें; नहीं कर सकते, तो मुझसे कहें। मगर टट्टी की ओट से शिकार क्यों खेल रहे हैं। राजा कौन होगा। राज कौन पाएगा। बेवक़ूफ़ बनाया जा रहा है सलमा को। ये ममी ! क्या कहूँ ममी और अब्बाजान को, जो अपनी लड़की को इतनी गिरी हुई समझते हैं। कहते हैं, तेरी प्रतिज्ञा पूरी कर रहे हैं। इस तरह ? धोखे से ? जब एक मर्द होते हुए उसने मुझे धोखा नहीं दिया, तो मैं भी औरत होकर उसे धोखा नहीं दे सकती। मैंने प्रतिज्ञा की है। क़सम खाई है, तो इसलिये नहीं कि ये लोग बनावटी मुहब्बत दिखाकर उसके साथ विश्वासघात करें ? यदि उससे जीत नहीं सकते, तो जौनपुर लौट चलें। जवाब दे दें। सलमा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगी। वह क्या सोचेगा, जब ममी का लिखा ख़त उसे मिलेगा। यही न कि सलमा उसकी मुहब्बत में बेताब है ! पागल है, विना उसके रह नहीं सकती। वह बेचारा क्या

सोचेगा कि यह ख़त सलमा का लिखा नहीं है! मगर वह इस ख़त के एक-एक जुमले पर यक़ीन करेगा। हो सकता है, जवाब भी दे, और उसका जवाब पढ़-पढ़कर ये लोग मज़ाक उड़ावें। उस समय मेरी क्या हालत होगी। जब मेरे नाम पर लिखे गए ख़त की इस तरह छीछालेदर होगी! मैंने बड़ी ग़लती की, जो ममी से एक-एक बात बता दिया। यह उसी का नतीजा है कि मेरी तरफ़ से मुहब्बत का ख़त लिख-लिखकर एक राजा को धोखा दिया जा रहा है। छिः! सलमा ने घृणा से कहा—"एक राजा राज्य के लिये क्या नहीं कर सकता? जाल, फ़रेब, धोखा, सब कुछ! यदि इसी तरह राज्य बढ़ाया जाता है, दुश्मन से बदला लिया जाता है, तो सलमा ऐसे राज्य में, ऐसे बदले में, लात मारती है।" सोचते-सोचते उसका अंतस् घृणा से भर गया।

"ज़ुबेदा!" वह चीख़ी, उसे औरत होते हुए भी शर्म नहीं लगी।"

"और यह शातिर!"

"सारी बदमाशी इसी की है।" सलमा ने मुँह बनाया—कहता है, यह ख़त अगर सलमा लिखती, तो और रंग आता! दुष्ट, पाजी कहीं का! रंग के चक्कर में पड़ा है। रंग तो तब आता, जब डंके की चोट पर डलमऊ पर चढ़ाई की जाती। चाहे जीतते या हारते! इतिहास इज़्ज़त के साथ याद तो करता! इस तरह सलमा के नाम को कलंकित करने से क्या फ़ायदा!" एक राजा को सलमा के नाम पर धोखा देने का क्या मतलब!"

सोचते-सोचते सलमा आग-बबूला हो उठी—"तो मैं उन्हें लिखे देती हूँ कि आप इस ख़त पर यक़ीन न करें, यह मेरा लिखा हुआ नहीं है। न मैं आपसे मुहब्बत तब करती थी और न अब करती हूँ। मेरे नाम पर आपको धोखा दिया जा रहा है........।"

सलमा ने काग़ज़ उठाया। वह लिखने लगी। थोड़ा-सा लिखकर

वह पुनः सोचने लगी। मगर मैं इस ख़त को भेजूँगी कैसे ? उसने अपने आप प्रश्न किया। उसका दिमाग़ चारो ओर दौड़ा। कोई भी सूरत नज़र न आई। उसने ख़त के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। उन्हें लपेटकर खिड़की के बाहर फेंक दिया। ख़त का वह गोलाकार काग़ज़ गंगा की लहरों में डूबता, उतराता बह चला।

सलमा लेट गई। क़लम-दावात वहीं रक्खी रही। दीपक टिम-टिमाता रहा, और सलमा करवटें बदलती रही। रात बीतती रही।

"प्रातःकाल जब राहत सलीम को भोजन लेकर आई, तो सद्-रुन ने उसे देख लिया। उसने सलमा से बताया। सलमा सब जानती थी कि इन्हीं के यहाँ यह सब षड्यंत्र रचा गया है। सलीम को इन्हीं लोगों ने बरगलाया है। फिर भी जाने क्यों, राहत के प्रति उसके दिल में हमदर्दी पैदा हो गई थी। क्योंकि उसने सुन रक्खा था कि वह बेचारी रोज़ रोती हुई आती और सलीम को खाना खिला-कर वापस चली जाती हैं। फल-स्वरूप सलमा ने सद्रुन से कह रक्खा था कि आज जब वह आवें, तो मुझे बताना। सद्रुन ने सलमा को राहत के आने की सूचना दी। सलमा बोली—"जब वह जाने लगें, तो यहीं बुला लाना।"

"अच्छी बात है।" सद्रुन ने सिर हिलाया, और वह बाहर निकल गई।

थोड़ी देर में सद्रुन राहत को लिए क़िले के भीतर आई। सलमा ने राहत का स्वागत किया। उसे साथ ले अपने कक्ष के भीतर गई। सद्रुन अपने कार्य में लगी रही। राहत सलमा से बातें तो कर रही थी, मगर उसका दिल बहुत दुखी था। रह-रह-कर उसके नयन छलक उठते थे। सलमा से यह सब न देखा गया उसने कहा—"बहन, मैं जानती हूँ कि सलीम की गिरफ़्तारी से

आप बहुत दुखी हैं, मगर किया क्या जाय। उन्होंने मेरे ख़िलाफ़ जो कुछ किया, उनसे ऐसी उम्मीद न थी।"

"आपको धोखा है।" राहत ने मीठे, किंतु दुखी स्वर में उत्तर दिया—"उन्होंने कुछ भी नहीं किया।"

"यह आप ग़लत कहती हैं!" सलमा बोली—"उनका पूरा हाथ था नहीं, तो घटना के दिन वह मुझे अकेली न छोड़ते।"

"उनका नहीं!" राहत ने धीरे से कहा—"शातिर का हाथ था। सलीम आज मुझसे सब कुछ बता रहा था कि शातिर ने यह सब उनके ख़िलाफ़ क्यों किया है।" कहती हुई वह सलमा के चेहरे की ओर देखने लगी। सलमा का मुखमंडल आरक्त हो उठा। उसने बातें बदलते हुए कहा—"यह ज़ुबेदा आपकी कौन है?"

"लड़की है।" राहत बोली—"मेरी सौतेली लड़की है।"

"आप लोगों ने उसे जाने क्यों दिया?" सलमा ने प्रश्न किया।

"हमने नहीं जाने दिया।" राहत बोली—"सलीम की मुहब्बत उससे सब कुछ करा रही है।"

"मुहब्बत! सलमा चौंकी—"क्या ज़ुबेदा सलीम से मुहब्बत करती है?"

"हाँ।" राहत ने सहज स्वभाव से कह दिया—"उसी मुहब्बत के बदले में वह यह सब क़ुर्बानी कर रही है।"

"या अल्लाह!" सलमा ने लंबी साँस लेकर पूछा—"और सलीम?"

"वह भी।" राहत ने धीरे से कहा—"इसी मुहब्बत का नाजायज़ फ़ायदा शातिर उठा रहा है।"

सलमा चुप हो गई। उधर से बेगम साहबा आ रही थीं। राहत उठकर खड़ी हो गई। बेगम साहबा जलते नयनों से उसकी ओ

देखती हुई अपने कक्ष में चली गईं। राहत सलमा से बिदा लेकर चल पड़ी। सलमा वहीं विचार-मग्न बैठी रही।

सूबेदार साहब कहीं बाहर गए थे। घर में उनके न होने से निश्चिंतता थी। बेगम साहबा राहत को सलमा के पास बैठी देख-कर जल-भुन उठीं। बोलीं कुछ नहीं। केवल अपने कक्ष में पड़ी-पड़ी सोचती रहीं।" आज ज़ुबेदा एवं जुम्मन को गए छः दिन हो रहे हैं, मगर अब तक कोई ख़बर नहीं मिली। इतने दिनों में तो उसे वापस आ जाना चाहिए। डलमऊ अठारह कोस ही तो है। फिर क्यों नहीं आए? क्या राजा डल ने उस ख़त पर यक़ीन नहीं किया। अगर न किया हो, तब? उन्होंने अपने आप प्रश्न किया—"तो शायद जुम्मन और ज़ुबेदा जेल में होंगे!" कोई-न-कोई बात अवश्य है, नहीं तो अब तक ख़बर आ जाती। सोचते-सोचते उन्होंने दूसरी ओर निहारा। चौकी पर मदिरा का गिलास और सुराही रक्खी थी।" यह भी सैयद साहब की ज़िद है!" बेगम साहबा बुद-बुदाईं। हमारे धर्म में शराब पीना गुनाह है। मगर मानते ही नहीं। यहाँ आए क्या, सब कुछ भूल गए। पहले छिप-छिपकर पीते रहे, अब खुले आम पीने लगे। उस दिन मेरे होठों से लगा दिया था। छिः! कितनी गंदी वस्तु है?"

उसी समय किसी ने द्वार की जंज़ीर खटखटाई। जंज़ीर की आवाज़ सुनकर सलमा ने सदरुन को पुकारकर कहा—"सदरुन, देख तो, कौन जंज़ीर खटखटा रहा है।"

"होगा कोई?" सदरुन बोली—"इस तरह तो दिन-भर लगा रहता है। क़िला क्या है, सराय हो गया!

"क्या कहा?" सलमा ने क्रोध से पूछा—"क़िले को सराय बना रही है!"

जंज़ीर की आवाज़ अब भी आ रही थी।

"कुछ नहीं बीबी," सदरुन ने कहा—"देखती हूँ।"

सदरुन ने झाँककर देखा। जुम्मन मियाँ खड़े थे। उसने धीरे से पूछा—"क्या है?"

"सैयद साहब हैं?" जुम्मन ने पूछा।

"नहीं।"

"कहाँ गए?"

"मैं क्या जानूँ?"

"अच्छा सुन।" जुम्मन ने कहा—"आवें, तो कह देना, जुम्मन आ गया है।"

"और कुछ?" सदरुन ने पूछा—"या इतना ही।"

"कुछ अपनी तरफ़ से भी मिला लेना।" जुम्मन बोला—"यहाँ पड़ी-पड़ी इतना भी नहीं कर सकती!"

सदरुन मुस्किराकर लौट आई।

"कौन था सदरुन?" सलमा ने पूछा।

"जुम्मन था।" कहती हुई सदरुन अपने काम में लग गई।

"आ गया?" सलमा ने कहा—"उसे बुलाना तो!"

सदरुन पुनः दौड़ी हुई द्वार पर गई। जुम्मन मियाँ लौटे चले जा रहे थे। सदरुन ने ताली पीटकर उसे इशारे से बुलाया। बदले में जुम्मन ने भी ताली पीटकर इशारा किया। सदरुन झेंप गई।

जुम्मन लौटा नहीं। सदरुन खीझकर लौट आई।

"क्या हुआ?" सलमा ने पूछा।

"नहीं लौटा।" सदरुन ने शरमाते हुए उत्तर दिया—"चला गया।"

"जाने दे!" कहती हुई सलमा अपने कक्ष से बाहर निकल आई। सदरुन भोजनालय की ओर चली।

काफ़ी रात बीतने पर जब सैयद साहब वापस आए, तो उनके

ही कक्ष में दरबार लगा। शातिर ने जुम्मन के आने की सूचना दी। सूबेदार साहब ख़ुश हो गए। जुम्मन को कक्ष के भीतर बुलाया गया। शातिर भी आया। बेगम साहबा को भी वह ख़ुश-ख़बरी सुनाई गई। वह भी आ डटीं। काँपते हाथों से शातिर ने पत्र खोला। राजा डल का उत्तर था। वह पढ़ने लगा—

"मेरी आशाओं की दीप-शिखा !"

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य में पड़ गया कि कल तक जो मेरा वध करने के लिये हाथ में कटार लिए थी, जिसने मेरे दुर्ग की एक-एक ईंट गिरा देने की शपथ खाई, जिसने मेरी क़ब्र पर ईद मनाने की प्रतिज्ञा की, वह इतनी बदल कैसे गई! मैं मानता हूँ, तुम एक नारी हो, तुम्हारा भी वही स्वभाव है, जो अन्य नारियों का होता है। यह नारी-स्वभाव की ही विचित्रता है कि क्षण-भर पहले वह जिसके ख़ून की प्यासी थी, क्षण-भर पश्चात् उसी के सिर पर अपने आँचल की छाया कर देती है। जो आँखें अंगार बरसाती हैं, वही पराग भी लुटाती हैं, इसीलिये तुम्हारे पत्र पर विश्वास एवं अविश्वास दोनो एक साथ ही उठ रहे हैं। विश्वास इसलिये कि अतंतः तुम भी नारी ही हो, तुम्हारे भी हृदय में ममता है, स्नेह है, कोमलता है। अविश्वास इसलिये कि अकस्मात् इतना परिवर्तन कैसा? इतनी बेताबी क्यों?

"तुमने लिखा है कि मैं तुम्हारे चमन की किसी डाल में घोंसला बनाने की जगह चाहती हूँ! मगर संभवतः यह भूल गई हो कि हमारे यहाँ चमन नहीं, उद्यान होते हैं, उनमें बुलबुल नहीं, कोकिला कूका करती हैं। वह भी अपनी ऋतु पर! यदि तुम कोयल बनकर इस निकुंज में कूकने के लिये तैयार हो, तो तुम्हें मौसम की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तुमने उस दिन की बहुत-सी बातों की याद दिलाकर मेरे घावों को हरा कर दिया है। उनके विषय में मुझे कुछ भी नहीं

कहना है। तुम स्वयं सब कुछ समझती हो। मगर मैं एक बात तुमसे पूछता हूँ कि यदि धर्म, मज़हब और मंदिर-मस्जिद की सीमाएँ प्रेम में बाधक हो सकती हैं, तो तुम मुझे भूल जाओ! यदि यह बात नहीं है, तो समय की प्रतीक्षा करो, तुम्हारे कूकने के लिये कुंज में स्थान है।

"जहाँ तक ज़ुबेदा का प्रश्न है, उससे निश्चित रहो। वह मेरे दुर्ग में, मेरी लड़की की तरह, रहेगी। पत्र का उत्तर शीघ्र देना तथा यह भी बताना कि मेरी चुनौती का उत्तर तुम्हारे पिता ने क्यों नहीं दिया। इस बार केवल इतना ही—

तुम्हारा शबेग़म का चाँद

तुम्हारा

डलदेव"

पत्र समाप्त करके शातिर ने सैयद साहब की ओर निहारा। वह मुस्किरा रहे थे। वह भी विहँस उठा। फिर बेगम साहबा की ओर देखकर बोला—"आपके ख़त का असर तो पड़ गया।"

"हाँ।" बेगम साहबा ने उत्तर दिया—"मगर अभी उसका विश्वास नहीं जम रहा है। देखा न? कितना चालाक है! पूछता है कि मेरी चुनौती का उत्तर तुम्हारे पिता ने क्यों नहीं दिया?" इतना कहकर वह सैयद साहब की ओर देखकर बोली—"अब की बार ऐसा ख़त लिखा जाय कि वह भी याद करे कि किसी ने लिखा है, फिर जुम्मन की पीठ थपथपाती हुई बोली—"वहाँ के कुछ हाल-चाल तो बता!"

"क्या हाल-चाल बताऊँ!" जुम्मन बोला—"राजा तो बड़ा शानदार है, मगर उसका बूढ़ा मंत्री पूरा खूसट है।"

"क्यों?" सैयद साहब ने प्रश्न किया।

"क्या बताऊँ?" जुम्मन ने कहा—"अगर उसकी चलती, तो मैं

क़िले के भीतर क़दम न रखने पाता। दरबार से ही उसने मुझे भगा दिया था। मगर राजा साहब की मेहरबानी कि मुझे खाने और रहने की जगह मिल गई।"

"यह कैसे?" बेगम साहबा ने पूछा—"राजा साहब ने मंत्री की राय के ख़िलाफ़ क्यों किया?"

"करते क्यों न!" जुम्मन बोला—"जब आपके यहाँ बादशाह के कमज़ोर होते ही सूबेदार तख़्त लेने की बात सोचने लगता है, तब वहाँ इतना भी न हो!" फिर कुछ रुककर कहा—"मेरे साथ ज़नाना थी। कहाँ जाता? जब कोठरी मिल गई, तो खाना-पानी, बिस्तरा, सब कुछ मँगा लेना जुम्मन के बाएँ हाथ का खेल है। शाही मेहमान ठहरा कि मज़ाक़!" फिर उछलकर प्रसन्नता से तालियाँ पीटते हुए बोला—"मैंने एक ऐसा 'क़ता' पढ़ा कि राजा साहब खुश होकर रह गए।"

"कौन-सा 'क़ता'!" शातिर ने पूछा।

"सुनाऊँ।" जुम्मन बोला, सुनो—

"डालन-रिसि का डलमऊ, सुरसरि-तीर निवास;
तहाँ चचा जुम्मन खड़े, करि भोजन की आस!"

जुम्मन के इतना कहते ही बड़े ज़ोर का ठहाका लगा। जुम्मन का शरीर प्रसन्नता से थिरक उठा। बोला—"वहाँ ज़ुबेदा की एक दोस्त—है नाम है 'साबितिरी'। क्या कहूँ, ऐसी ख़ूबसूरत और हसीन औरत आज तक मैंने देखी ही नहीं। यदि ख़ुदा के शुक्र से कामयाबी हासिल हो जाय, तो जुम्मन को इनाम में उसी को देना!"

"ज़रूर!" सूबेदार साहब ने कहा—"अगर कामयाबी न हुई, तो?"

"तो क्या?" जुम्मन बोला—"अगर तुम जीतोगे, तो तुमसे

साबितिरी को मागूँगा, यदि राजा डल जीतेंगे, तो उनसे माँगूँगा। मेरे तो दोनो हाथों में लड्डू हैं।"

"भाग यहाँ से!" शातिर बोला—"अभी से तेरी यह नियत है!"

"मेरी नियत ख़राब नहीं है।" जुम्मन बोला—"आपके लिये भी इंतज़ाम कर लिया है। उसका मुँह भैंसे का-सा है। बाहें हाथी की सूँड़-जैसी, रंग घड़ियाल का-सा, और पेट! या अल्लाह!!" जुम्मन ने अपना पेट फुलाकर कहा—"इस तरह चार जुम्मन मिलकर अपना पेट फुलावें, तो उसके बराबर हो।"

सब लोग हँस पड़े। शातिर ने हँसते हुए उसका कान पकड़कर हिला दिया। जुम्मन चीख़ पड़ा। "कल सुबह फिर जाना है! तैयार रहना?" शातिर ने कहा।

"यह अच्छा रहा!" जुम्मन बोला—"ज़रा दम तो मार लेने दीजिए, मैं कोई तेली का बैल नहीं हूँ, समझे जनाब!" कहता हुआ वह बाहर चला आया।

जुम्मन के चले जाने के बाद शातिर एवं सूबेदार साहब में गुप्त मंत्रणा हुई। यह निश्चय किया गया कि अब शाह के पास युद्ध की तैयारी की सूचना भेज देना आवश्यक है, राजा डल के पत्रोत्तर का भार पुनः बेगम साहबा को सौंपा गया। शातिर बैठा रहा। वह सैन्य-शक्ति बढ़ाने के विषय में सोचने लगा। सदरुन खाना सजा-सजाकर लगा रही थी।

रात बहुत बीत गई थी। शातिर उठकर अपने शिविर की ओर चला। जब वह आँगन में पहुँचा, तब उसने देखा कि सलमा अपने कक्ष के द्वार पर खड़ी बातें सुन रही है। उसने एक बेधक दृष्टि सलमा पर छोड़ी। सलमा अलग हट गई। वह मुस्किराता हुआ बाहर निकल गया।

शातिर के जाने के बाद सलमा क्रोध से अपने कक्ष के किंवाड़ बंदकर टहलने लगी। राजा डल का पत्रोत्तर उसने सुना था। सैयद साहब एवं शातिर की बातें भी सुनी थीं, तथा यह भी सुना था कि पुनः पत्रोत्तर लिखने का भार उसकी 'ममी' को सौंपा गया है। इन सब हरकतों से वह परेशान हो उठी थी। उसका क्रोध चरम सीमा पर था। न उसने खाया, न पानी पिया। सदरुन खाना रखकर चली गई थी। वह वहीं रक्खा ही रहा।

सलमा बिस्तरे पर लेटकर अपने विचारों में उलझ गई।

कंचुकी रानी के बार-बार निवेदन करने पर भी महाराज न माने। बड़ी रानी वासुमता परित्यक्ता-सी पड़ी रहीं। उनके संपूर्ण मंसूबे, सभी स्वप्न, आँसू बनकर बह रहे थे। आज उनसे कोई बात करनेवाला तक न था। संपूर्ण दुर्ग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता। छोटे राजा, जिनके इंगित पर उन्होंने यह सब किया था, वह भी उन्हें भूल गए। वह दिन-रात आँसू बहाती, मगर उनकी क़ीमत आँकनेवाला कोई न था। महाराज ने छोटे राजा के पास पत्र लिखकर कटार मँगाई, किंतु उन्होंने उसे भेजने में हीला-हवाला किया। बड़ी रानी के समाचार उन तक पहुँच चुके थे। वह विचार-मग्न बैठे थे। अब न उन्हें रेवंत के पीछे गुप्तचर दौड़ाने की चिंता थी और न कंचुकी रानी को परेशान करने की। अब उनके सामने एक ही प्रश्न था कि किस प्रकार इस विष-पानवाले कांड से बचा जाय। वह महाराज को मुख दिखाने योग्य नहीं रह गए थे। इधर महाराज भी सब कुछ समझ चुके थे। अपनी प्रतिज्ञानुसार उन्होंने मदिरा-पान छोड़ दिया था। 'मधु-कक्ष' अब 'कला-कक्ष' बन चुका था। शराब की सुराहियों एवं चषकों के स्थान पर अब उसमें कलात्मक मूर्तियाँ सजा-सजाकर रक्खी गई थीं। दास-दासियों एवं रानियों को भी मदिरा-पान छोड़ने का आदेश हो चुका था। महाराज का अधिक समय राज्य की सेवा में व्यतीत होने लगा। उनके पुराने संस्कार पुनः जगे। दुर्ग के भीतर पावनता का प्रवेश होने लगा।

इन सब परिवर्तनों से कंचुकी रानी प्रसन्न थीं। उनकी आत्मा को अब काफ़ी शांति थी। जो कुछ वह चाहती थीं, अब वही हो

रहा था। वह नित्यप्रति महाराज के साथ छाया की तरह रहने लगी। गर्भवती होने के कारण सावित्री अब अधिक कार्य न कर सकती थी। फल-स्वरूप कंचुकी स्वयं महाराज के छोटे-बड़े सभी कार्यों में हाथ बँटाती। महाराज पूजा करते, तो वह खड़ी रहती। महाराज जल-पान करते, तो वह एक-एक वस्तु उठा कर देती। उनकी पूरी सुविधा का ध्यान रखती एवं सब प्रकार से उन्हें आत्मसंतोष देती रहती।

इन सभी सुविधाओं और परिवर्तनों के होते हुए भी महाराज के मन में एक उलझन, चित्त में एक अशांति एवं मस्तिष्क में बेचैनी-सी अहर्निशि रहती। वह पड़े-पड़े सोचने लगते, तो उन्हें पता ही न चलता कि कितना समय बीत गया। रात-भर वह जागते रहते। कक्ष में कौन कब आया? और कब चला गया? इसकी उन्हें ख़बर ही नहीं। कंचुकी मन-ही-मन महाराज की इस स्थिति से परेशान थी। वह देखा करती कि वह ज़ुबेदा को छोड़कर किसी से ठीक से बातें भी नहीं करते। ज़ुबेदा सलमा के रूप-गुण-स्वभाव के विषय में उन्हें मीठी-मीठी बातें सुनाती। महाराज आत्मविभोर हो सुनते रहते। ज़ुबेदा हाँ में हाँ, मिलाती, सलमा की बेक़रारी का इजहार करती। उसकी मुहब्बत के विषय में विश्वास दिलाती। महाराज बेसुध होकर पड़े-पड़े सब कुछ सुना करते।

कंचुकी महाराज की इन सब गति-विधियों का बड़े ध्यान से अध्ययन कर रही थी, किंतु उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था। ज़ुबेदा उसके लिये एक रहस्यमयी बनी हुई थी। हाँ, कभी-कभी स्मृति-पटल पर बाबर सैयद की लड़की का ध्यान आ जाता था, जिसके विषय में महाराज ने उससे चुनौती देनेवाली बात कही थी। किंतु यह ज़ुबेदा, कंचुकी के लिये सचमुच एक समस्या ही थी।

सायंकाल जब सावित्री दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर कंचुकी के

कक्ष में गई, तो कंचुकी ने अपनी शंकाएँ सावित्री से व्यक्त करते हुए पूछा—"सावित्री, यह ज़ुबेदा कौन है ?"

"क्यों ?" सावित्री ने प्रश्न किया—"ज़ुबेदा के लिये आप इतनी उद्विग्न क्यों हैं ?"

सावित्री के इस प्रश्न पर कंचुकी विहँसकर बोली—"सावित्री, यह मेरे लिये एक समस्या बन गई है। कुछ भी समझ में नहीं आता कि महाराज से कौन-सा परामर्श दिन-रात किया करती है।"

"मैं बताऊँ ?" सावित्री बोली—"यह तुम्हारे लिये ही नहीं, मेरे लिये भी समस्या बनी हुई है। मेरी कोठरी के पास ही रहती है। इसके साथ एक शिखंडी भी है, जिसे यह अपना भाई बताती है; मगर ये दोनो भाई-बहन नहीं हैं।"

"फिर कौन हैं ?" कंचुकी ने प्रश्न किया—"मुझे क्या पता ?"

"पता है !" सावित्री बोली—"एक भाई-बहन को जिस प्रकार रहना चाहिए, ये दोनो नहीं रहते। जिसे यह अपना भाई बताती है, वह दिन-भर क़िले के चारो ओर चक्कर लगाया करता है, जो कोई पूछता है, तो कहता है कि मछलियाँ पकड़ने के लिये केचुआ ढूँढ़ रहा हूँ। और, यह क़िले के भीतरी भाग में घूमा करती है।"

"हाँ सावित्री।" कंचुकी ने कहा—"मुझे भी पूर्ण संदेह है कि ये दोनो रहस्यमय हैं। मुझे तो ये यवनों के गुप्तचर-से प्रतीत होते हैं, किंतु महाराज की आत्मीयता देखकर कुछ भी बोल नहीं सकती।"

"गुप्तचर नहीं।" सावित्री बोली—"संदेश-वाहक हैं। दूसरे शब्दों में पत्र-वाहक समझ लो।"

"पत्र-वाहक !" कंचुकी ने विस्मय से पूछा—"किसके पत्र-वाहक ?"

"मैं नहीं जानती।" सावित्री बोली—"राजा-महाराजाओं की बातें हैं। मैं क्यों बीच में पड़ूँ।"

"बता सावित्री !" कंचुकी ने हठ करते हुए पूछा—"तुझे मेरी शपथ है, साफ़-साफ़ बता।"

"अच्छा, बताती हूँ।" सावित्री ने अपने होठों पर उँगली रखते हुए कहा—"शपथ न रखिए !" फिर धीरे से बोली—"सूबेदार बाबर सैयद को तो आप जानती हैं ?"

"हाँ।" कंचुकी ने कहा—"वही न, जो जौनपुर के शाह का सूबेदार है।"

"हाँ, वही।" सावित्री बोली—"उसकी लड़की का नाम है सलमा।"

"तो क्या हुआ ?" कंचुकी ने चौंकते हुए पूछा।

"हुआ क्या !" सावित्री बोली—"महाराज ने आखेट के समय कहीं उसे देख लिया है, तब से उसे पाने के लिये आकुल हैं। फिर कंचुकी की ओर देखकर धीरे से कहा—"ज़ुबेदा से मैंने सब कुछ पूछ लिया है। वह सलमा का पत्र ला-लाकर महाराज को देती है।"

"हाँ सावित्री !" कंचुकी ने चौंकते हुए कहा—"जब यह घटना हुई थी, तो महाराज ने मुझसे बताया था कि बाबर सैयद की लड़की ने उनको चुनौती दी है। किंतु मैंने अधिक पूछना उचित नहीं समझा, और उसे विनोद में यह कहकर टाल दिया कि—"आपने एक औरत की चुनौती स्वीकार कर लिया !"

"वाह रानी !" सावित्री हँसकर बोली—"तब तो आप सब कुछ जानती हैं, और पूछ रही हैं मुझसे ?"

"नहीं सावित्री !" कंचुकी ने कहा—"मैं इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानती।" फिर सावित्री की ओर देखकर धीरे से पूछा—"तो क्या महाराज उससे प्रेम करते हैं ?"

"मैं क्या जानूँ ?" सावित्री मुस्किराकर बोली—"अभी-अभी

ज़ुबेदा आई है। महाराज से बैठी बातें कर रही है। कक्ष के द्वार बंद हैं? चुपके से सुन लो। अपने आप पता लग जायगा।"

"सचमुच ज़ुबेदा आई है?" कंचुकी ने हँसकर पूछा।

"हाँ, हाँ।" सावित्री बोली—"अभी-अभी आई है।"

"अच्छा, तू बैठ।" कंचुकी ने उठते हुए कहा—"मैं रस-भरी बातें तो सुन लूँ!" और वह कक्ष के बाहर निकल गई। सावित्री वहीं बैठी रही।

महाराज और ज़ुबेदा धीरे-धीरे बातें कर थे। कंचुकी कान लगाकर सुनने लगी। महाराज ने ज़ुबेदा से पूछा—"तुम कहती हो कि सलमा मुझसे प्रेम करती है, किंतु मुझे इस पर विश्वास नहीं होता।"

"क्यों महाराज!" ज़ुबेदा ने प्रश्न किया—"आपको विश्वास क्यों नहीं होता?"

"उसका कारण है।" महाराज बोले—"इस घटना को हुए आज कई महीने हो गए, किंतु आज तक सलमा का कोई पत्र न आया। जब मैंने सैयद साहब के पास चुनौती लिख भेजी, तो उसके स्थान पर सलमा का प्रेम-पत्र आ गया। इसका क्या अर्थ है? तुम्हीं बताओ?"

"आपकी शंका ठीक है।" ज़ुबेदा ने कहा—"इस जगह पर कोई दूसरा होता, तो वह भी यही सोचता, मगर ऐसी बात नहीं है।"

"फिर क्या बात है?"

"महाराज!" ज़ुबेदा ने उत्तर दिया—"आप औरतों के दिल की बात नहीं जान सकते! सलमा उसी दिन और उसी क्षण से आपकी हो गई थी, जब आपने उसके गले में फूलों की माला छोड़ दी थी। औरतें ऊपर से चाहे जितना क्रोध दिखावें, क्रूरता प्रदर्शित करें, किंतु जब उनका कोमल हृदय अपने आप छिन जाता है, तब

वह क्रूरता—वह क्रोध—केवल दिखाने के लिये ही होता है। हृदय अपने आप में मचला करता है। इस रहस्य को एक नारी ही समझ सकती है, पुरुष नहीं।"

"पुरुष भी समझता है!" महाराज ने कहा—"एक सच्चे हृदय की धड़कन, दूसरा सच्चा हृदय स्वतः सुन लेता है।"

"तो क्या आप वह धड़कन नहीं सुन रहे?" ज़ुबेदा ने महाराज को उन्हीं के जाल में फँसाते हुए पूछा—"आपको कुछ भी महसूस नहीं हो रहा?"

"नहीं।" महाराज बोले—"धड़कन तो सुनता हूँ, किंतु अपनी ही, सलमा को नहीं।"

"महाराज!" आपका यह शक बेकार है।" ज़ुबेदा ने कहा—"आपके पास ख़त भेजने के लिये सलमा ने पता नहीं, कितने ख़त लिख-लिखकर फाड़े होंगे। वह नारी-सुलभ लज्जा के वशीभूत होकर आप को कोई पत्र नहीं भेज सकी। आप इसका चाहे जो अर्थ लगाएँ, किंतु सलमा की दयनीय दशा जब आप देखेंगे, तो आपकी आँखों में आँसू आ जायँगे। बेचारी घुट-घुटकर मर रही है। आप नहीं समझते कि औरतें कितनी मजबूर होती हैं। फिर एक सूबेदार की लड़की, जिसके चारो ओर कड़ा पहरा हो। काश! आप उसके दिल का दर्द समझ पाते।"

"ज़ुबेदा!" महाराज ने करुण स्वर में कहा—"मैं सब कुछ जानता हूँ। और मुझसे यह भी छिपा नहीं है कि यह सब एक धोखा है—रहस्य है। फिर भी मैं सलमा के नाम पर सब कुछ सहने को तैयार हूँ। तुम लोगों का इस प्रकार यहाँ आना, वह भी गुप्त रूप से, फिर यहीं पड़े रहना, क्या कम रहस्य-पूर्ण है?"

महाराज के अंतिम शब्द सुनते ही ज़ुबेदा के हाथ के तोते उड़ गए। वह अपने को सँभालकर बोली—"महाराज! आप कुछ भी

सोच सकते हैं।" फिर धीरे से कहा—"जिस दिन से आपका ख़त सैयद साहब के पास गया है, सलमा परेशान है। वह इसी कोशिश में है कि लड़ाई न हो।" कहते-कहते ज़ुबेदा की आँखों में आँसू आ गए। वह आँचल फैलाकर बोली—"अल्लाह चाहेगा, तो सलमा आपकी होकर रहेगी। एक नहीं, हज़ारों शाह शकों उसे रोक नहीं सकते। वह बड़ी जवाँमर्द लड़की है।"

महाराज विहँसकर बोले—"उसकी जवाँमर्दी तो मैं देख चुका हूँ। पूरी चत्राणी है।" फिर ज़ुबेदा से धीरे से कहा—"यदि तुम्हारी बात सच्ची है, तो मैं भी सलमा को प्राप्त करने में कोई कसर न उठा रक्खूँगा।"

"अल्लाह आपकी मदद करे!" ज़ुबेदा ने गंभीरता से कहा—"जुम्मन अब शायद पहुँच गया होगा। ख़ुदा उसे ख़ैरियत से वापस बुला ले, नहीं तो दुनिया में मेरा कोई सहारा न रहेगा।"

"क्यों?" महाराज ने पूछा—"तुम्हारे और कोई नहीं है?"

"नहीं।" ज़ुबेदा ने आँसू पोंछते हुए कहा—"मा-बाप बचपन में ही चल बसे। यही एक भाई है, जिसकी हालत आप जानते ही हैं। मेरा अब आप और सलमा के अलावा दुनिया में कोई सहारा नहीं है।" कहती हुई वह सिसकने लगी। फिर बिलखकर बोली—"नाच-गाकर किसी तरह पेट भर लेती हूँ।"

"ठीक है!" महाराज ने कहा—"अब तुम्हें पेट भरने के लिये नाचना-गाना नहीं पड़ेगा। तुम यहीं रहो। यदि इस प्रकार नहीं रह सकतीं, तो मैं तुम्हारे विवाह का भी प्रबंध कर दूँगा।"

ज़ुबेदा ने लजाकर निगाहें नीची कर लीं। विवाह शब्द से उसके शरीर में रोमांच हो आया।

"अब जाओ।" महाराज ने कहा—"रात बहुत हो गई है, आराम करो।"

ज़ुबेदा उठकर खड़ी हो गई। महाराज ने पूछा—"भोजन तो कर चुकीं न ?"

"हाँ।" ज़ुबेदा ने सिर हिलाकर कहा। वह कक्ष से बाहर निकल आई। कंचुकी उसके बाहर निकलने के पूर्व ही प्रस्थान कर चुकी थी। उधर ज़ुबेदा क़िले से बाहर निकली और इधर कंचुकी रानी का प्रवेश कक्ष में हुआ।

सावित्री बैठी हुई उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। छोटी रानी को देखकर वह मुस्किराती हुई बोली—"ले आईं भेद ?"

"हाँ सावित्री !" कंचुकी ने गंभीर होते हुए कहा—"यह तो बहुत बड़ा षड्यंत्र चल रहा है। तू स्वयं सोच ! एक विधर्मी की लड़की कैसे इनसे प्रेम करेगी ? करेगी, तो यह उसे किस प्रकार यहाँ ले आवेंगे।

"हर्ज क्या है ?" सावित्री ने हँसकर कहा—"प्रेम, प्रेम है ! धर्मी और विधर्मी क्या ? तुम भी तो उसके लिये विधर्मी हो। प्रेम के इतिहास में धर्म का परिच्छेद होता ही नहीं। फिर कुछ सोचकर बोली—"हमारे यहाँ भी तो भवनाग ने अपनी कन्या का विवाह वाकाटकों के यहाँ किया था। क्या वह अंतर्जातीय-विवाह न था ? उसी प्रकार इसे भी समझ लो।"

"नहीं सावित्री।" कंचुकी ने कहा—"तू नहीं समझती। वह अंतर्जातीय विवाह अवश्य था, किंतु अंतर्धर्मीय नहीं ! यह मैं भी मानती हूँ कि प्रेम-प्रेम है। मनुष्य, मनुष्य है। मगर यहाँ यह भी न भूलना चाहिए कि धर्म, धर्म है। सभी धर्मों की अपनी-अपनी मान्यताएँ हैं। जब एक धर्म दूसरे धर्म में मिल नहीं सकता, खप नहीं सकता, तब एक ख़ून दूसरे के ख़ून में कैसे एकाकार हो जायगा ?"

"सुनो !" सावित्री ने हँसकर कहा—"यह तर्क ठीक नहीं। धर्म धर्म भले ही न मिलें, मगर ख़ून-ख़ून मिल सकता है।"

"कैसे ?" कंचुकी ने कहा—"ख़ून का प्रभाव स्वभाव, विचारों और जीवन के आदर्शों पर होता है। समझीं ?"

"हाँ-हाँ, समझ गई।" सावित्री बोली—"जिस ख़ून की प्रशंसा कर रही हो, उसी ख़ून की तुम्हारी बड़ी रानी वासुमती भी तो हैं ? बड़े अच्छे हैं उनके विचार ! बड़ा ऊँचा है आदर्श उनका। कहती हुई सावित्री भी हँस पड़ी। फिर कुछ रुककर बोली—"छोटी रानी, मनुष्य का आदर्श उसके ख़ून और धर्म नहीं, संस्कारों से बनता है।"

"ठीक है।" कंचुकी ने कहा—" तुझे क्या पता कि सैयद की बेटी के संस्कार अच्छे ही होंगे।"

"जब आदर्श अच्छा है, संस्कार भी अच्छे ही होंगे।" कहकर सावित्री हँस पड़ी—"यदि संस्कार इतने अच्छे न होते, तो वह डलमऊ के दुर्ग से भी ऊँचा आदर्श न रखती।"

कंचुकी चुप हो गई। कुछ सोचकर पुनः बोली—"हाँ, तेरी बात ठीक है, आदर्श उसका डलमऊ के क़िले से भी ऊँचा है, लेकिन 'आदर्श' और 'क़िला' दो में से एक ही रहेगा।"

"क्यों ?" सावित्री ने पूछा—"यह भविष्य-वाणी कैसी ? जलन हो रही है नई सौत को देखकर ?"

"नहीं सावित्री !" कंचुकी बोली—"और भी तो बहुत-सी सौतें हैं। मैं क्यों जलूँ, जले मेरी बला ! किंतु मुझे दाल में कुछ काला दिखाई पड़ता है। यदि सलमा मुहब्बत भी करती है, तब भी कुछ-न-कुछ होकर ही रहेगा। इस तरह कोई अपनी लड़की न सौंप देगा।"

"यह तो होगा ही।" सावित्री बोली—"नहीं तो डलमऊ के क़िले में हिजड़ों का प्रवेश न होता।" कहती हुई वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।"

"जा सावित्री।" कंचुकी ने हँसते हुए कहा—"रात बहुत हो चुकी है।"

"होने दो।" सावित्री बोली—"रात तो रोज़ हुआ करती है।"

"और बातें?" कंचुकी ने प्रश्न किया।

"वे भी नित्य ही होती हैं।" सावित्री ने हँसकर कहा—"मगर औरत-मर्द की बातें होती हैं, हिजड़ों की नहीं।" हँसती हुई वह उठ खड़ी हुई।

कंचुकी ने मुस्किराते हुए द्वार बंद किया। सावित्री अपनी कोठरी में चली आई।

सावित्री के जाने के बाद कंचुकी रानी उठीं, उठकर वस्त्र बदले, निशा-श्रृंगार किया, फिर धीरे-धीरे महाराज के कक्ष की ओर चलीं। उन्होंने धीरे से द्वार खोला। महाराज जाग रहे थे। पड़े-पड़े वह कुछ सोच रहे थे। उनके दोनो हाथ सिर पर थे। आहट पाकर उन्हें कंचुकी की ओर देखा, और धीरे से बोले—"कंचुकी?"

"हाँ महाराज!" कंचुकी बोली—"अभी आप सोए नहीं।"

"हाँ।" महाराज बोले—"तुम्हारी प्रतीक्षा में नींद नहीं आई।"

"तो लीजिए, मैं आ गई!" कंचुकी ने मुस्किराते हुए कहा—"अब आप सो जाइए। देखिए कितनी रात बीत चुकी है।"

सोने की अपेक्षा महाराज उठकर बैठ गए। कंचुकी की ओर देखकर बोले—"तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगी?"

"दूँगी।" कंचुकी बोली—"यदि मेरे सामर्थ्य की बात हुई।" और वह महाराज की ओर देखने लगी।

"मैं सोच रहा हूँ।" महाराज बोले—"तुममें इतना आत्म-बल आया कहाँ से?"

"महाराज!" कंचुकी बोली—"मैं भी यही सोच रही हूँ कि आपका आदर्श इतना ऊँचा कैसे हो गया?"

"कैसा आदर्श ?" महाराज ने प्रश्न किया।

"आदर्श का कोई रूप तो होता नहीं !" कंचुकी बोली—"जिसे मैं आपके सामने व्यक्त कर सकूँ ! वह तो जीवन का एक पक्ष-मात्र है, चाहे सृजन का हो अथवा विनाश का।"

"मैं समझा नहीं।" महाराज ने गंभीर होते हुए पूछा।

"मैं भी तो आपकी बात नहीं समझी।" कंचुकी ने मुस्किराते हुए कहा—"जब हम दोनो एक दूसरे के प्रश्नों से अनभिज्ञ हैं, तो अधिक अच्छा हो यदि मैं अपने आत्मबल को आपका आदर्श मान लूँ, और आप अपने आदर्श को मेरा आत्मबल।"

"यह असंभव है।" महाराज हँसकर बोले—"मुझे अर्ध-नारीश्वर बना रही हो !"

"महाराज !" कंचुकी ने हँसकर कहा—"शिव तो आप हैं ही।"

"नहीं।" महाराज बोले—"हम भार शिव हैं, केवल शिव नहीं।"

"तो ठीक है।" कंचुकी बोली—"जब तक आप यह भार वहन नहीं करेंगे, तब तक भार शिव कैसे ?"

"कौन-सा भार ?" महाराज ने आश्चर्य से पूछा।

"यही।" कंचुकी हँसकर बोली—"आदर्श और आत्मबलवाला।"

महाराज लज्जित हो गए। उन्होंने उसे बाँहों में भरकर दबा लिया। वह सिसककर रह गई। और अपने को छुड़ाती हुई बोली—"अब तो उत्तर मिल गया होगा। सत्य निकली न मेरी बात ? कितना सुंदर है आपका आदर्श !"

प्रत्युत्तर में महाराज ने कंचुकी के आरक्त कपोलों को चूम लिया।

प्रभात हुआ। एक नई चेतना, नई प्रेरणा एवं नई स्फूर्ति किले में सर्वत्र फैल गई। महाराज उठे। स्नान-ध्यान, एवं जल-पान से निवृत्त हो राजदरबार की ओर चले। थोड़ी दूर गए होंगे कि उधर

से ज़ुबेदा आती हुई दिखाई पड़ी। महाराज रुक गए। ज़ुबेदा ने एक मीठी अदा के साथ अपनी कंचुकी से एक पत्र निकाल महाराज के हाथ पर रख दिया, और विहँसकर लौट गई। महाराज दरबार न जाकर अपने कक्ष की ओर मुड़ गए। कक्ष में पहुँचकर उन्होंने पत्र खोला और लेटकर उसे देखने लगे। वही हस्त-लिपि, वही स्याही, वही काग़ज़ और वही चमकते हुए मोती-जैसे सुंदर-सुंदर अक्षर! महाराज ने पत्र पढ़ना प्रारंभ किया—

"मेरी उम्मीदों के महकते हुए चमन,

"मैं यह जानती हूँ कि तुम्हें चमन से नफ़रत है। बुलबुल से परहेज़ है, और गुल से ग़ुरेज़ है, मगर क्या करूँ? कोयल बनने के लिये मुझे मीठी आवाज़ सीखनी पड़ेगी। मेरी आवाज़ कैसी है, यह तुम देख ही चुके हो। मैं कोयल की तरह कूक-कूककर आस-पास की डालियों को चौंकाना नहीं चाहती। बुलबुल की तरह अपना तराना, महज़ चमन के एक हँसते हुए ख़ुशनुमा फूल को सुनाना चाहती हूँ। वह सुने या न सुने। जब तक दूर हूँ, तब तक बुलबुल ही रहूँगी, और जब तुम्हारा दामन थाम लूँगी, तब चाहे मुझे कोयल बनाना, चाहे राजहँसिनी। अभी मैं जो कुछ हूँ, मुझे वही रहने दो। तुम अपना निकुंज सजाओ। जब मौसम आ जाय, तो मुझे ख़बर करना। मैं अपना चमन छोड़कर तुम्हारे निकुंज में कोयल की तरह कूकने लगूँगी।

"मगर, सोच लो! इस तरह के लफ़्ज़ लिखने से अच्छा था कि मेरे लिये एक ज़हर की शीशी भेज देते। क्या लिखा है, मेरी बात पर यक़ीन नहीं? ठीक है, एक ज़ख़्मी बुलबुल की पुकार पर सैय्याद को कभी यक़ीन हुआ है या आज ही होगा? बुलबुल चीख़ेगी, तड़पेगी, और मर जाएगी, मगर सैयाद लबों पर तवस्सुम लिए उसे देखता ही रहेगा, क्योंकि घायल तो बुलबुल है, सैय्याद नहीं।

वह उसका दर्द क्या जाने? यदि दर्द की पहचान होती, तो वह इंसान कहलाता, सैय्याद नहीं।"

"तुमने लिखा है कि मेरे वालिद ने तुम्हारी चुनौती का जवाब क्यों नहीं दिया? तुम्हारी चुनौती का जवाब तो मैं खुद दे रही हूँ, बेचारे वालिद से क्या मतलब। उनकी तो मंशा जंग से है। वह शाह शर्की से मशविरा कर रहे हैं। मगर मैं आपको यक़ीन दिलाती हूँ, यह लड़ाई होगी नहीं। अभी तो मैं इस कोशिश में हूँ कि मेरी वजह से लाशों का ढेर न लगे। मगर जब मैं देखूँगी कि मेरी बात की कोई अहमियत नहीं, तो ज़हर खाकर मर जाऊँगी। जिस्म यहीं पड़ा रह जायगा और रूह तुम्हारे पास पहुँचेगी। तब तो जंग का जोश ठंढा पड़ेगा न? जब सलमा ही न रहेगी, तो कैसी जंग?

"आज कई दिनों से मेरा सिर दर्द से चकरा रहा है। बोलो, क्या करूँ? मेरी जान लेकर ही मानोगे? यह तुम्हारा मौसम का इंतज़ार है या मेरे साथ खिलवाड़? खेल लो ज़ालिम, जब तक खेलना चाहो मेरी जिंदगी के साथ। मरते-मरते भी ज़बान से अलविदा न कहूँगी।

"वह देखिए, अम्मी चली आ रही हैं। मैं अब कुछ न लिखूँगी। ज़ुबेदा का ख़याल रखना। अच्छा........।

तुम्हारी याद में—
बदनसीब सलमा"

महाराज ने पत्र पढ़कर छाती पर रख लिया। हृदय की धड़कन और तेज़ हो गई थी। शरीर पर बेहोशी छाने लगी थी। आँखों में सलमा का वही गंगा-तटवाला रूप नाच रहा था। सुंदर मुखड़ा, मद-भरे नेत्र, बिंबाफल-से अधर और रेशम-सी लहराती हुई केश-राशि........!"

---

[२५]

दोपहर हो चुकी थी। मार्गशीर्ष के सूर्य की धीमी-धीमी उष्णता गंगा के कछार में उगते हुए गेहूँ, जौ के पौधों को ऊपर की ओर खींच रही थी। लहलहाते हुए पलाश के वृक्षों पर चौड़े-चौड़े रुक्ष पत्ते सिर उठाए खड़े थे। झाऊ की झाड़ियाँ पीली पड़ती जाती थीं, और उनकी गाँठों के गोल धरेरे मिटते-से जाते थे। तट पर गाय, भैंसों एवं भेड़-बकरियों के झुंड विचर रहे थे। उस समय गंगा का तट पकड़े हुए, क़िले के नीचे से, एक साधु गाता हुआ चला आ रहा था। सिर पर श्वेत वर्ण जटा-जूट, पकी हुई लंबी दाढ़ी, तन पर गेरुए वस्त्र, एक हाथ में कमंडलु और दूसरे में लोहे का लंबा चिमटा था। बुढ़ापे से शिथिल शरीर अब भी स्वस्थ था। बड़ी-बड़ी चमकती आँखों के ऊपर, मस्तक के बीचोबीच, त्रिपुंड्र था। साधु अपने आपमें मस्त, झूमता-झामता, गाता हुआ जा रहा था—

"घट-घट में भगवान् बंदे! घट-घट में भगवान्!
सूरज - चंदा, झिलमिल तारे,
यह नदिया, ये लहर - किनारे,
जीव - जंतु - प्राणी बेचारे,
जलती राख! बुझे अंगारे,
सबका उसको ध्यान! बंदे, घट-घट में भगवान्!

सलमा अपने कक्ष के द्वार बंद किए पड़ी थी। अस्त-व्यस्त केश-

राशि का लपेटा हुआ जूड़ा खिसककर ग्रीवा के नीचे आ गया था। ओढ़नी सिर से कंधे पर आ गई थी, जिसके छोर बाहों को स्पर्श करते हुए वक्षःस्थल को ढकने का असफल प्रयास कर रहे थे। सलमा पड़ी-पड़ी कुछ सोच रही थी। उसी समय साधु की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। वह उठ बैठी। जल्दी-जल्दी उसने वस्त्र ठीक किए, ओढ़नी सिर पर छोड़ी, और झरोखे से नीचे की ओर झाँकने लगी। साधु अपनी धुन में गाता हुआ चला जा रहा था—

"घट-घट में भगवान्, बंदे! घट-घट में भगवान्!

सलमा खड़ी-खड़ी उसे निहारती रही। उसका गीत सुनती रही। जब वह क़िले के समानांतर बढ़ता हुआ झरोखे के नीचे आया, तो सलमा ने पुकारा—"बाबाजी!"

साधु रुक गया। उसका गीत बंद हो गया। उसने विस्मय से ऊपर की ओर निहारा। एक सुंदर नवयुवती, बड़े-बड़े मदिराम नेत्रों से उसे देख रही थी। साधु ने दृष्टि नीचे झुका ली। सलमा ने पुनः प्रश्न किया—"बाबाजी, आप कहाँ जा रहे हैं?"

"रमता योगी हूँ बेटी!" साधु बोला—"क्या बताऊँ, कहाँ जा रहा हूँ।"

"तो आज यहीं धूनी रमाइए!" सलमा ने कुछ सोचकर आत्मीयता से कहा—"मैं आपके भोजन का प्रबंध करवा दूँगी।"

साधु नवयुवती के भोलेपन पर मुस्किरा उठा। बोला—"जिसने पैदा किया है, वह भोजन तो देगा ही, चाहे महल में रुकूँ अथवा जंगल में।" इतना कहकर वह चल पड़ा।

"जा रहे हो!" सलमा ने जिज्ञासा से कहा—"मेरी बात न मानोगे?"

"मानूँगा।" साधु बोला—"किंतु इस समय नहीं।"

"फिर कब ?" सलमा ने पूछा।

"जब भगवान् चाहेगा।"

सलमा ने कुछ अशर्फ़ियाँ साधु के पास फेंक दीं और बोली—"बाबा, मेरा एक काम करोगे ?"

साधु ने एक बार अशर्फ़ियों की ओर देखा और दूसरी बार सलमा की ओर। फिर बोला—"बेटी! मैं कुत्ता नहीं हूँ, जो इन टुकड़ों पर पलूँ। मैं संन्यासी हूँ, जंगली जड़ी-बूटियाँ खाकर अपना पेट भरता हूँ। मुझे स्वर्ण-मुद्राएँ न चाहिए।"

सलमा एकटक उसे देखती रही।

साधु ने कुछ सोचकर कहा—"बता ? क्या चाहती है ?"

"कुछ नहीं बाबा!" सलमा ने रुँधे कंठ से कहा—"आप जाइए, मैं कुछ नहीं चाहती।"

साधु को दया आ गई। बोला—"अभी तो पूछ रही थी, मेरा एक काम करोगे ?"

"हाँ, पूछ रही थी।" सलमा बोली—"मगर अब मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।"

"भगवान् तुझे सद्बुद्धि दे।" कहकर साधु चल पड़ा। उसका स्वर "घट-घट में भगवान् बंदे, घट घट में भगवान्!" गूँजता रहा। सलमा उसे एकटक खड़ी देखती रही। जब आँख से ओझल हो गया, तो सलमा कटे वृक्ष की भाँति पलँग पर गिर पड़ी। ओढ़नी के छोर से उसने मुख ढक लिया, और सिसकने लगी। थोड़ी देर बाद उसने उठकर अपने बिस्तरे से काग़ज़ का एक टुकड़ा निकाला। उसे उलट-पुलटकर देखा, और फिर फाड़कर, गोलाकार बना उसे गंगा के हवाले कर दिया।

यह पत्र उसने राजा ढल को पुनः सतर्क करने के लिये, रात-भर सोच-सोचकर, दुबारा लिखा था। दोपहर तक वह उसे अपनी छाती में छिपाए रही। दोपहर के बाद वह बिस्तरे के नीचे आ गया।

वह सोच ही नहीं पाई कि इसे डलमऊ तक किस प्रकार पहुँचाया जाय, जिससे राजा डल को पता लग जाय कि वह पत्र सलमा का लिखा नहीं है; बल्कि उन्हें धोखा दिया जा रहा है। वह अब भी अपनी बात पर दृढ़ है। तुमसे मुहब्बत नहीं करती। यह सब उसके घरवालों का कुचक्र-मात्र है। विश्वासघात है.......।" सोचती-सोचती सलमा परेशान हो उठी। उसी समय साधु उसे दिखाई पड़ा। वह पुलक उठी। उसने साधु को लालच देने के लिये कुछ अशर्फ़ियाँ निकालीं कि यदि यह लोभ में पड़कर मेरा पत्र किसी प्रकार डलमऊ तक पहुँचा दे, तो काम बन जाय। उसने साधु से पूछा भी, किंतु उसका रूखा-सा उत्तर पाकर वह आगे कुछ कहने का साहस न कर सकी। साधु चला गया। सलमा पुनः लेटकर सोचने लगी।

"अब क्या हो ?" उसने अपने-आप प्रश्न किया। खिड़की से झाँककर फिर देखा, कुछ दूरी से साधु के गीत का स्वर आ रहा था। वह तन्मयता से सुनती रही, सुनती रही और फिर....'घट-घट में भगवान्, बंदे! घट-घट में भगवान्' गुनगुनाती हुई लेट गई।

"सलमा !" उसकी मा ने कक्ष के कपाट पर धक्का देते हुए कहा—"खोल तो।"

सलमा ने उठकर धीरे से द्वार खोल दिया। बेगम साहबा ने उसके निकट जाकर पूछा—"तुझे क्या हो गया है ?"

"कुछ तो नहीं अम्मी !" सलमा ने कहा—"मैं ठीक हूँ।"

"ठीक हूँ ?" बेगम साहबा ने मुँह बनाया—"अपनी शक्ल तो आईने में देख। सुर्ख़ चेहरा, पीला पड़ गया है। आँखों में रोशनी ही नहीं रही। मालूम पड़ता है महीनों से बीमार है।"

"नहीं अम्मी।" सलमा ने मुस्किराने का प्रयत्न करते हुए कहा—"इधर कुछ तबियत ठीक नहीं रही और तो कोई बात नहीं है।"

"हूँ!" बेगम साहबा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"चल उठ!"

सलमा उठ खड़ी हुई। बेगम साहबा के साथ-साथ वह सूबेदार साहब के कक्ष की ओर चली। कक्ष में सूबेदार साहब एवं शातिर आमने-सामने गंभीर मुद्रा में बैठे थे। सूबेदार साहब के हाथ में सलमा के उसी पत्र के भीगे हुए टुकड़े थे, जिसे अब से कुछ समय पूर्व उसने फाड़कर, गोला बनाकर गंगा में बहाया था। सूबेदार-साहब उन टुकड़ों को ग़ौर से देख रहे थे और शातिर कह रहा था—"हुज़ूर! मान लीजिए, ये टुकड़े मेरे हाथ न लगकर किसी दुश्मन के हाथ पड़ते, तो कड़े के क़िले से भागने का रास्ता न मिलता।"

"हूँ!" सूबेदार साहब ने क्रोध से कहा, और फिर उन्हीं टुकड़ों में उलझ गए। शातिर कहता रहा—"इधर से एक साधु गंगा पार कर रहा था। मुझे संदेह हुआ कि दुश्मन का भेदिया तो नहीं है। मैंने उसकी तलाशी ली। नाव रुकवा दी। उसके पास कुछ भी न निकला। तब तक यह काग़ज़ का गोला बहता हुआ, नाव से टकराने लगा। मैंने उसके भीगे टुकड़ों को पानी से निकालकर देखा, तो यह सलमा का ख़त निकला।" फिर आवेश में कहा—"यह है सलमा की हरकत, जो हमारी सभी उम्मीदों पर पानी फेरने जा रही है।"

सलमा अपनी मा के साथ अब तक कक्ष में आ चुकी थी। उसे देख शातिर चुप हो गया। सूबेदार साहब ने क्रोध-पूर्ण दृष्टि से एक बार अपनी बेटी की ओर देखा, फिर पूछा—"सलमा! यह ख़त तेरा लिखा है?"

सलमा अपने पत्र के टुकड़े देखकर काँप उठी। इसी पत्र को तो उसने अभी गंगा में फेंका था, तो क्या यह इनके हाथ लग गया? सलमा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। माथे पर पसीने की बूँदें छलक आईं। वह सिर झुकाकर धरती की ओर देखनी लगी।

"बोलती क्यों नहीं ?" सूबेदार साहब ने तेज़ आवाज़ में पूछा।

"जी हाँ !" सलमा ने अपनी छाती के तूफ़ानों को दबाते हुए कहा—"मुझे यह सब पसंद नहीं।"

"क्या ?" सूबेदार साहब ने कड़ककर पूछा—"क्या पसंद नहीं ?"

"अब्बा जान !" सलमा ने कहा। उसका सिर अपने आप ऊपर उठा। चेहरे पर क्रोध की लालिमा छा गई। वह बोली—"अगर आपको मेरे अपमान का बदला राजा डल से लेना है, तो सीधे डलमऊ पर चढ़ाई कीजिए। जीतने की उम्मीद न हो, तो जौनपुर वापस चलिए, मगर मेरे नाम पर किसी को धोखा देकर मेरी ज़िंदगी के साथ मज़ाक़ न कीजिए।" कहती हुई सलमा लाल पड़ गई।

सूबेदार साहब थोड़ी देर तक एकटक सलमा के मुख की ओर देखते रहे। फिर गंभीर स्वर में बोले—"यह मज़ाक़ नहीं है। यह सब सियासी चालें हैं। तू क्या समझे ?"

"मैं सब कुछ समझती हूँ !" सलमा ने आवेश-पूर्ण मुद्रा में, किंतु धीरे से कहा—"जिस आदमी की एक-एक बोटी काटने को मैंने कहा हो, जिसके क़िले की एक-एक ईंट गिराने की मैंने क़सम खाई हो, उसी के पास, मेरे नाम से आप लोग मुहब्बत का ख़त क्यों भेजते हैं ? आप इसे सियासी चाल कहते हैं। मैं सझती हूँ कि यह धोखा है, बदमाशी है और राजा डल के साथ विश्वाघात !" कहते-कहते सलमा की साँस तेज़ हो गई। उसने सैयद साहब के चेहरे की ओर देखा, फिर कहा—"मेरे नाम पर आप लोग कालिख न लगाएँ, उसका नाजायज़ फ़ायदा न उठाएँ, नहीं तो मैं कहीं डूबकर मर जाऊँगी...........।" सलमा की आँखे छलछला उठीं। उसने अपने आँसुओं को दबाते हुए कहा—"दुनिया क्या कहेगी ? यही न कि लड़की मुहब्बत करती थी, ख़त भेजती थी, मेरे साथ यह मज़ाक़ !

मेरे नाम का यह खिलवाड़....!" कहती हुई सलमा फफक पड़ी, और तेज़ी से बाहर निकल गई।

कक्ष में थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। सभी सिर झुकाए बैठे रहे। सूबेदार साहब ने मौनता भंग करते हुए शातिर से कहा—"देखा न? वही बात आ गई। मैं शुरू से ही इसकी ख़िलाफ़त कर रहा था। मगर तुम लोग नहीं मानें। सलमा लड़की है, तो क्या हुआ? उसकी रगों में भी शाही ख़ून है। ख़ून में गरमाहट है। वह यह सब कैसे बर्दाश्त करती?"

"तो क्या हो गया?" बेगम साहबा ने कहा—"इसमें कौन-सी बदनामी हो गई? कालिख तो सलमा ख़ुद अपने मुख में पोत रही है। अगर यह ख़त शातिर के अलावा किसी दूसरे के हाथ में पड़ता, तो क्या इज़्ज़त रहती?

"मैं अब इससे ज्यादा सलमा के दिल को दुखाना नहीं चाहता।" सूबेदार साहब ने झुँझलाकर कहा—"यदि राजा डल की चुनौती मंज़ूर है, तो लड़ो, वर्ना सलमा का डोला भेज दो।"

"यह ग़ुस्सा आप किस पर दिखा रहे हैं?" बेगम साहबा ने क्रोध से पूछा। "भेज दीजिए डोला, मुझे क्या करना है।"

"आप चुप रहिए।" शातिर ने बेगम साहबा को संबोधित कर कहा—"एक-एक बोटी कट जायगी, लेकिन सलमा का डोला नहीं जायगा। हम आख़िरी साँस तक लड़ेंगे। शाह शर्की के पास ख़बर भेजकर उन्हें जल्द से जल्द बुला लीजिए।"

"ख़बर भेज चुका हूँ।" सूबेदार साहब ने कहा—"दुबारा फिर भेद दो।"

"अगर इजाज़त हो, तो मैं ही चला जाऊँ?" शातिर ने पूछा।

"नहीं।" सूबेदार साहब बोले—"तुम्हारा जाना ठीक नहीं। सूबेदार शम्सुद्दीन साहब को भेज दो।"

"उन्हीं को भेज दीजिए।" शातिर ने कहा—"मगर अब देर करना ठीक नहीं। सलमा ने फिर कहीं पलटा खाया, तो बेड़ा पार है।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ। सब लोग बाहर निकल आए। शातिर एवं सूबेदार साहब क़िले के दीवाने - ख़ास की ओर चले। वहीं बैठकर गुप्त-मंत्रणा होने लगी। एक आदमी मानिकपुर भेजा गया। बेगम साहबा थोड़ी देर तक आँगन में टहलती रहीं, फिर अपने कक्ष में जाकर लेट गईं। वहीं से उन्होंने सदरुन को पुकारा।

सदरुन उनके कक्ष में जा पहुँची। उसे देखकर वह बोलीं—"सलमा क्या कर रही है?"

"देखकर बताती हूँ।" सदरुन ने कहा। उसने जाकर सलमा के कक्ष के किंवाड़ खोलकर झाँका। फिर लौटकर बेगम साहबा से कहा—"पड़ी रो रही है।"

"रो रही है।" सुनते ही मा की ममता जाग उठी। उन्हें अपनी भूल का ध्यान आया। "आज महीनों से उनकी मासूम बेटी पड़ी-पड़ी घुल रही है। उसका फूल-सा चेहरा सूख गया है। कपोलों की सुर्ख़ी उड़ गई है। चेहरे पर कोई रौनक़ बाक़ी नहीं रह गई। अगर सलमा को कुछ हो गया तब?" सोचती हुई वह उठ खड़ी हुईं और सलमा के कक्ष की ओर चलीं। वह पड़ी सिसक रही थी। बेगम साहबा ने उसके निकट बैठकर उसे छाती से लगा लिया। ममता से उसके कपोलों को चूमा तथा अपने आँचल के छोर से आँसू पोंछे। सलमा उनकी छाती में सर छिपाकर सिसकने लगी। बेगम साहबा की आँखों में भी आँसू आ गए। मा-बेटी दोनो एक दूसरे को पकड़कर ख़ूब रोईं। उन्होंने सलमा को सांत्वना देते हुए कहा—"बेटी, क़ुसूर मेरा है, अब ऐसी ग़लती न होगी।"

"अम्मी!" सलमा ने बिलखकर कहा—"उस क़ाफ़िर ने मेरी

बेइज़्ज़ती की, और उसी को मेरी तरफ से मुहब्बत का ख़त लिख रही हो ?"

"अब न लिखूँगी।" बेगम साहबा ने स्नेह से कहा—"तेरी बेइज़्ज़ती का बदला तलवार से लिया जायगा। उठ तो।" उन्होंने सलमा को उठाते हुए सदरुन से पानी माँगा। सदरुन पानी रखकर चली गई। बेगम साहबा ने सलमा का मुख धोया। अपने आँचल से उसे पोंछकर कहा—"चल आज क़ुरान-शरीफ़ नहीं सुनाएगी ? तेरे मुख से बड़ा अच्छा लगता है।"

"सुनाऊँगी !" सलमा बोली—"साँझ तो होने दो।" वह उठकर बैठ गई।

बेगम साहबा चली गईं। उनके जाने के बाद सलमा ने कपड़े बदले। बालों को ठीक किया। उन्हें फूलों से सजाया। झरोखे के पास बैठकर वह गंगा की उछलती हुई लहरों को देखने लगी।

संध्या हो रही थी। मंद-मंद वायु के झोंके सुरसरि की पावन तरंगों से लिपट-लिपटकर सलमा के हृदय में प्रकंपन पैदा कर रहे थे। जल की धार अब बहुत कम हो गई थी। उस पार फैली हुई रेत की सफ़ेद चादर पर वायु के झोंके चित्र बना-बनाकर कहीं चले गए थे। किनारे पर खड़े हुए पेड़ दूर से ऐसे लग रहे थे मानो मेंहदी की झाड़ियाँ हों। रेत के टीले पर दो सारस के जोड़े खड़े-खड़े गर्दन मरोड़ रहे थे। सलमा की निगाह उन्हीं पर जाकर उलझ गई।

"कैसी हसीन ज़िंदगी है।" उसने अपने-आप से कहा और फिर उन्हें ग़ौर से देखने लगी। दोनो सारस एक-दूसरे से चोंच मिला-मिलाकर खिलवाड़ कर रहे थे, लिपट रहे थे, तथा अलग हो रहे थे।

उसी समय किसी ने किनारे से ताली बजाई। दोनो सारस

चौंक पड़े। सिर उठा-उठाकर बाधा पहुँचानेवाले को देखने लगे। उसी समय उनके पास एक ढेला आ गिरा। वे दोनो 'कुड़ी-कुड़ी' की आवाज़ करते हुए उड़ चले।

उनके प्रेमालाप में हस्तक्षेप करनेवाले पर सलमा को क्रोध आ गया। उसने झाँककर देखा। एक व्यक्ति फटा पायजामा एवं चपकन पहने चला जा रहा था। चपकन के बंद खुले थे। सलमा ने ज़ोर से पुकारा—"सदरुन!"

सदरुन आ गई।

सलमा ने कहा—"देख तो, यह कौन जा रहा है।"

सदरुन ने झाँककर देखा। वह मुस्किरा उठी। बोली—"जुम्मन है।" फिर कुछ रुककर कहा—"शायद डलमऊ से आ रहा है।"

"इस बदतमीज़ को यहाँ पकड़ ला।" सलमा ने गुस्से से कहा।

सदरुन बाहर निकल गई। जुम्मन अब तट से क़िले की ओर आ रहा था। उधर डूबते हुए सूर्य की लाल-लाल किरणें गंगा के जल को अरुणिमा में डुबा रही थीं। इधर जुम्मन मियाँ ताली पीटते हुए चले आ रहे थे। सारस का जोड़ा उड़कर दूसरे तट पर बैठ गया था। जुम्मन ने क़िले में पहुँचकर सैयद साहब के द्वार की जंज़ीर खटखटाई। सदरुन ने बढ़कर द्वार खोल दिया। उसे देखते ही जुम्मन विहँस उठा। बोला—"सूबेदार साहब है?"

"जी हाँ।" सदरुन ने कहा, फिर धीरे से हँसकर उसकी चपकन का पल्ला पकड़ लिया। जुम्मन ने दोनो हाथ से उसे छुड़ाते हुए कहा—"यह क्या बदतमीज़ी है?"

"उस दिन भाग गए थे न?" सदरुन ने हँसकर कहा—"आज भागो, तो बताऊँ।"

"अबे, छोड़।" जुम्मन ने चपकन के पल्ले को झटका देते हुए कहा—"फट जायगी।"

"फटने दो।" सदरुन बोली—"मैं अब तुम्हें न छोड़ूँगी!"

"अच्छा।" जुम्मन ने मुँह बनाया—"अगर मैं तुम्हारी ओढ़नी इसी तरह पकड़कर खींचूँ, तब?"

"खींचो न।" सदरुन बोली—"है हिम्मत?"

"मेरी ताक़त अभी तुमने आज़माई कहाँ?" जुम्मन ने कहा।

उसी समय सलमा ने पुकारा—"जुम्मन! चल इधर।"

जुम्मन घबरा उठा। चपकन छुड़ाते हुए बोला—"छोड़ो न। कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा?"

सदरुन ने चपकन छोड़ दी। जुम्मन काँपता हुआ सलमा के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। सलमा ने उसे किंवाड़ बंद करने का इशारा किया। जुम्मन ने कपाट बंद कर सलमा की ओर निहारा।

"कहाँ से आ रही है सवारी?" सलमा ने पूछा।

"डलमऊ से।" जुम्मन ने उत्तर दिया—"रात में ही वहाँ से भागा हूँ, और शाम होते-होते यहाँ आ गया।

"तब तो कमाल कर दिया!" सलमा ने उसकी पीठ ठोंकते हुए पूछा—"ख़त लाए?"

"हाँ।"

"लाओ, मेरे हवाले करो।"

जुम्मन सकपका गया और बगलें झाँकने लगा।

"इधर-उधर क्या देखता है?" सलमा ने डाटकर कहा—"ख़त निकाल।"

जुम्मन ने ख़त निकालकर सलमा को दिया। सलमा ने पत्र हाथ में लेकर जुम्मन का कान पकड़कर पूछा—"उस सारस के जोड़े को ढेला क्यों मारा?"

"बताऊँ?" जुम्मन ने गर्दन झुकाते हुए कहा।

"बता।" सलमा बोली।

"नाराज़ न होना।" जुम्मन ने कहा—"मुझसे देखा नहीं गया, इसलिये !"

"क्या नहीं देखा गया ?" सलमा ने प्रश्न किया।

"वही, जो वह दोनो कर रहे थे।" कह, जुम्मन ने निगाहें नीची कर लीं।

सलमा ने खींचकर एक तमाचा उसके गाल पर जड़ दिया। वह चीख़ उठा। सलमा ने हाथ में तलवार उठाकर कहा—"इधर देख।" जुम्मन काँप उठा।

सलमा बोली—"ख़बरदार ! इस ख़त के बारे में किसी से बताना नहीं, वर्ना तेरी बोटी बोटी काटकर रख दूँगी। कह देना वहाँ से जवाब ही नहीं मिला। अच्छा ?"

"मैं साँस न लूँगा !" जुम्मन गिड़गिड़ाकर बोला—"आप ख़ुदा के लिये तलवार वहीं रख दें। मेरी रूह फ़ना हो रही है।"

"भाग यहाँ से।" सलमा ने उसे दुतकार कर कहा।

जुम्मन भाग गया। बाहर निकलकर उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया। सलमा की तलवार अब भी उसकी आँखों में चमक रही थी।

जुम्मन जैसे ही क़िले के बाहर निकला, उसे सामने से आते हुए सूबेदार साहब और शातिर दिखाई पड़े। वह रुक गया। सामने आते ही उसने झुककर सलाम किया।

"कहो जुम्मन, क्या हाल है ?" शातिर ने हँसकर पूछा।

"ठीक है परवरदिगार !" जुम्मन ने कहा—"आपको धोखा हो गया ?"

"क्या हुआ ?" सैयद साहब ने चौंककर पूछा—"ख़ैरियत तो ?"

"ख़ुदा का शुक्र है।" जुम्मन बोला—"उसने अबकी बार ख़त का जवाब ही नहीं दिया।"

"क्यों ?" शातिर ने आश्चर्य से पूछा।

"कहता है, मैं सब कुछ समझ गया हूँ।" जुम्मन ने मुँह बना-कर कहा—"पता नहीं, उसको कैसे ख़बर लग गई।"

"ज़ुबेदा कहाँ है ?" शातिर ने पूछा।

"वहीं हैं।" जुम्मन ने उत्तर दिया—"मैं अकेला ही आया हूँ।"

"मेरा भी काम कुछ किया ?" शातिर ने पूछा—"या यों ही फ़ाख़्ता उड़ाते रहे।"

"फ़ाख़्ता नहीं।" जुम्मन बोला—"सारस उड़ाता हूँ, सारस। फ़ाख़्ता तो बहुत छोटी चिड़िया है।"

"क्या कहा ?" शातिर ने क्रोध से पूछा।

"कुछ नहीं।" जुम्मन बोला—"आपका काम हो गया। बाहर का भेद मैं बताऊँगा, भीतर का ज़ुबेदा।"

"ठीक।" शातिर ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"जियो जुम्मन !"

जुम्मन प्रसन्न हो गया। वह थिरकता हुआ शातिर के पीछे-पीछे चलने लगा। सब लोग क़िले के कक्ष में आ गए।

सलमा आँगन में बैठी अपनी अम्मो को क़ुरान-शरीफ़ सुना रही थी। बाहर अंधकार छाया हुआ था।

---

[२६]

बूढ़ा साधु गंगा पार करके अपनी कुटिया की ओर चला। उसकी कुटिया शीतला देवी के मंदिर के पास, कड़े से एक मील की दूरी पर, गंगा के किनारे थी। साँझ हो चुकी थी। साधु ने झोपड़ी में पहुँचकर दीपक जलाया। संध्या-वंदन किया। सब कार्यों से निवृत्त होकर वह टहलने चल पड़ा। पास ही अन्य साधु-संन्यासियों की झोपड़ियाँ थीं। सबसे अलग, कुछ दूरी पर, श्मशान घाट के पास एक औघड़ बाबा खोपड़ियों की माला पहने बैठे रहते थे। उनकी यह दशा थी कि अपने आस-पास नारियों को तो आने नहीं देते थे, केवल पुरुषों से ही बातें किया करते थे। उनका विश्वास था कि चौरासी लक्ष योनियों में एक प्रेत-योनि भी है। इस योनि में नारी-पुरुष सभी होते हैं। मर्दों को तो वश में किया जा सकता है, मगर चुड़ैलों को नहीं। इसका प्रमाण वे डलमऊ-श्मशान-घाट पर लगनेवाली एक भयानक चुड़ैल की कहानी बताकर दिया करते थे।

वयोवृद्ध साधु टहलता-टहलता गंगा-तट की ओर बढ़ा। औघड़ बाबा का दरबार लगा हुआ था, किंतु वह वहाँ नहीं गया। तट पर ही आसन लगाकर बैठ गया। सामने कड़े का क़िला दिखाई पड़ रहा था। वह झरोखा भी झलक रहा था, जिससे उस नवयुवती ने उसे पुकारा था। साधु सोचने लगा—"वह युवती कौन है? मुखाकृति से तो राजकन्या-सी प्रतीत होती है। उसे क्या कष्ट है? क्या मैं उसकी कुछ सहायता कर सकता हूँ........" सोचता हुआ साधु विचारों में तन्मय हो गया। उसके जीवन के विगत दिन उसकी आँखों में नाच उठे। एक दिन वह भी तो राजसी-व्यक्ति

था। सभी भोग-विलास के साधन उसके पास थे। घर था, हाथी थे। घोड़े थे। धन-वैभव था। सभी कुछ तो था उसके पास। हाँ, संतान न थी। ईश्वर की अनुकंपा हुई। उसकी पत्नी ने यौवन ढलने पर एक कन्या को जन्म दिया। घर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। किंतु उसकी जीवन-संगिनी को यह सुख बदा नहीं था। जब कन्या डेढ़ वर्ष की थी, तभी चल बसी। उसने ही उसे पाला-पोसा, बड़ी किया। धीरे-धीरे वह फूल-सी कोमल बालिका यौवन के द्वार पर आ पहुँची। उसके रूप का सौरभ घर के बाहर तक फैल गया। अनेकों राज-पुरुष उससे विवाह करने को लालायित हो उठे....।"

आज क़िले में इस लड़की को देखकर साधु को अपनी पुत्री की याद सताने लगी। उसकी आँखें भी ऐसी बड़ी-बड़ी थीं। ऐसा ही चेहरा था। ऐसी ही कपोलों की लाली एवं ऐसी ही अधरों की मुसकान! किंतु आज? विपत्तियों ने उसे जर्जर कर डाला है। अब वह राजपुरुष नहीं, एक संन्यासी है।

"उसकी वह कन्या?" बूढ़े साधु ने लंबी साँस ली। "पता नहीं, उसकी क्या दशा हो? एक बार उसे पुनः देख लेता, तो अपने हृदय के टुकड़े को आँखों में बसाकर शांति से मर सकता। किंतु नहीं, अब उसे देखना क्या? उसकी छाया के दर्शन दुर्लभ हैं।" सोचते-सोचते साधु की ममता जाग्रत् हो गई। नयन छलछला उठे। वह खड़ा हो गया। क़िला, क़िले का कक्ष, और झरोखे में खड़ी लड़की का स्वरूप उसकी आँखों में झूम उठा। कितना साम्य था दोनों में। बूढ़े साधु को लगा मानो उसी की पुत्री उसे झरोखे से पुकार रही थी। वह एक बार पुनः उसे देखने को ललक उठा। धीरे-धीरे वह विचार-मग्न अपनी झोपड़ी की ओर चला। आज रास्ते भर उसके मुख से किसी ने उसकी चिर-परिचित स्वर-लहरी "घट-घट में भगवान........" नहीं सुनी।

रात का प्रथम प्रहर था। कंचुकी सोते से चौंक उठी। वह भीषण स्वप्न देख रही थी। एक बूढ़ा साधु उसके द्वार पर अलख जगा रहा है, दूसरी ओर विशाल सेनाएँ खड़ी हैं। दुर्ग गिर रहा है, सैनिक कट रहे हैं, तोपें गरज रही हैं और साधु अलख जगा रहा है। वह उठ बैठी। उसे अपने पिता का स्मरण हो आया। जिस क्षण से सावित्री उन्हें गंगा पार उतार आई है, तबसे आज तक कोई ख़बर नहीं मिली। पता नहीं वह कहाँ हों, किस वेश में हो।" सोचते-सोचते कंचुकी ने संपूर्ण-रात काट डाली। वह भयानक स्वप्न उसे विचलित करता रहा। वह सो न सकी। प्रभात हुआ और वह नित्य-क्रिया में लग गई।

महाराज का कला-कक्ष सजाकर जब वह बाहर निकल रही थी, तभी उसे हँसती हुई मालती दिखाई पड़ी। मालती को देख कंचुकी के अधरों पर मुस्कान नाच उठी। बोली—"क्या बात है मालती ? बड़ी प्रसन्न दिखाई देती है।"

"मिठाई खिलाओ छोटी रानी !" मालती ने कहा—"तब बताऊँ।"

"बता तो।" कंचुकी ने कहा—"मिठाई कौन-सी बड़ी बात है। चल, अभी खा ले।"

"एक शुभ-सूचना है।" मालती ने मुस्किराकर कहा—"बताऊँ ?"

"हाँ-हाँ, बता।" कंचुकी ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"अच्छा।" मालती ने लजाते हुए कहा—"कान में सुनो !"

कंचुकी ने कान बढ़ा दिया। मालती ने धीरे से उसके कान में कहा—"सावित्री के पुत्र हुआ है।"

"सच ?" कंचुकी सिहर उठी—"कब ?"

"आज रात्रि।" मालती ने कहा—"हम लोग सारी रात वहीं तो थीं। अब लाओ इनाम।"

"ले!" कंचुकी ने अपना हार उतारकर मालती के गले में डाल दिया।

मालती पुलक उठी। उछलती हुई ऊपर भाग गई। धीरे-धीरे यह संवाद संपूर्ण क़िले में विद्युत-गति से फैल गया। कंचुकी रानी ने सावित्री के लिए मेवा, मिष्टान्न आदि का प्रबंध करवाया। शिवमंदिर में घी का दीपक जलाया। गंगा तट पर मिठाई बँटवाई। मंगल-गान के लिए सबको आमंत्रित किया। क़िले को भली भाँति सजवाया।

"यह क्या कर रही हो छोटी रानी?" मंझली रानी लक्ष्मी बोली—"परिचारिका ही तो है। ऐसा लगता है, कोई राजकुमार पैदा हुआ है, जो इतनी सजावट कर रही हो।"

"हाँ, वह राजकुमार ही है।" कंचुकी ने उत्तर दिया—"तुम्हें क्या पता, सावित्री कौन है।"

"कोई भी हो, है तो परिचारिका ही।" लक्ष्मी रानी ने व्यंग्य से कहा।

"नहीं।" कंचुकी बोली—"बुरे दिनों ने उसे परिचारिका बना दिया है। वह कौन है, यह तुम्हें पता नहीं है। तुम अपना काम करो। मैं जो कुछ कर रही हूँ, करने दो।"

लक्ष्मी रानी मुँह बनाती हुई लौट गई। कंचुकी ने महाराज को यह शुभ-संवाद सुनाते हुए कहा—"महाराज, राज्य का उत्तराधिकारी पैदा हो गया।"

"चुप।" महाराज ने स्नेह से कहा—"परिचारिकाओं के पुत्र उत्तराधिकारी होते हैं?"

"महाराज!" कंचुकी बोली—"सावित्री अपना सब-कुछ छिपा

कर यहाँ परिचारिका बनी हुई है। आपको पता है, वह कौन है?"

"नहीं।" महाराज ने साश्चर्य पूछा—"मैं कुछ भी नहीं जानता।"

"वह राज-वंश की कन्या है।" कंचुकी रानी ने कहा—"आप लोगों को इसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। मैं जानती हूँ। यह महाराज उजालक के वंश की है। उनके विनाश एवं उजालकनगर* के पतन के बाद यह राज-परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। दर-दर की ठोकरें खाने लगा। आज इनकी स्थिति यह आ गई है कि ये अपने को गुप्त रखकर स्थान-स्थान पर भृत्य-कार्य कर रहे हैं। सावित्री की दाहिनी भुजा पर एक ताम्र-पत्र बँधा है, जो उसके भारशिवों के प्रतापी राजा महाराज उजालक के वंश का होने का प्रमाण है। मैंने उसे देखा है।"

सावित्री के जीवन की यह अंतिम कथा सुनकर महाराज आश्चर्य में पड़ गए। वे उसकी गंभीरता, निर्भकीता एवं साहस से बहुत पहले ही परिचित हो चुके थे। उसका शौर्य देखकर कभी-कभी उन्हें उस पर संदेह भी होता था, किंतु वह यह न जान सके कि वह कौन है। महाराज उजालक का उत्कर्ष भारशिवों के गौरवशाली इतिहास का सुनहरा पृष्ठ है। आज उन्हीं के वंश की यह दशा? महाराज सोचते-सोचते गंभीर हो उठे। उन्होंने अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए कंचुकी से कहा—"ठीक है। जो चाहो, वह प्रबंध कर दिया जाय।"

थोड़ी ही देर बाद क़िले में तोपें गरज उठीं। बधाइयाँ बजने लगीं। मंगलाचार होने लगे। संपूर्ण दुर्ग प्रसन्नता से जगमगा उठा। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। गजराज को सूचना दी गई।

*उजालक नगर का नाम अब जायस है। पहले यह भार राजाओं की राजधानी थी। (डब्ल्यु० सी० वेनेट की रिपोर्ट—पृष्ठ ५)

बारहवें दिन विशेषप्रबंध किया गया। रात में सुंदर शामियाना ताना गया। मशालें जलाई गईं। नृत्य का अयोजन किया गया। गजराज को भी बुलाया गया। उसके साथ पालकी में बैठकर श्यामा भी आई। श्यामा आते ही कंचुकी रानी के पास चली गई। दोनो आज जैसे युगों बाद मिली थीं। कक्ष में बैठी प्रहरों तक बातें करती रहीं। अपना सुख-दुख बताती रहीं। हँसती रहीं, बोलती रही और घुलघुलकर बातें करती रहीं।

घर के भीतर तो यह दशा थी। बाहर महामंत्री महाराज से कह रहे थे—"महाराज, बाहर की नर्त्तकी कीकोई आवश्यकत नहीं।"

"क्यों ?" महाराज ने प्रश्न किया।

वृद्ध महामंत्री मुस्किराए। बोले—"नर्त्तकी तो आपके दुर्ग में ही विद्यमान है। वे दोनो कब काम आएँगे ?"

महाराज हँस पड़े। बोले—"ज़ुबेदा और जुम्मन ?"

"हाँ" महामंत्री ने कहा—"उन्हीं दोनों को नचाया जाय।"

"महाराज केवल विहँसकर रह गए। महामंत्री ने जुम्मन के पास आदेश भेज दिया।

संध्या-पूजन एवं भोजनादि से निवृत होकर महाराज, रंगमंच के के निकट आकर, अपने आसन पर बैठ गए। संपूर्ण कक्ष दर्शकों से खचा-खच भरा था। सैनिक, सरदार, नौकर-चाकर सभी उपस्थित थे। कहीं तिल रखने की जगह न थी। ऊपर झरोखे पर सभी रानियाँ, अपनी-अपनी परिचारिकाओं सहित बैठी थीं, नीचे दर्षक-गण।

जुम्मन मियाँ तीन-चार दिन पूर्व यहाँ लौटकर आए थे और समारोह में इतना घुल-मिल गए कि उन्हें ख़बर ही न रही कि शीघ्र ही शातिर ने बुलाया है। महामंत्री का संदेश पाते ही वह प्रसन्नता-पूर्वक ज़ुबेदा के साथ रंगमंच पर आ उपस्थित हुआ। उसे देखते

ही जनता में एक लहर-सी दौड़ गई। तालियाँ बजीं। फिर सब शांत हो गए। महाराज बैठे मुस्किरा रहे थे।

निश्चित समय पर कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। वाद्यों का स्वर गूँज उठा। चारो ओर सन्नाटा छा गया। छून-छनन् करती हुई जुबेदा रंग-मंच पर आ खड़ी हुई। उसने महाराज को सिर झुकाकर अभिवादन किया। एक उड़ती दृष्टि संपूर्ण महफिल पर छोड़ी। आलाप भरा। स्वर के आरोह-अवरोह के साथ जुबेदा के पैर थिरकने लगे। वह कूक उठी। दर्शकों की आँखें ऊपर उठीं। वह सोहर गा रही थी—

"उमड़ि-घुमड़ि उठै पीर, जगाए कोऊ जागत नाहीं !
सास न जागे, नंनद न जागे,
देवरा न जागे, बलम न जागे,
दीदी न जागे, देवरानी न जागे,
जागे न जेठ, जेठानी न जागे !
कसकि-मसकि रहि देह, मनाए मन मानत नाहीं !
उमड़ि-घुमड़ि उठै पीर............।

जुबेदा का मधुर कंठ चारों ओर गूँज उठा। महफिल में सन्नटा छा गया। श्रोताओं के मन में लहर-सी उठने-गिरने लगी। सब मंत्र-मुग्ध-से जुबेदा की ओर तन्मयता से देख रहे थे। वह गा रही थी—

"चंदा न जागे, सुरिज ना जागे,
पंछी न जागे, विरिछ ना जागे !
चिरई, चिरुंगुन न आँखीं उघरैं—
घरके अड़ोसी-पड़ोसी न जागे।

कैसे कटै यह रैन, निंदरिया लागत नाहीं।
उमड़ि-घुमड़ि उठै पीर, जगाए कोऊ जागत नाहीं!

ज़ुबेदा ने अंतरा पूरा किया। हाहाकार मचा हुआ था। स्वर्ण-मुद्राओं की उस पर बौछारें होने लगीं। आवाजें आने लगी। उसने आगे गया—

"धरती न जागे, अंचल न जागे,
भँवरा न जागे, कमल न जागे!
जागै न बरखा, बयारिउ न जागे,
जागै न अँगना, अटारिउ न जागे!

आँखिनि मा छाई अँधेरिया, भगाये भागत नाहीं!
उमड़ि-घुमड़ि उठै पीर, जगाए कोऊ जागत नाहीं।

ज़ुबेदा का गीत समाप्त हो चुका था, मगर श्रोतागण अभी प्यासे-के-प्यासे थे। वे 'पुनः-पुनः' का आवाजें लगा रहे थे। महाराज बैठे मुस्किरा रहे थे। रानियाँ झरोखे से स्वर्ण-मुद्राएँ लुटा रही थीं। ज़ुबेदा मधु की वर्षा करती हुई गा रही थी—"उमड़ि-घुमड़ि उठै पीर, जगाए कोऊ जागत नाहीं...." गीत समाप्त हुआ। शहद की-सी मिठास लुटाकर ज़ुबेदा चुप हो गई। उसके घुँघरुओं की झंकार मौन हो गई, और वह शीश झुकाकर बैठ गई।

वातावरण अब भी कोलाहलमय था।

बूढ़े महामंत्री ने जुम्मन की ओर संकेत किया। वह खड़ा हो गया। सब लोग हँस पड़े। जुम्मन ने थिरकते हुए अपनी टोपी ठीक की। चपकन के बटन बंद किए। फिर महामंत्री की ओर देखकर गाया—

"एक आँख है इतनी सुंदर, जैसे सुरमेदानी।
समझ न पाओगे मंत्रीजी, मगर दूसरी कानी।
सुनाएगा जुम्मन नहीं लंतरानी।
फटा पायजामा ! फटी शेरवानी !!"

महफ़िल में एक ठहाका लगा। महामंत्री भी हँस पड़े। उन्होंने जुम्मन के सामने कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ फेंककर कहा—"ले, पायजामा बनवा ले।"

जुम्मन ने शीश झुकाकर मुजरा किया। अशर्फियाँ उठाई और उन्हें ज़ुबेदा को देते हुए कहा—"इन्हें अलग ही रखना, अपने में न मिलाना।"

"क्यों ?" महामंत्री ने पूछा।

"यों ही।" जुम्मन बोला—"मैं कोई नर्त्तक थोड़े हूँ।"

"फिर क्या है ?"

"मैं अर्जुन का दोस्त हूँ।" जुम्मन ने मुस्किराकर कहा।

"अर्जुन का दोस्त ?" महामंत्री चौंकें।

"हाँ-हाँ।" जुम्मन बोला—"मैं अर्जुन का दोस्त। अर्जुन के दो ही तो दोस्त थे। एक सिरी किसन (श्रीकृष्ण) दूसरा मैं।"

"चुप।" महामंत्री ने उसे डाँटते हुए कहा।

"नहीं सरकार !" जुम्मन बोला—"हमीं दो दोस्तों की ताक़त पर माबारत (महाभारत) हुई है। अगर सिरीकिसन न होते तो, गीता का इल्म न होता। यदि जुम्मन न होता तो अर्जुन को ग़रूर न होता।"

"यह कैसे ?" महामंत्री ने रुखाई से पूछा

जुम्मन विहँस उठा। बोला—"अगर मैं न होता तो उनका हुक्म धरा रह जाता। वह रसिया थे। रास रचाया करते थे।

मगर जुम्मन बहादुर था। वह छाती खोले भीसम पितामाह (भीष्म पितामह) के सामने खड़ा था !"

"चुप, शिखंडी !"

दरबार में फिर एक ठहाका लगा। जुम्मन शरमा गया। उसने तालियाँ पीट-पीटकर गाना प्रारंभ किया—

"अर्जुन के दो हैं, सिखंडी के चार !
माने तो माने नहीं दाढ़ीजार !"

जन-समूह हँसता रहा, ठहाका लगाता रहा और उछल-उछल कर गाता रहा। फिर उसने हँसती हुई ज़ुबेदा को आँख का इशारा किया। ज़ुबेदा उठ खड़ी हुई। जुम्मन बैठ गया।

ज़ुबेदा के खड़े होते ही जन-समूह एक बार पुनःसिहर उठा।

उसने महाराज को झुककर मुजरा किया। महाराज ने पूछा—"इस बार क्या गाओगी ?"

"जो हुक्म हो।" ज़ुबेदा ने नम्रता से कहा।

"अपने यहाँ का कोई गीत सुनाओ।"

"अच्छा !" ज़ुबेदा ने कुछ सोचकर पूछा—"ग़ज़ल सुनाऊँ ?"

"नहीं।" जुम्मन चिल्लाया—"ग़ज़ल नहीं, हजल।"

"यह हजल क्या है ?" महामंत्री ने ज़ुबेदा से पूछा

"इन्हीं से पूछिये।" कहकर ज़ुबेदा ने जुम्मन को इशारा किया। जुम्मन बैठा मुस्किरा रहा था।

ज़ुबेदा ने विहँसकर एक बार संपूर्ण जन-समूह की ओर देखा। फिर आलाप भरी। उसके आलाप भरते ही मौनता छा गई। एक नई अदा के साथ बल खाता हुआ ज़ुबेदा का स्वर गूँज उठा—

"दिल ही तो है चट्टान से टकराने लग गया।
हँसता हुआ यह फूल भी मुरझाने लग गया।"
दिल ही तो है..............................

"बिस्मिल्लाह !" जुम्मन चिल्लाया—"सुभान अल्लाह ! फिर तो कहना।"

ज़ुबेदा ने तिरछी निगाहों से जुम्मन की ओर देखा और अपनी ग़ज़ल दोहराई।

दिल ही तो है.......।"

"वाह !" जुम्मन ने बीच में ही टोककर कहा—"दिल ही तो है। आगे क्या हुआ ?"

ज़ुबेदा मुस्किराई। उसने अपनी धुन में फिर गाया—"दिल ही तो है चट्टान से टकराने लग गया।"

"चट्टान से ! बाप रे बाप !" जुम्मन चिल्लाया —"फिर तो कहना।"

ज़ुबेदा ने मुस्किराकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। और आगे गाया—

"जलता हैं हसरतों की यहाँ रोज़ चिताएँ"

"बहुत ख़ूब !" जुम्मन उठकर खड़ा हो गया। ज़ुबेदा ने पंक्ति दोहराते हुए कहा—

"जलती हैं हसरतों की यहाँ रोज चिताएँ—
यह बेहया भी शरमाने लग गया !
दिल ही तो है........।"

"जियो ज़ुबेदा !" जुम्मन चिल्लाया। संपूर्ण जन-समूह—"वाह-वाह कर उठा।" ज़ुबेदा ने सिर झुकाया और फ़िर मस्ती से गाया—

"दिल ही तो है चट्टान से टकराने लग गया !"

"आगे कहो।" जुम्मन ने ज़ोर से कहा—"जल्दी कर....दिल ही तो है।"

सब लोग हँस पड़े। ज़ुबेदा ने फिर दोहराया—

"यह बेहया श्मशान भी शरमाने लग गया ;
दिल ही तो है चट्टान से टकराने लग गया।"

"धन्य है!" महाराज ने धीरे से कहा। स्वर्ण-मुद्राओं की बौछार होने लगी। जुम्मन उन्हें बटोरने लगा। ज़ुबेदा ने आलाप भरकर आगे गाया—

आँचल में जिस बीमार का चेहरा छुपा लिया....

"तो क्या हुआ?" जुम्मन ने मटककर पूछा। ज़ुबेदा ने उसके गाल पर चपत लगाते हुए गाया—

"रोता हुआ वह हुस्न भी मुसकाने लग गया।"

दिल ही तो है, चट्टान से टकराने लग गया।"

"ले चपकन।" जुम्मन ने चपकन उतारकर फेंक दी। ज़ुबेदा मुस्किराती हुई गाती रही—"रोता हुआ श्मशान भी मुस्किराने लगा। दिल ही तो है ....।"

"दिल ही तो है........।" जुम्मन ने ताली पीटकर अदा से कहा—"सुनिए हुज़ूर!

दिल ही तो है चट्टान से टकराने लग गया।

जुम्मन कलेजा थाम कर लंगड़ाने लग गया।"

पुनः एक ठहाका लगा। जुम्मन ताली बजा-बजाकर थिरकने लगा। संपूर्ण महफ़िल हँसी से दोहरी हो गई। ज़ुबेदा ने अंतिम बार पुनः दुहराया—"दिल ही तो है........।"

गीत गूँजता रहा। क़िले की मूक दीवारें उस नीरवता में रह-रहकर सिहरती रहीं। ज़ुबेदा गाती रही। अपने संगीत का मधु लुटाती रही। और अशर्फ़ियों की बौछारें होती रहीं। सभी तन्मय, बेसुध, निमग्न एवं आत्म-विभोर थे। कंचुकी ने ज़ुबेदा के लिए एक स्वर्ण हार भेंट किया, जिसे छीनकर जुम्मन ने अपने गले में डाल लिया। 'फिर वह गजराज के पास जाकर बोला—"अच्छा लगता है?"

गजराज शरमा गया। महफ़िल में क़हक़हा लगा। संगीत समाप्त हुआ। सब लोग उठकर चल पड़े। ज़ुबेदा के संगीत की सभी प्रशंसा कर रहे थे। जुम्मन अशर्फ़ियों की गठरी लिए हुए अपनी कोठरी की ओर चला। ज़ुबेदा उसके साथ थी।

क़िले में रात भर मशालें जलती रहीं। मदिरा के दौर चलते रहे। आने-जानेवालों का ताँता बँधा रहा। कोठरी में पहुँचकर जुम्मन ने कपड़े बदले। दोनो ने आपस में कुछ बातें की। अशर्फ़ियों की गठरी खोलकर जुम्मन ने कुछ अपनी चपकन की जेब में भरी, कुछ ज़ुबेदा ने ओढ़नी के छोर में बाँधीं। दोनो ने परामर्श किया। अवसर अच्छा था, निकलकर चल पड़े। आगे-आगे छड़ी लिए जुम्मन जा रहा था, पीछे-पीछे ज़ुबेदा। राजद्वार पर पहुँचकर जुम्मन ने पुकारा—"नंदू!"

"कहो जुम्मन!"

"गाना पसंद आया?"

"हाँ, हाँ" नंदू ने कहा—"आज तो तुमने कमाल कर दिया। कहाँ चले?"

"कमाल?" जुम्मन हँसकर बोला—"अभी तुमने मेरा हुनर देखा कहाँ है?" फिर ज़ुबेदा की ओर देखकर कहा—"आज यह बहुत थक गई हैं। सोचा खुली हवा में टहला लाऊँ। कहीं बीमार न पड़ जाय।"

"टहला लाओ।" नंदू ने कहा—"इतना अच्छा गाना तो मैंने कभी सुना ही नहीं।" जुम्मन हँस पड़ा। नंदू ने फाटक खोलदिया। दोनो बाहर निकल गए। जुम्मन ने कहा—"नंदू अभी थोड़ी देर में लौटता हूँ। जागते रहना।"

"मैं रात भर नहीं सोता।" नंदू ने कहा—"जब तुम आओगे,

फाटक खोल दूँगा।" नंदू ने दोनो के निकल जाने
कर लिया। दोनो टहलते-टहलते चल पड़े।

आधी रात से अधिक समय हो गया था। गंगा-त
था। पास ही फूस की झोपड़ियों में थके मल्लाह सो
तट पर बँधी थीं। जुम्मन उन्हें देखता हुआ किनारे-किनारे चलने लगा। कुछ दूर चलकर उसने एक छोटी-सी नौका पर ज़ुबेदा को बैठने का संकेत किया। वह बैठ गई। जुम्मन ने इधर-उधर देखा। धीरे से नाव खोली और उसे पानी में ढकेला। ज़ुबेदा काँप उठी। उसने धीरे कहा—"नाव चलाना जानते भी हो?"

"तुमसे मतलब।"

"अगर कहीं डूब गई तो?"

"चुपचाप बैठी रहो।" जुम्मन ने कहा—"लुटिया डूबने न पाए नाव भले ही डूब जाय।" उसने नाव पानी में ढकेल दी।

ज़ुबेदा काँप उठी। जुम्मन ने कहा—"घबड़ाओ नहीं, मेरे रहते तुम्हारी नाव न डूबेगी। पानी का बहाव उधर ही है, थोड़ा-सा सहारा देने की ज़रूरत है। सबेरा होते-होते कड़े पहुँच चलेंगे।" कहकर उसने बाँस की लग्गी उठाई। ज़ुबेदा ने अल्लाह का नाम लिया। नाव सहारा पाकर चल पड़ी। प्रवाह में आई, फिर तेज़ी से बहने लगी। जुम्मन पतवार थामे बैठा रहा। ज़ुबेदा की छाती धड़क रही थी। नाव डोलती, मचलती, बहती हुई चली जा रही थी। प्रवाह तेज था। जुम्मन पतवार पकड़े था। ज़ुबेदा के प्राण सूख रहे थे।

आज रात भर महाराज को नींद नहीं आई। वे पड़े-पड़े सोचते रहे—"जुम्मन सलमा का पत्र लाया होगा। किंतु उसने अभी तक दिया नहीं। इस बार पता नहीं उसने क्या लिखा हो। "सलमा!" महाराज ने करवट बदली—"कितना सुंदर पत्र लिखती है। हृदय

निचोड़कर रख देती है। उसका एक-एक शब्द कितनी चोट करता है! क्या वह सचमुच मुझसे प्यार करती है? यदि हाँ, तो विवाह कैसे होगा? राजभवन में वह रहेगी कैसे? सब लोग मुझे घृणा की दृष्टि से देखेंगे। कहेंगे विधर्मी हो गया है। मगर उसका रूप! आह! लगता है, छोटा-सा चाँद-खिलौना हो.....।"

सोचते-सोचते प्रभात हो गया। प्रातःकाल होते ही अतिथि-समूह बिदा होने लगा। श्यामा, कंचुकी रानी से बिदा लेकर, गजराज के साथ रायबरेली वापस चली आई। रात भर के जागरण से सब की उनींदी पलकें रह-रहकर बंद हो जाती थीं।

उसी समय क़िले में यह संवाद फैला कि जुम्मन एवं ज़ुबेदा दोनो ग़ायब हैं। इसकी सूचना महाराज को दी गई। वे हतप्रभ हो गए। दोनो की खोज होने लगी। कोठरी की तलाशी हुई। अशर्फ़ियों की गठरी खुली पड़ी थी, और कुछ भी न था। द्वारपाल नंदू ने बताया कि नृत्य समाप्त होने पर वे दोनो टहलने का बहाना कर निकले थे, फिर लौटकर नहीं आए।

महाराज दाँत पीसकर रह गए।

---

[२७]

"गजराज !"

"हाँ महाराज !"

"कहो, समारोह कैसा रहा ?"

"ठीक ही था महाराज !" गजराज ने कहा—"हम गरीबों का कैसा समारोह । यह तो बड़े महाराज एवं छोटी रानी की कृपा थी, जो इतना सब-कुछ हो गया; अन्यथा हमारा क्या महत्त्व ? पता नहीं हम-जैसे गरीबों के कितने बच्चे नित्य ही पैदा होते और मरते हैं । न उनके जन्मोत्सव पर बाजा बजता है, और न मृत्यु पर आँसू ही बहाए जाते हैं । किसी को ख़बर भी नहीं हो पाती । यह तो केवल छोटी रानी की कृपा है, कि उन्होंने इतना सब कर दिया ।

छोटे राजा बाल खड़े मुस्किरा रहे थे । गजराज कह रहा था—"आप ही तो हमारे मा-बाप हैं । जिस प्रकार रक्खेंगे, वैसे ही रहेंगे ।"

"समारोह में क्या-क्या था ?" महाराज ने प्रश्न किया ।

"कोई विशेष बात नहीं थी ।" गजराज बोला—"हाँ, ज़ुबेदा का नृत्य सुंदर अवश्य था ।"

"यह ज़ुबेदा कौन है ?" महाराज ने कौतूहल से पूछा ।

"नर्तकी है महाराज ! उसका भाई जुम्मन और वह दोनो इस समय डलमऊ के दुर्ग में रह रहे हैं ।"

"क्या डलमऊ के दुर्ग में यवनों का प्रवेश हो गया ?" महाराज ने आश्चर्य से पूछा—"ये आए कहाँ से ?"

"कड़े से ।" गजराज ने कहा ।

कड़े का नाम सुनते ही महाराज कुछ बोले नहीं, केवल परेशान होकर रह गए। उसी समय सूचना मिली कि घोड़ा तैयार है। महाराज बाहर आये। चलते-चलते उन्होंने गजराज से पूछा—"बड़ी रानी का भी कोई समाचार मिला ?"

"मुझे कोई जानकारी नहीं है।" गजराज ने उत्तर दिया।

"सावित्री ने फिर कोई नाटक तो नहीं रचा ?" महाराज ने गजराज की ओर देखकर व्यंग्य किया। गजराज मौन रहा। उसका शीश अपने आप झुक गया। महाराज उछलकर घोड़े पर सवार हो गए। उनके पीछे-पीछे कुछ सैनिक थे।

जुम्मन एवं ज़ुबेदा के अचानक चले जाने पर महाराज की आँखें खुल गईं थीं। अब उन्हें विश्वास हो गया था कि न तो सलमा ही उनसे प्रेम करती है, और न उसने पत्र ही भेजे हैं। यह सब एक षडयंत्र था। हो सकता है, ये दोनो बाबर सैयद के गुप्तचर ही रहे हों। दिन भर महाराज उदास, उद्विग्न एवं खोये-खोये-से बैठे रहे। साँझ हुई। संपूर्ण दुर्ग दीपकों के प्रकाश से जगमगा उठा। महाराज अपने कला-कक्ष में बैठे हुए सोच रहे थे, अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर रहे थे। उसी समय पर कंचुकी रानी उनके कक्ष में आईं। महाराज की मुख-मुद्रा देखकर वे सहम गईं। धीरे से निकट ही बैठकर बोली—"महाराज, उदास होने से काम न चलेगा। मैं समझती हूँ, आप को धोखा दिया गया है।"

"हाँ कंचुकी !" महाराज ने गंभीरता से उत्तर दिया—"पहले तो मुझे उन पर अवश्य संदेह था, किंतु बाद में उनकी गति-विधि से मेरा संदेह जाता रहा।"

"मैं समझती थी" कंचुकी बोली—"कि ये गुप्तचर हैं, किंतु आपकी उन पर इतनी निष्ठा देखकर मैं कुछ नहीं बोली, अन्यथा

मेरा वश चलता तो मैं दोनो के शीश कटवाकर, लाशें गंगा में फिकवा देती।" इतना कहकर उसने महाराज की ओर निहारा। फिर कहा—"जहाँ तक मैं समझती हूँ, सलमा के नाम पर ही यह सब कुचक्र रचा जा रहा है, अन्यथा एक लड़की का यह साहस नहीं हो सकता कि वह पर्दे को चीरकर आपके ऊपर प्रेम के तीर छोड़े। वह एक यवन-कन्या है। मैं नहीं कह सकती कि उसका स्वभाव कैसा है? फिर भी मेरा विश्वास है कि वह कभी भी आपसे प्रेम नहीं करती। आपने चुनौती का पत्र भी तो भेजा था?"

"हाँ" महाराज ने उत्तर दिया—"भेजा था।"

"उसका क्या परिणाम हुआ?"

"कुछ नहीं।" महाराज ने कहा—"उसके परिणाम-स्वरूप ही जुम्मन और ज़ुबेदा यहाँ आए थे।"

"फिर भी आप नहीं समझे?" कंचुकी रानी ने कहा—"अब तक जो कुछ हो गया, हो गया। अब अधिक धोखे में रहने की आवश्यकता नहीं। मेरे विचार से अब किसी भी समय ख़तरा उपस्थित हो सकता है।"

"हाँ" महाराज ने उत्तर दिया—"यही मैं भी सोच रहा हूँ कि यदि हम उन पर आक्रमण नहीं कर सकते, तो आत्म-रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"कर क्यों नहीं सकते?" कंचुकी ने कहा—"उसके पास पुनः एक चुनौती का पत्र भेजिए। यदि वह उत्तर नहीं देता, तो आक्रमण करना कोई अनुचित न होगा, क्योंकि यह प्रतिष्ठा का प्रश्न है। बात चारो ओर फैल चुकी है। मौन रहने से काम न चलेगा।"

"यदि उत्तर दे देता है, तब?" महाराज ने प्रश्न किया।

"तब क्या?" कंचुकी रानी ने उत्तर दिया—"यदि वह युद्ध चाहता है, तो सबसे पहले मैं आपकी कमर में तलवार बाँधूँगी।

यदि सलमा का डोला भेज देता है, मैं उसे छोटी बहन समझकर उसकी आरती उतारूँगी !"

"कंचुकी !" महाराज ने लज्जित होते हुए कहा—"रहने दो एक यवन-कन्या को अपनी बहन बनाने के लिए।"

"क्या हुआ ?" कंचुकी ने हँसते हुए कहा—"जब वह आपकी सवर्व है, तो मेरी क्यों नहीं ?" जाति और धर्म से कुछ नहीं होता। यदि वह पूज्यनीया है, तो उसकी पूजा की जायगी। फिर भी असावधान रहने से अहित ही है।"

"मैं समझता हूँ।" महाराज बोले—"उन दोनों के भागने का समाचार पाते ही मैंने सेना को सतर्क रहने का आदेश दे दिया है। रात बीतने दो, प्रभात होते ही मैं चुनौती का पत्र भेजता हूँ।"

"ठीक है।" कंचुकी ने कहा—"अब आप विश्राम करें। मैं संध्या कर लूँ।

इतना कहकर, जैसे ही कंचुकी रानी बाहर निकली, दूसरी ओर से मालती आती हुई दिखाई पड़ी। उसने हाथ के इशारे से कंचुकी को रोका। कंचुकी विहँसकर खड़ी हो गई। मालती ने निकट आकर धीरे से कहा—"छोटे राजा आये है।"

"कहाँ है ?" कंचुकी ने विस्मय से पूछा।

"कक्ष में बैठे हैं। मैं सूचना लेकर आई हूँ।"

"महाराज को बता दे।"

मालती कक्ष की ओर बढ़ी। कंचुकी दैनिक-क्रिया से निवृत हो, ध्या-वंदन में लग गईं।

छोटे राजा के अचानक आगमन पर महाराज को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ। उनके मन की सोई हुई घृणा पुनः जाग उठी। एक-एक दृश्य उनकी आँखों में नाच उठा। फिर भी उन्होंने मालती से उन्हें बुला लाने को कहा। मालती छोटे राजा को कक्ष में बुला

लाई। उनके भीतर प्रवेश करने पर, धीरे से द्वार बंद कर, वह बाहर चली गई।

"भैया!" छोटे राजा ने महाराज के चरण-स्पर्श करते हुए कहा—"मैं आज आपसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

"कैसी क्षमा?" महाराज ने पैर समेटते हुए कहा—"बाल! व्यर्थ की बातें छोड़ो, अपना मंतव्य कहो।"

"महाराज!" छोटे-राजा ने कहा—"जब तक आप मुझे क्षमा न कर देंगे, शांति न मिलेगी।" कहकर उन्होंने महाराज के दोनो पाँव पकड़ लिए। उनकी आँखें छलछला आई थीं। महाराज ने उन्हें बाहों में भरकर चौकी पर बैठा लिया। छोटे राजा अश्रु-प्लावित नेत्रों से महाराज की ओर निहारकर बोले—"मेरे पाप मुझे अह-र्निशि सोने नहीं देते। मैने अपनी जाति, अपने वंश और अपने धर्म के प्रति विश्वासघात तो किया ही है, आपको भी धोखे में रक्खा है। मैं क्षमा चाहता हूँ।"

"छोटे राजा!" महाराज ने कहा—"मैं सब कुछ समझता हूँ, तुमने क्या-क्या किया है। पहले मैं अवश्य ही अंधकार में था। यह उसी का परिणाम है कि मुझे कंचुकी जैसी रानी को इतना कठोर दंड देना पड़ा था। अब मैं प्रकाश में आ चुका हूँ। तुम्हारी एक-एक बात, तुम्हारा एक-एक कार्य—सभी कुछ मेरे सामने है। तुम्हारे पास इस बात का क्या उत्तर है कि तुम्हारे ही कारण राजा सेढ्ढ-राय का प्रभाव बढ़ा, तुमने रेवंत को मदिरा पिलाकर भार-शिवों के पतन का द्वार खोला? क्या तुम इस बात का उत्तर दे सकते हो कि रेवंत को भगाकर, उसका अपराध कंचुकी पर तुमने क्यों लगाया? यही नहीं, तुमने उसके लिये विष भेजा! भगवान की कृपा थी, उसके प्राण बच गए, अन्यथा आज सबकुछ नष्ट हो गया होता। तुम्हारी ये सभी हरकतें मेरी छाती में साँप की तरह लोट

रही हैं। फिर भी तुम क्षमा माँगते हो? कैसी क्षमा?" कहकर महाराज ने घृणा से मुख फेर लिया।

छोटे राजा मौन रहे। उनका सिर लज्जा से झुक गया।

महाराज ने उनकी ओर दृष्टिपात करके पुनः कहा—"क्या मैं तुमको इसलिये क्षमा कर दूँ कि तुमने वंश का विनाश किया है, या मैं इसलिए क्षमा करूँ कि तुमने रेवंत को बंदी बनाया है, अथवा छोटी रानी के प्राण लेने की योजना के उपहार-स्वरूप क्षमा चाहते हो? बोलो, मौन क्यों हो? किस बात की क्षमा माँगने आए हो? स्पष्ट कहो, मैं क्षमा करने को तैयार हूँ।" कहते-कहते महाराज की मुखाकृति अरुण हो गई। उन्होंने देखा छोटे राजा जड़वत् बैठे हैं। उनकी आँखों से अश्रुधार बह रही है।

"छोटे राजा!" महाराज ने आवेश में कहा—"मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। आज तुम रो रहे हो, क्षमा माँग रहे हो, किंतु उस दिन, इसी स्थान पर, तुम किलकारियाँ भर रहे थे। क्या वह किलकारियाँ इसलिये थीं कि तुम और बड़ी रानी मिलकर मेरे सर्वनाश का स्वप्न देख रहे थे?"

"महाराज!" उसी समय पर कंचुकी रानी ने कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा—" शरणागत को कुछ नहीं कहा जाता।"

महाराज की निगाहें ऊपर उठीं। छोटे राजा चौंक-से पड़े। वे उठ खड़े हुए। कंचुकी ने उनकी ओर देखकर कहा—"बैठो छोटे-राजा! कहीं भाई-भाई में झगड़ा होता है?"

"नहीं भाभी!" छोटे राजा ने आज जीवन में प्रथम बार कंचुकी को 'भाभी' कहकर संबोधित किया।

'भाभी' शब्द सुनते ही कंचुकी की ममता जाग उठी। उसका अंतस उद्वेलित होने लगा। उसने एक बार स्नेह से छोटे राजा की ओर देखा, फिर महाराज की ओर निहारकर कहा—"महाराज,

छोटे राजा को आज्ञा दीजिए, यह चलकर पहले भोजन कर लें, फिर बातें होंगी।"

महाराज चुप रहे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

कंचुकी रानी ने मालती को कक्ष में बुलाकर भोजन लगाने का आदेश दिया। मालती चली गई। थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद कंचुकी ने छोटे राजा की ओर देखकर कहा—"छोटे राजा, चलो, कुछ खा लो।"

छोटे राजा अबोध शिशु की भाँति उठकर खड़े हो गए, और कंचुकी के साथ बाहर निकल आए। बाहर आने पर कंचुकी ने धीरे से कहा—"पियोगे भी?"

छोटे राजा शरमाकर रह गए। उनका मुख बंद था। कंचुकी हँस पड़ी। उसने पुनः हँसते हुए कहा—"यहाँ केवल खाने को मिलेगा, पीने को नहीं। समझे?"

"समझ गया भाभी!" छोटे राजा ने धीरे से करुण-स्वर में कहा—"बहुत पी चुका हूँ, अब कोई आकांक्षा शेष नहीं।"

कंचुकी ने कोई उत्तर न दिया। वह छोटे राजा को लेकर कक्ष की ओर चलीं। कक्ष में मालती भोजन सजाकर रख रही थी। कंचुकी रानी ने चौकी पर आसनी बिछा दी। छोटे राजा बैठकर भोजन करने लगे। कंचुकी रानी कुछ देर वहीं खड़ी रहीं, तदंतर मुस्किराती हुई बाहर निकल आईं। बाहर आकर उन्होंने मालती को संकेत किया। मालती समझ गई। वह अपनी हँसी, आँचल का छोर दाँतों तले दबाकर, छिपाती हुई चल पड़ी। कंचुकी रानी कक्ष में लौट गईं।

कुछ क्षण बाद ही मालती मदिरा की सुराही एवं सुरा चषक लिये वापस आई। कंचुकी रानी वहीं बैठी थीं। मालती के हाथ में मदिरा देखकर, छोटे राजा का अंतर खिल उठा। उन्होंने मालती को

ओर विहँसकर देखा। मालती ने चषक भरकर दे दिया और स्वयं बाहर निकल आई। कंचुकी रानी भी उठ खड़ी हुईं।

"कहाँ चलीं भाभी?" छोटे राजा ने कंचुकी रानी की ओर देखकर प्रश्न किया।

"आप भोजन करें, मैं अभी आ रही हूँ।" कंचुकी रानी ने उत्तर दिया।

"विष खाने से चढ़ता है, देखने से नहीं।" छोटे राजा ने हँसते हुए कहा।

"हाँ छोटे राजा!" कंचुकी रानी ने उत्तर दिया—"किंतु यह विष तो कल्पना मात्र से ही पागल बना देता है।"

"ऐसी बात तो नहीं है।" छोटे राजा ने कहा—"अभी ऐसे विष का आविष्कार नहीं हुआ।

"बात तो ठीक है।" कंचुकी रानी ने व्यंग्य से कहा—"अन्यथा आप उसका पहला प्रयोग मुझ पर ही करते।"

"अधिक लज्जित न करो भाभी!" छोटे राजा ने गंभीरता से कहा।

कंचुकी रानी रुकीं नहीं। बाहर निकल आईं। उन्होंने मालती को बुलाकर छोटे राजा के शयन का प्रबंध करवाया, और स्वयं महाराज के कक्ष में चली गईं।

महाराज अपने कक्ष में चिंतामग्न बैठे थे। कंचुकी रानी को देखकर विहँस उठे। बोले—"आज यह ज्ञान का प्रकाश लिये कहाँ घूम रहा है?"

"मैं क्या जानूँ।" कंचुकी रानी बोली—"आप ही से तो कह रहे थे, क्षमा माँगने आया हूँ।"

"क्षमा माँगने आया है!" महाराज ने अट्टहास किया—"विश्वासघाती को क्षमा?"

"महाराज !" कंचुकी रानी ने कहा—"यदि वह अब भी अपने को सुधार लेते हैं, तो उन्हें अपनाया जा सकता है। शरीर के सड़े अंग को तब तक काटा नहीं जाता, जब तक उसके ठीक होने की आशा शेष रहती है।

"ठीक है।" महाराज ने प्रश्न किया—"किंतु क्या तुम्हें विश्वास है, वह ठीक हो जायगा ?"

"हाँ।" कंचुकी रानी ने उत्तर दिया—"समय सब कुछ करा देता है। उनका विवेक अब जाग उठा है। ज्ञान के प्रकाश की किरणें मानस-पटल खोल चुकी हैं, अन्यथा वह क्षमा माँगने न आते, और न मुझे भाभी ही कहते।" कहकर कंचुकी रानी विहँस उठीं।

"तो तुम्हारे ऊपर 'भाभी' शब्द ने मोहिनी छोड़ दी ?"

"क्यों ?"

"यही न," महाराज हँसकर बोले—"पहले कुछ और थीं, अब भाभी बन गईं।"

कंचुकी रानी लज्जा से लाल पड़ गईं। वह सिमटकर रह गईं। महाराज मुस्किराते हुए कंचुकी के मुख की ओर निहारते रहे।

बातों का क्रम चल रहा था कि छोटे राजा, भोजन से निवृत होकर, आ पहुँचे। कंचुकी रानी ने उन्हें बैठने का आसन दिया। वह बैठ गए। कंचुकी रानी खड़ी रहीं। उनकी ओर देखकर छोटे राजा ने कहा—"बैठो भाभी !"

"कंचुकी बैठ गईं। बोलीं—"खा-पी आए छोटे राजा ?"

"हाँ भाभी !" छोटे राजा ने उत्तर दिया—"भोजन तो कर लिया, किंतु पिया नहीं।"

"अच्छा !" कंचुकी रानी विहँस उठीं। बोलीं—"आज यह सूर्योदय पश्चिम में कैसे ?"

"पूर्व में उदय होते-होते बेचारा सूर्य थक गया है।" छोटे राजा

ने कहा—"अब उसे पश्चिम में ही उदय होने दो।" कहते हुए उन्होंने महाराज से हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, क्षमा करें, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो।" महाराज ने कहा—"क्षमा की क्या बात है।"

"यवनों का प्रवेश दुर्ग में कैसे हुआ?"

"मेरी मूर्खता से।"

"मैं सब कुछ समझता हूँ।" छोटे राजा ने कहा—"आपको स्मरण ही होगा, आपने बाबर सैयद वाली घटना का उल्लेख किया था।"

"हाँ, स्मरण है।" महाराज ने कहा—"यह उसी का परिणाम है।"

"तो अब आप क्या आज्ञा देते हैं?" छोटे राजा ने विनम्रता से पूछा—"वह दोनो तो यहाँ होंगे। गजराज ने जबसे उनके विषय में बताया है, मुझे शांति नहीं मिल रही। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"कौन दोनो?" महाराज ने पूछा—"जुम्मन और ज़ुबेदा?"

"हाँ"

"वे भाग गये।"

"भाग गए?" छोटे राजा ने साश्चर्य पूछा—"कब?"

"रात में, उत्सव के पश्चात्।"

"वह कौन थे?" छोटे राजा ने कहा—"गजराज ने आज सब कुछ जब बताया, तभी से मुझे संदेह हो गया था। यों भी मैं यहाँ आनेवाला ही था, क्योंकि सावित्री के पुत्र-जमोत्सव की मुझे सूचना न देना, मेरे लिए बहुत कष्टदायक सिद्ध हुआ है। क्या कहूँ, कुछ कह नहीं सकता।"

महाराज चुप रहे। वे आगे कहते गए—"मैं विना सूचना के ही

सम्मिलित होता, किंतु कुछ सोचकर ऐसा न कर सका। आज अपने अपराधों की क्षमा-याचना के साथ-साथ जुम्मन और ज़ुबेदा को भी ख़बर लेने आया था। मेरा तो विश्वास है, वह दोनो गुप्त-चर थे।"

"मैं भी समझ रहा हूँ, वह गुप्तचर थे।" महाराज ने कहा—"और उनसे बहुत बड़ी हानि की संभावना है।"

"तो फिर क्या हो ?" छोटे राजा ने जिज्ञासा से प्रश्न किया।

"कल पुनः चुनौती का पत्र भेज रहा हूँ।"

"नहीं।" छोटे राजा ने गंभीरता से कहा—"अब चुनौती न भेजिए।"

"फिर क्या करूँ ?"

"युद्ध की तैयारी।" छोटे राजा ने कहा—"अब स्थिति वह नहीं रही, जो पहले थी। हमें अधिक से अधिक शक्ति संचित करना है। वह कौन-सी चाल चलेंगे, कहा नहीं जा सकता। चुनौती भेजकर उन्हें सजग न कीजिए। अब तो आत्म-रक्षा ही हो सकती है।"

"क्यों ?" महाराज ने विस्मय से पूछा।

छोटे राजा थोड़ी देर तक गंभीर रहे। फिर बोले—"शाह शर्की की सेना कड़े तक पहुँच चुकी है।"

"सच ?" महाराज ने आश्चर्य से पूछा—"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?"

"गुप्तचरों द्वारा।" छोटे राजा बोले—"किंतु संभवतः वह अभी आक्रमण नहीं करेंगे।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि शाह साहब अस्वस्थ हैं, और वह स्वयं इस सेना का नेतृत्व करना चाहते हैं।"

महाराज के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। अपनी भूल पर उन्हें

आश्चर्य हुआ। उन्होंने कंचुकी-रानी की ओर देखा। वह ठंडी साँस छोड़कर नत-मस्तक हो गईं।

छोटे राजा मौन रहे। फिर बोले—"मैं आपको यह सूचना केवल इसलिए देने आया हूँ, कि कहीं आप धोखे में न पड़ जायँ। अब आप सैन्य-संगठन करें। मैं भी प्रातःकाल ही जाकर तैयारी करता हूँ।" कहकर छोटे राजा खड़े हो गए। मालती उन्हें शयन-कक्ष की ओर लेकर चली।

महाराज और कंचुकी को रात भर नींद नहीं आई। वह प्रातःकाल तक आपस में तर्क-वितर्क करते रहे।

---

[२८]

कड़े के दुर्ग के चारो ओर शिविर-ही-शिविर दिखाई पड़ रहे थे। जंगल में, गंगा के किनारे, मैदानों में, खेतों में एवं बागों में तंबुओं की लाखरी छाई हुई थी। हथियारबंद सहस्त्रों सैनिक यत्र-तत्र विचर रहे थे। कुछ अपने अस्त्रों को साफ़ कर रहे थे, कुछ संचलन कर रहे थे, कुछ आक्रमण की योजना बनाने में व्यस्त थे। घोड़े हिनहिना रहे थे, हाथी पिहकार रहे थे, तलवारें खन-खना रही थीं। तोपें आग बरसाने के लिये तैयार की जा रही थीं। गंगा-तट पर सैकड़ों नावें खड़ी थीं। पास-पड़ोस के गावों में सन्नाटा था। लोग इतना आतंकित हो गए थे, कि वे घर छोड़कर भागने लगे थे। गाँव-के-गाँव खाली हो गए थे। शाही सेना के सैनिक ग्राम-वासियों को पकड़-पकड़कर घास छिलवाते, लकड़ियाँ तुड़वाते और उन्हें मार-पीटकर खदेड़ देते। डलमऊ के दुर्ग को कच्चा निगल जाने के लिए सब तैयार बैठे थे। केवल शाह साहब के आने की देर थी।

रात हो चुकी थी। एक ओर सैनिकों का कोलाहल, शिविरों से उठता हुआ धुआँ, हिनहिनाते हुए घोड़े, कोड़ों की मार से चिल्लाते हुए ग्राम-वासियों की हाहाकार, और दूसरी ओर अंतःपुर के सुरक्षित कक्ष में सैयद साहब, शातिर मियाँ, जुम्मन एवं ज़ुबेदा गंभीर मुद्रा में बैठे थे। एक बड़ा-सा काग़ज़ का टुकड़ा उनके सामने फैला हुआ था, जिस पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से डलमऊ के दुर्ग का मानचित्र बना था, और ज़ुबेदा उन्हें उँगली रख-रखकर समझा रही थी—

"क़िले के दक्षिण की ओर दरियाए-गंगा है, पश्चिम की ओर एक

मील लंबी और लगभग दस गज़ चौड़ी गहरी खाईं है, जो उत्तरी छोर को छूती हुई पूर्व की ओर चली गई है। यह खाईं आगे एक नाले से मिलती है, जो उत्तर-दक्षिण बहता हुआ गंगा में क़िले के थोड़ी दूर आगे गिरता है। खाईं और नाला दोनो ख़ूब गहरे हैं। दोनो में गंगा का पानी हमेशा भरा रहता है। नाले के इस पार, पूर्व की ओर सड़क है, जो गंगा तट से, क़िले के सामनान्तर, रायबरेली की ओर चली जाती है।" फिर मानचित्र पर उँगली रखकर उसने कहा—"यह देखो, यह सड़क है। यह क़िले का राजद्वार है। पूरा फाटक पत्थरों का बना है। दोनों ओर दो तोपें रक्खी हैं। दक्षिण की ओर छोड़कर, उत्तरी और पश्चिमी दिशा में खाईं के किनारे बुर्ज बने हैं। इन बुर्जियों पर भी तोपे हैं। क़िले की ऊँचाई सौ गज से अधिक ही है। अंदर वह ईंटों एवं पत्थरों का बना है, बाहर से केवल मिट्टी का ढेर है। और यह देखिये," ज़ुबेदा ने गंभीरता से कहा—"फाटक से यह सड़क क़िले के भीतर जाती है, जिसके सामने सेना के शिविर हैं। गोला-बारूद एवं हथियारों की कोठरियाँ ये हैं। इसी के पास अश्वशाला भी है। अब आगे चलिए। यह बड़ा-सा कक्ष जो दिखाई पड़ रहा है, यहाँ दरबार लगता है, और क़िले के भीतर पश्चिम की ओर जो फाटक है, वह फाटक नहीं, ख़ंदक है तथा इसमें राजबंदी रहते हैं। संपूर्ण क़िले का घेरा एक मील से कुछ कम ही होगा।"*

---

*आज लगभग ६०० वर्ष बाद भी दुर्ग के भग्नावशेषों की स्थिति का स्पष्टीकरण 'रायबरेली गजेटियर' के निम्न-लिखित उद्धरण से हो जाता है—

"Dalmau, which had fallen into decay after the 'Bhar-war'.... This fort stands on the cliff, about 100 feet high, over hanging the Ganges. In shape it is an irregular quadrangle, with its base on the river forming one of its

"ज़नानख़ाना कहाँ है ?" सैयद साहब ने नक्शे को ध्यान से देखते हुए पूछा।

"यह रहा।" ज़ुबेदा ने कहा—"दरबार से पूर्व की ओर ख़ज़ाना है। ख़ज़ाने से जो गलियारा जाता है, वह ज़नानख़ाने तक गया है, जहाँ बड़ा-सा आँगन है। आँगन में मंदिर है। मंदिर के पास ही महाराज के 'कला-कक्ष' एवं शयन-कक्ष हैं। और इधर......" ज़ुबेदा ने उँगली उठाते हुये कहा—"रानियों के कक्ष हैं। दक्षिणी कोने पर ऊपर जाने की सीढ़ियाँ हैं। ऊपर भी कई कक्ष हैं। सबसे ऊपर एक सुंदर बारादरी बनी है, जहाँ से गंगा की धारा कोसों तक दिखाई पड़ती है। यह सबसे ऊँची जगह है।

"अब आप इधर देखिये।" ज़ुबेदा ने पुनः उँगली से दिखाते हुए कहा—"आँगन में जो मंदिर है, उसी के पास से एक गलियारा उत्तर की ओर जाता है। इस गलियारे में दो खंदकें हैं, जिसके ऊपर अलग-अलग दो कक्ष बने हैं। इनमें से एक ज़नाना क़ैदख़ाना है, दूसरा मर्दाना। यही गलियारा पूरब की ओर थोड़ा मुड़ जाता है, जहाँ शराब का हौज़ है। आगे, द्वार से थोड़ी दूर पर, दोहरी कतार में छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी हैं, जहाँ नौकर-चाकर एवं परिचारिकाएँ रहती हैं। सबसे किनारेवाली कोठरी में हम लोग ठहरे थे।"

सूबेदार साहब सबकुछ ध्यान से सुन रहे थे, फिर भी उन्हें संतोष नहीं हो रहा था। उन्होंने ज़ुबेदा की आँखों में आँखें डालकर पूछा—"सुरंग कहाँ है ?"

---

long sides. the two north eastern sides are respectively 163 and 315 yards long. The other two are of nearly equal dimensions, and the entire circumference may be estimated at 900 yards or above half a mile."

"एक तो यह है।" ज़ुबैदा ने नक्शे पर उँगली रखते हुए कहा—"एक तो दरबार से पहले, और दूसरी रनिवास में। मैंने रनिवास-वाली सुरंग देखी नहीं, केवल सुना है। बहुत कोशिश करने पर भी उसकी ख़बर मुझे न लग पाई।

"हूँ।" सूबेदार साहब ने गंभीरता से हुँकार भरी।

"मैं बातऊँ?" जुम्मन बीच में ही बोल पड़ा—"भीतरवाली सुरंग की ख़बर मुझे है।"

"चुप।" सैयद साहब ने उसे डाँटकर कहा—"बेहूदा कहीं का!"

जुम्मन नाराज़ हो गया, और उठकर बुदबुदाता हुआ बाहर निकल आया।

"कहाँ चले हजरत?" जुम्मन के बाहर निकलते ही सदरुन ने उसकी चपकन पकड़कर पूछा।

"ख़बरदार!" जुम्मन ने ललकारकर कहा—"अगर मुझसे छेड़खानी की, तो ख़ैरियत नहीं।"

"किसकी?" सदरुन ने पूछा—"मेरी या आपकी?" फिर धीरे से कहा—"आज सीधे मुँह बात भी नहीं करते। कल जब बीच धार में नाव पर खड़े-खड़े चिल्ला रहे थे—पकड़ो, पकड़ो, नाव रोको—तब अगर मैंने ख़बर न ली होती, तो बच्चू चले जाते तीरथराज तक।"

"बड़ा एहसान किया बंदे पर!" जुम्मन ने मुँह टेढ़ा करके कहा—"डलमऊ से कड़े तक चला आया था, कड़े से इलाहाबाद तक भी चला जाता। यहाँ सुरंग के पीछे फटकार तो न सहनी पड़ती।" फिर आँखें नचाकर कहा—"सुरंग पूछते हैं, सुरंग! यह नहीं जानते कि कड़े से डलमऊ तक जितनी बड़ी सुरग है, उतनी जौनपुर में भी न होगी।"

"यहाँ कहाँ है सुरंग?" सदरुन ने कहा—"झूठा कहीं का।"

"तुम क्या जानो।" जुम्मन बोला—"किसी को भी ख़बर नहीं। सबसे बड़ी सुरंग तो मेरे सामने खड़ी है।"

"क्या कहा?" सदरुन ने लजाते हुए कहा—"फिर तो कह।"

"फिर क्या कहूँ?" जुम्मन ने चपकन पर एक झटका-सा दिया और उछलकर निकल भागा। सदरुन खड़ी-की-खड़ी रह गई। बाहर निकलकर जुम्मन ने अँगूठा दिखाया। सदरुन क्रोध से लाल हो गई। बोली—"फिर आना।"

क़िले की संपूर्ण स्थिति—उसकी बनावट, सीमा, भीतरी एवं वाह्य स्थिति सब कुछ—समझ चुकने के उपरांत सूबेदार साहब अंदाज़ बैठाने लगे—"दक्षिण तथा पश्चिम से तो हमला हो नहीं सकता। क्यों शातिर?"

"जी हाँ!" शातिर ने कहा—"महज़ पूरब और उत्तर से ही मुमकिन है। यहीं से हमला करने में फायदा भी रहेगा। पश्चिम की तरफ़ खाई है, दक्षिण की ओर गंगा। भागने पर भी कोई भाग न सकेगा।" शातिर ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया।

"शातिर साहब!" ज़ुबेदा ने धीरे से कहा—"एक ख़ास बात और है।"

"वह क्या?" सैयद साहब ने चौंकते हुए पूछा।

"हमला ऐन होली के रोज़ ही करना ठीक होगा।"

"क्यों?" शातिर ने कौतूहल से पूछा।

"सबब यह है कि," ज़ुबेदा ने धीरे से कहा—"होली इन लोगों का ख़ास त्योहार है। उस मौके पर ये लोग कई दिन पहले से ही रंग में डूबे रहते हैं। मैंने सुना है, डलमऊ में होली का जशन जिस शान से मनाया जाता है, वैसा और कहीं नहीं। नगाड़े बजते हैं, फाग होते हैं और रात-दिन रंग, गुलाल और अबीर चलता रहता है। सबसे ख़ास बात तो यह है, उस दिन ये लोग इकट्ठे होकर

इतना पीते हैं कि हौज़ के हौज़ ख़ाली हो जाते हैं। किसी को होश ही नहीं रहता। सभी नशे में चकनाचूर, मस्त, बेहोश और ग़ाफ़िल रहते हैं। औरत, मर्द सबके लिए पीने की खुली छूट रहती है। शराब पीकर ये लोग इस कसरत से रंग खेलते हैं, कि गंगा का पानी लाल हो जाता है। तीन-तीन दिन तक शराब की बेहोशी छाई रहती है। दौर चलते रहते हैं, और ये इंकार नहीं करते। यह त्योहार राजा, रियाया, सिपाही, नौकर - चाकर सभी इतनी मस्ती और बेपर्दगी से मनाते हैं कि किसी को अपना ख़याल ही नहीं रहता। यही नहीं पता लगता कि कौन राजा है, कौन प्रजा। बाहर-भीतर चारों तरफ़ महज़ शराब और रंग ही दिखाई पड़ता है।" कहती हुई ज़ुबेदा ने सैयद साहब की ओर निहारा। वह गंभीरता-पूर्वक उसकी बातें सुन रहे थे। वह पुनः बोली—"अभी होली महीनों दूर है, मगर लोगों में मस्ती छाने लगी है। बसंत के बाद से ही उनके जशन शुरू हो जाएँगे। होली तक पहुँचते-पहुँचते सभी अपनी मस्ती की चरम-सीमा का स्पर्श कर रहे होंगे। तैयारियाँ अभी से हो रही हैं।"

"बहुत ठीक!" सूबेदार साहब ने कहा—"यह बड़ी अच्छी बात बताई। इससे शानदार मौक़ा फिर न मिलेगा।"

"जी हां।" शातिर ने बीच में ही टोकते हुए कहा—"अब होली के कितने दिन रह ही गए हैं। अल्लाह चाहेगा, इस बार उन्हें होली के बाद नया नाज खाने को न मिलेगा।" कहता हुआ वह खड़ा हो गया, और अभिवादन कर बाहर निकल गया।

सलमा बाहर खड़ी-खड़ी, छिपकर, सब कुछ सुन रही थी। आहट पाते ही वह अपने कक्ष की ओर चली गई। उसका दिल धड़क रहा था। मन उदास था। उसे रह-रहकर ज़ुबेदा पर क्रोध आ रहा था।

शातिर द्वार खोलकर बाहर निकल गया । जब वह आँगन में पहुँचा, सूबेदार साहब ने पुकारा—"शातिर, ज़रा सुनना तो ।"

शातिर लौट आया । सूबेदार साहब ने कहा—'दीवाने-ख़ास में रोशनी का इंतज़ाम करवा देना । मैं अभी आ रहा हूँ । सूबेदार शम्सुद्दीन और सिपहसालार जाहिदअली ो भी बुलवा लेना । रात में ही मशवरा करना है ।" फिर धीरे से कहा—"सबेरा होते-होते शाह साहब भी तशरीफ़ ला रहे हैं । शाम को ही उनका संदेश आ गया है । मगर उनके आने की ख़बर बहुत ही पोशीदा रखना । किसी को मालूम न होने पाए । उन्होंने ख़त में इस बात की ख़ास ताकीद की है ।"

"अच्छी बात है ।" कहता हुआ शातिर बाहर निकल गया । और दीवान-ए-ख़ास सजवाने में लग गया । एक नौकर शम्सुद्दीन साहब को बुलाने चला गया ।

शातिर के जाने के बाद, सैयद साहब ने सदरुन से खाना लाने को कहा । सदरुन खाना रख गई । वह भोजन करते हुए ज़ुबेदा से बातें करने लगे । ज़ुबेदा उन्हें एक-एक बात बताती रही । फिर विहँसकर बोली—"उन्हें इन ख़तों पर पूरा यक़ीन हो गया है ।"

"सच ?" सूबेदार साहब ने प्रसन्नता से गद्गद् होकर कहा ।

"हाँ ।" ज़ुबेदा बोली—"जब मैं उनसे सलमा के बारे में बातें करती, उसकी तरीफ़ करती, तो वह इतने तन्मय हो जाते कि सब-कुछ भूल जाते । रात-भर सलमा का ही ज़िक्र किया करते । तरह-तरह की बातें पूछते । मुझे कितना चाहती है ? तुम किस तरह यहाँ तक ख़त लेकर आती हो , सैयद साहब तो नहीं जानते........वग़ैरा-वग़ैरा । एक-एक बात चार-चार बार पूछते । मेरा तो बताते-बताते मुँह दर्द करने लगता, मगर उन्हें सब्र न होता । जो बात बता जाती, उसी को फिर पूछते । कभी ख़त पढ़ते, कभी मेरी ओर देखकर कहते—

घबड़ाना नहीं, तुम्हारी भी शादी करवा दूँगा।" कहती हुई ज़ुबेदा खिलखिलाकर हँस पड़ी। सूबेदार साहब के अधरों पर भी मुस्कान नाच उठी।

सलमा पड़ी-पड़ी सब कुछ सुन रही थी, तथा मन-ही-मन ज़ुबेदा के ऊपर कुढ़ रही थी।

खाना खाकर सूबेदार साहब ने हुक्के के थोड़े-से कश खींचे फिर बाहर निकल आए। ज़ुबेदा उठकर बेग़म साहिबा के कक्ष की ओर चली गई।

अर्ध-रात्रि का भीषण सन्नाटा था। काली अँधेरी रात्रि साँय-साँय कर रही थी। जाड़े की ठिरन अब कुछ-कुछ कम पड़ने लगी थी। फिर भी गंगा-तट पर पड़े हुए सैनिकों को रात-भर नींद नहीं आ रही थी। वे करवटें ही बदल रहे थे। उसी सन्नाटे में क़िले में अचानक हलचल मच गई। नौकरों की भाग-दौड़ एवं कोलाहल से सबकी उनींदी आँखें खुल गईं। शाह शरकी आ चुके थे। उनके साथ थोड़े-से सैनिक थे। वह रातों-रात चलकर, अर्धरात्रि होते-होते, कड़े पहुँच गए थे। शाह साहब के सकुशल कड़े पहुँचने पर एक गोला स्वागतार्थ दगा। उसकी गरज से सभी चौंक पड़े। मशालें जल उठीं। सूबेदार साहब ने बढ़कर उनका स्वागत किया। उन्हें दरबार-ख़ास में बैठाया। तत्काल ही भोजन का प्रबंध हुआ एवं कक्ष के चारो ओर पहरा लग गया।

सब कार्यों से निवृत्त होकर शाह साहब आसन पर विराजमान हुए। सूबेदार साहब, शातिर तथा अन्य सरदार-गण भी यथास्थान बैठ गए। क़िले का नक़्शा उनके सामने रक्खा गया। सैयद साहब ने एक-एक बात समझाई। क़िले में कहाँ खाई है, कहाँ सुरंग है, कहाँ फ़ौज है, कहाँ ख़ज़ाना है। सब कुछ समझ चुकने के बाद शाह साहब ने बड़े ध्यान से नक़्शा देखा, कुछ विचार किया, फिर शातिर

की पीठ ठोकते हुए कहा—"यह काम तुमने बड़े कमाल का किया। इससे हमें बड़ी मदद मिलेगी।"

शातिर ने प्रसन्न होते हुए होलीवाली योजना भी सुनाई। सब लोगों ने ध्यान से सुना। तत्पश्चात आक्रमण की योजना बनाई गई। सर्व-सम्मति से होली के दिन ही आक्रमण करने का निश्चय हुआ। यह योजना सेनापति को सौंप दी गई। शाह साहब विश्राम करने लगे। सब लोग अपने-अपने स्थान को लौट गए।

एक ओर यह सब हो रहा था—युद्ध की योजना बन रही थी, आक्रमण का पथ निर्धारित किया जा रहा था, सेना को टुकड़ियों में बाँटा जा रहा था, गोलंदाजों को तोपें ठीक करने का आदेश दिया जा रहा था—और दूसरी ओर, अपने कक्ष में पड़ी हुई, भावुक सलमा राजा डल का अंतिम-पत्र पढ़ रही थी। इसी पत्र को उसने जुम्मन से छीन लिया था। दीपक के प्रकाश में सलमा पत्र की एक-एक पंक्ति को अपनी भावना का केंद्र बनाए थी। जबसे वह पत्र उसने जुम्मन से छीना, तबसे सैकड़ों बार वह इसे पढ़ चुकी है। रात के भीषण सन्नाटे में उसकी निगाहें पत्र के एक-एक अक्षर पर चमक रही थीं, और वह पढ़ रही थी—

"मेरी राजहंसिनी,

तुम्हारा पत्र मिला। चमन और निकुंज, बुलबुल और कोयल, सलमा और डल, सभी एक दूसरे के पर्यायवाची हैं—एक ही हैं। नामों की भिन्नता से गुणों में भिन्नता नहीं आती। यदि भिन्नता समझती हो, तो एक दूसरे को पूरक समझ लो। अल्लाह और ईश्वर एक ही हैं, दोनों के नाम भिन्न हुए तो क्या? उसी प्रकार बुलबुल और कोयल, चमन और निकुंज, दोनो ही, एक दूसरे के दृष्टिकोण से भिन्न होते हुए भी, एक ही महत्व रखते हैं। जैसे तुम और मैं। जब तुममें और मुझमें कोई अंतर न रहा, तो चमन को चाहे निकुंज

कह लो या निकुंज को चमन, कोई अंतर न पड़ेगा। तुमने ठीक ही लिखा है कि मुझे दर्द की पहिचान नहीं, किंतु हमदर्द का पहिचान अवश्य है। इसीलिए मैं सैय्याद होते हुए भी इंसान हूँ, क्योंकि मैंने एक ऐसी हृदय-हीन प्रतिमा के ऊपर, आशाओं के पुष्प चढ़ाकर, आरती उतारी है, जिससे वरदान मिलने की आशा नहीं, प्रत्युत वह स्वयं मेरे लिए वरदान है। मेरी पूजा को भले ही देवता खिलवाड़ समझे और मुझे ज़ालिम बतावे, मगर मैं उस खिलवाड़ में भी अपनी छाया देखता हूँ। बोलो, मैं असत्य तो नहीं कह रहा?"

"नहीं!" सलमा ने आँखों में आँसू भरकर स्वतः कहा—"तुम असत्य नहीं कह रहे हो। तुम्हें क्या पता, जिन पत्रों के बल पर तुम यह हवाई महल उठा रहे हो, उनकी नींव ही ग़लत है। किंतु इस ग़लत बुनियाद पर भी मेरे ऊपर तुम्हारा इतना विश्वास?" सोचते-सोचते सलमा का हृदय हाहाकार कर उठा। उसने आगे पढ़ा—

"तुम मौसम का इंतजार कर रही हो, मगर यह भूलती हो कि मौसम तो अपने आप आया-जाया करता है। उसे कोई बुलाने नहीं जाता। उसी के साथ कोयल भी आती है। ये दोनो अनाहूत अतिथि हैं, जो स्वयं निकुंज में आकर चहकने लगते हैं। तुम तो मौसम के पहले ही मेरे हृदय-कुंज में आ चुकी हो, लेकिन एक 'हूक' बनकर। यह हृदय की 'हूक' कभी कोयल की 'कूक' भी बनेगी अथवा नहीं, जब यह सोचने लगता हूँ, तभी तुम्हारा तमतमाता हुआ चेहरा आँखों में नाच उठता है। यदि तुम्हारा यह पत्र सत्य है, इसके भाव सत्य हैं, तो मुझे विश्वास है, तुम धोखा न दोगी। एक बहादुर क़ौम की बहादुर बेटी से, इसके अतिरिक्त और क्या आशा करूँ?"

बहादुर क़ौम की बहादुर बेटी!" सलमा बुदबुदाई। उसकी आँखों से दो मोती पत्र पर चू पड़े। उसने नीचे की ओर देखा। लिखा था—

'तुम्हारा अपना—बलदेव'

राजा डल !" सलमा के ओठ बुदबुदाए—"मैं तुम्हें धोखा न दूँगी।" एक लंबी साँस छोड़कर उसने संकल्प किया। आँखों को आँचल से पोंछकर उसने पत्र एक ओर रख दिया। "एक बहादुर क़ौम की बहादुर बेटी तुम्हें धोखा न देगी। मगर बहादुर क़ौम ही तुम्हें धोखे में डाल चुकी है। जिस लड़की पर तुम इतना विश्वास करते हो, वही उस भ्रम-जाल का फंदा है। बहादुर को बहादुरी से मारा जाता है, धोखे से नहीं। मगर ये लोग! ऊफ़....!" सलमा सिहर उठी। कितनी नीचता पर उतर आए हैं ये लोग! अगर मैं जानती कि एक राजा को पराजित करने के लिये दूसरा राजा इतना संकीर्ण-हृदय हो सकता है, उसे इतने धोखे में रख सकता है, तो मैं अपने दिल की बात किसी को भी न बताती, चाहे डलमऊ के क़िले में अकेली ही जाकर जूझ जाती। इतिहास मुझे याद करता कि एक काफ़िर से अपनी इज्जत का बदला लेने के लिये एक बहादुर लड़की अकेली ही, उसी के क़िले में जाकर, लड़ मरी थी।

मगर आज........?

संसार यही कहेगा कि एक पवित्र-हृदय एवं निष्कपट व्यक्ति को धोखे में डालकर, उसका समस्त वैभव रौंद डाला गया—मटिया-मेट कर दिया गया। और वह लड़की, जिसकी बदौलत यह सब हुआ, क़िले में बैठी-बैठी गंगा की तरंगों का आनंद लेती रही। मैं चार दिन बाद दुनिया में अपना मुँह दिखाने लायक न रहूँगी।" सोचते-सोचते सलमा का नारी-हृदय चीत्कार कर उठा।

"मेरे राजा!" सलमा ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"भले ही मैं तुमसे प्रेम न करूँ, किन्तु मैं तुम्हें धोखा न दूँगी। विश्वास रक्खो........"

प्रभात हुआ। सलमा ने देखा कि लाल-लाल सूर्य की किरणें झरोखे से झाँक रही हैं। वह उठ बैठी। अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों को

समेटकर दुपट्टा शीश पर डाला। झाँक कर देखा, तो बाहर मैदान में सेना सज रही थी। घोड़े तैयार किये जा रहे थे। सिपाही अपने बख़्तर पहन रहे थे। तंबू उखाड़े जा रहे थे। तोपें खींचनेवालों के कंधों पर रस्से डाल चुके थे। और.......।"

सब कुछ देखकर सलमा की साँस फूलने लगी। वह छाती में उठ रहे तूफान को छाती में ही समेटे यह सब देखती रही। बैलगाड़ियों में रसद लादी जा चुकी थी। सेनापति घोड़े पर चढ़ा, हाथ में नंगी तलवार लिये टहल रहा था। सब कुछ तैयार था। केवल शाह साहब के आने की देर थी। बस, घड़ी भर में ही सेना कूच कर देगी। एक ओर यह सब तैयारियां, ये हाथी, ये घोड़े, ये तोपें, और ये सिपाही, और दूसरी ओर मेरी मुहब्बत में पागल राजा डल!" सलमा के नयन भर आये। वह बिसूरने लगी—"शायद उस बेचारे को पता भी न होगा, कि ऐन होली के दिन ये लोग उसे मटियामेट करने आ रहे हैं।"

सलमा खिड़की पर खड़ी रही। देखती रही। आँसू पोंछती रही। उधर सेना सजती रही, बिगुल बजते रहे, घोड़े हिनहिनाते रहे, हाथी चिंघारते रहे और जनरव के बीच सेनापति की ललकार गूँजती रही। सलमा का हृदय भर आया।

कूच का डंका बजा। गोला छूटा। "अल्लाहो अकबर!" का घोष हुआ, और सेना टिड्डी-दल की तरह बढ़ चली।

"या ख़ुदा!" सलमा ने आँखों में आँसू भरकर, आकाश की की ओर देखकर कहा—"परवरदिगार! मेरी लाज रखना। एक ओर मेरी मुहब्बत है, दूसरी ओर मेरी बेइज़्ज़ती। फिर भी सब कुछ मेरे ही नाम पर होने जा रहा है। मालिक, लाज तेरे ही हाथों में है..........।"

सलमा ने ठंढी-साँस भरकर आँचल से आँसू पोंछे। अल्लाह का

नाम लिया, जाती हुई सेना एवं झंडों की क़तार की ओर देखा, फिर गंगा के कछार की ओर निहारा। तट पर वही हरीतिमा थी, वही सारस के दो जोड़े आपस में चोंच मिलाए थे। कुछ दूरी पर वही बूढ़ा साधु बैठा गा रहा था—

"घट-घट में भगवान, बंदे! घट-घट में भगवान!
तन की लाली, मन की स्याही!
यह जीवन की धामा - छाँही!
कब तक साथ रहेंगे, राही,
यह सेना ये दुर्ग - सिपाही!
सोच - समझ नादान, बंदे घट - घट में भगवान?

सलमा छज्जे पर टेक लगाकर सुनती रही और बूढ़ा साधु गाता हुआ आगे बढ़ा—

"यह जीवन कितना अभिमानी,
समझ नहीं पाएगा प्रानी!
राजा कौन? कौन है रानी?
सबकी अंतिम-गति पहचानी!
कर इसका अनुमान, बंदे! घट-घट में भगवान!"

गाता हुआ बूढ़ा साधु दुर्ग के नीचे आ गया था। सलमा की छाती में उथल-पुथल मची हुई थी। उसने पुकारा—"बाबाजी!"

साधु की निगाहें ऊपर उठीं। उसने देखा झरोखे पर वही लड़की खड़ी है। भोली हिरनी-सी आँखें आज लाल हैं, स्वर कुछ भर्राया-सा तथा चेहरा उदास है।

"क्या है बेटी!" साधु ने पूछा।

"कुछ नहीं बाबा !" सलमा ने आँसू पोछकर कहा—"किस्मत का खेल है।" कहकर वह झरोखे से हट गई। बूढ़ा साधु गाता हुआ आगे बढ़ा—

"मन की गति मन जान न पाया,
अपनापन पहचान न पाया !
रहा भटकता ज्ञान न आया !
परमेश्वर का ध्यान न आया !
जीवन है चट्टान, बंदे घट-घट में भगवान ! बंदे घट........।"

फाग के ढोल बज रहे थे। होली गाई जा रही थी। रंग के हौज़ के-हौज़ भरे जा चुके थे। बाहर नगाड़े घमघमा रहे थे। संपूर्ण क़िला रंग-बिरंगी पोशाकों से, अट्टहासों से, रंग के फौव्वारों से एक नये उल्लास में डूबा हुआ था। नंगी-तलवारों के स्थान पर हाथ में पिचकारियाँ थी। रानियाँ ज़र्क-बर्क पोशाकें पहने मस्ती से किलोलें कर रही थीं। परिचारिकायें, जड़ाऊ कमर-पेटी में खंजर खोंसे हुए, चंचलता से इधर-से-उधर थिरक रही थीं, किलकारियाँ भर रही थी, उपहास कर रही थी और एक-दूसरे के मुख पर अबीर लगा रही थीं। सोने की अंबारियाँ सुनहरी धूप में चमचमा रही थीं। झरोखों पर लगे महोन, रेशमी पर्दे वायु में लहरा रहे थे। क़िले का संपूर्ण आँगन इत्र, गुलाब, रंग, केशर, एवं अबीर से सराबोर था। मुक्त-कुंतला रानियाँ रंग-बिरंगी हो रही थीं। फिर भी एक दूसरी को भिगोए जा रही थीं। किसी के केश अबीर से लाल हो गये थे, तो किसी के गाल गुलाल से अरुण हो गए थे। किसी का मुख केशर की कीच से विकृत हो गया था, तो किसी की चोली रंग से गीली पड़ गई थी। किसी की साड़ी रंग से सराबोर थी तो किसी का आँचल। कोई हाथ में पिचकारी लिए थी, तो कोई गुलाल का पात्र। कोई आँचल से मुख का कीच पोछ रही थी, तो कोई किसी के कपोलों को लाल-पीला बना रही थी। इसी घमा-चौकड़ी में, अट्टहास में, धर-पकड़ में, किसी का आँचल फट गया था, तो किसी की चोली मसक गई थी। किसी की साड़ी ढीली पड़ गई थी, तो

किसी की कंचुकी के टुकड़े टुकड़े हो गए थे। कोई अपनी साड़ी संभाल रही थी, तो कोई बाल समेट रही थी। न तन की सुधि न मन का ध्यान। सभी तन्मय, बेसुध व उन्मादिनी हो रही थीं। उनके रूप को देखकर लगता था, मानों चंचलता मूर्तिमान होकर झूम रही हो!

"चल इधर।" कंचुकी रानी ने मस्ती से सावित्री का जूड़ा पकड़कर खींचा।

"मुझे छोड़ दो छोटी रानी!" सावित्री चिल्लाई।

तब तक मालती ने रंग का कलश उसके शीश पर उड़ेल दिया। वह नीचे से ऊपर तक सराबोर हो गई। छूटते ही सावित्री ने मालती को धर दबोचा! मालती ने कसकर आँचल में अपना मुख छिपा लिया।

"खोल मुख।" सावित्री चिल्लाई—"या साड़ी खींच लूँ?"

"खींच लो।" मालती ने मस्ती से कहा।

सावित्री ने साड़ी का छोर खींचने का उपक्रम किया। मालती चिल्ला उठी। सावित्री ने उसके बालों में गुलाल भर दिया। मालती अपने को छुड़ाकर भागने लगी। "ले और।" कहकर सावित्री ने रंग का कलश उसके शीश पर उड़ेल दिया। मालती भागी और दौड़कर कंचुकी रानी से लिपट गई। "अरी, मुझे तो छोड़ पगली!" कंचुकी रानी ने उसे ढकेलते हुए कहा—"भाग यहाँ से!" किंतु मालती ने उन्हें धर दबोचा और सावित्री ने बढ़कर रानी के मुख पर गुलाल पोत दिया।

रानी छूटते ही भाग निकलीं। आगे लक्ष्मी रानी पड़ गईं। उनके मुख पर अबीर थोपकर कंचुकी रानी आगे बढ़ीं। उधर से बड़ी रानी आ रही थीं, वह उल्टे पैरों भागीं और अपने कक्ष में घुस गईं। भीतर से उन्होंने द्वार बंद कर लिया। कंचुकी रानी ने दर-

वाज़ा भड़भड़ाया, किंतु द्वार न खुला। वे ऊपर चढ़ गईं, और झरोखे से उन्होंने रंग की पिचकारी बड़ी रानी के ऊपर छोड़ी।

"अरे, सब कुछ बर्बाद हो गया।" बड़ी रानी चिल्लाईं।

"होने दो।" कंचुकी रानी ने उत्तर दिया। उसी समय सावित्री ने पीछे से उनकी आँखें मूँद लीं। मालती ने रानी के बिखरे केशों में केशर का कटोरा उलट दिया। कंचुकी रानी ने एक झटका दिया। कटोरा झनझनाता हुआ भूमि पर आ गिरा। सावित्री एवं मालती ताली बजाती, उछलती लौट आईं। कंचुकी रानी नीचे भागीं। उसी समय महाराज बाहर से रंग-बिरंगे आते हुए दिखाई पड़े। कंचुकी ने उनका मुख गुलाल से लाल कर दिया। फिर मस्ती से पूछा—"और कुछ?"

"हाँ।" कहकर महाराज विहँस पड़े। उन्होंने कंचुकी को बाँहों में भरकर उसके अरुण कपोलों को और अरुण कर दिया। वह लजाकर भाग गई। उसी समय बड़ी रानी व लक्ष्मी रानी ने महाराज को इत्र एवं रंग से सराबोर कर दिया। महाराज सिहर उठे। कंचुकी ताली बजाने लगी। महाराज लज्जित हो उठे। उन्होंने झपटकर लक्ष्मी रानी को पकड़ा। पीछे से कंचुकी ने उनका उत्तरीय पकड़कर खींच लिया। महाराज और कंचुकी रानी की पुनः भिड़ंत हो गई। महाराज ने उसका आँचल पकड़कर खींच लिया। रानी लक्ष्मी ने महाराज की ओर गुलाल फेंका, वह आँखें मलते हुए बाहर भागे। सभी रानियों ने अट्टहास किया।

दुर्ग के भीतर, अंतःपुर में, तो यह दशा थी, बाहर सेना, सिपाही, नौकर-चाकर, पुरजन-परिजन एवं राजपुरुष सभी मदमत्त थे। रंग के हौज़-के हौज़ ख़ाली हो रहे थे। बूढ़े महामंत्री की मुखाकृति दर्शनीय थी। वह जिधर जाते, उधर से ही एक पिचकारी पड़ती। रंग में सराबोर, शिथिल शरीर, भीगे वस्त्र, संपूर्ण गात

काँप रहा था, फिर भी वह मस्त थे, मानो बुढ़ापा अभी आया ही नहीं। यह सब चल ही रहा था कि उसी समय महाराज बाहर निकले। उन्होंने बूढ़े महामंत्री को गोद में भर लिया। फिर हँसते हुए उन्हें रंग के हौज़ के पास ले जाकर बोले—"इसी में छोड़ दूँ?"

"मर जाऊँगा महाराज!" महामंत्री चिल्लाए। महाराज हँस पड़े। उन्होंने मंत्रीजी को छोड़ दिया, और सेनापति को पकड़ा। सेनापति जी छुड़ाकर भागे। महाराज ने उन्हें धर दबोचा, और उठाकर दूसरे हौज़ में छोड़ दिया। सेनापति डूबने-उतराने लगे। महाराज अन्य लोगों की ओर बढ़े। भगदड़ मच गई। पीछे से कुछ लोगों ने महाराज को घेर लिया। अकेले महाराज पर सभी टूट पड़े।

"आज ही तो अवसर है।" कोई बीच में चिल्लाया। "आज राजा-प्रजा में भेद नहीं।" दूसरे ने चिल्लाकर समर्थन किया। "साल-भर बाद फिर कभी यह दिन देखने को मिलेगा!" तीसरी आवाज़ आई। "कोई क़सर बाक़ी न रहे!" चौथा चिल्लाया। महाराज की छीछालेदर होने लगी। कोई रंग फेंकता, कोई अबीर, कोई गुलाल। महाराज की दुर्गति हो गई। वह पिंड छुड़ाकर भागे। सभी ने अट्टहास किया।

सेनापति अब तक हौज़ के बाहर निकल आए थे। सब उनकी ओर झपटे। महाराज प्राण बचाकर गलियारे तक ही पहुँचे होंगे कि उधर से सावित्री आती दिखाई पड़ी। वह उसे देखकर रुक गए। सावित्री महाराज की मुखाकृति देखकर हँस पड़ी। महाराज ने हँसते हुए पूछा—"सावित्री, तेरा लड़का कहाँ है?"

"क्या कीजिएगा?" सावित्री ने डरकर पूछा।

"होली खेलूँगा।" कहकर महाराज ने गुलाल से सावित्री के गाल लाल कर दिए। सावित्री चीख़-सी पड़ी। बोली—"रहने दीजिए।"

"क्यों ?" महाराज बोले—"अब तो वह तीन महीने का है, तीन कलश रंग काफ़ी है।"

सावित्री काँप उठी। महाराज उसका हाथ पकड़कर कोठरी में घसीट ले गए। बच्चा पड़ा सो रहा था। आहट पाकर जाग उठा। महाराज ने उसे गोद में उठा लिया। उसके माथे पर केशर का टीका लगाया। फिर मुख चूमकर उछालते हुए सावित्री की ओर बढ़ाकर बोले—"ले, बड़ी लड़केवाली बनी है!"

सावित्री मंद-मंद मुस्किरा उठी। महाराज एक ओर चले गए।

संपूर्ण दिन रंग-अबीर और गुलाल चलता रहा। सभी बेहोश, मदमस्त एवं पागलों-से एक-दूसरे से मिलते रहे, लिपटते रहे, रंग से सराबोर करते रहे। स्वादिष्ट पकवान भोजनालय में ही पड़े रहे। किसी को खाने की न तो फ़ुरसत थी और न ध्यान।

साँझ हुई। दुर्ग में मशालें जल उठीं। प्रकाश से संपूर्ण क़िला जगमगा उठा। क़िले के विशाल प्राँगण में सब लोग टोलियाँ बना-बनाकर बैठ गए। ढोल, मृदंग, झाँझ, करताल बजने लगे। फाग होने लगा। मदिरा का हौज़ भरा गया। एक टोली जब समाप्त करती, तो उसी 'लेज' को दूसरी उठाती और पहली टोली मदिरा-पान में जुट जाती। इसी प्रकार फाग होता रहा। टोलियाँ बदलती रहीं। हौज़-के-हौज़ ख़ाली होते रहे। हज़ारों मटके, सुराहियाँ और नाँदें भरती एवं ख़ाली होती तथा फूटती रहीं। सभी ख़ूब डटकर पी रहे थे। पुरुषों में केवल महाराज एवं महामंत्री तथा नारियों में सावित्री एवं कंचुकी रानी को छोड़कर सभी नशे में चकनाचूर थे।

उस समय सेनापति झूमते-झामते रंग-स्थल पर आए, और पहुँचते ही गला फाड़कर चिल्लाए—"अ र र र र र....कबीर!"

उनकी भीषण गर्जना सुनकर चारो ओर सन्नाटा छा गया। सेनापति ने कहा—"मैं गाता हूँ, आप लोग गवाइए। सब मौन हो

गए । ढोल-झाँझ-करताल बजती रही । सेनापति ने भीषण अट्टहास किया । फिर झूमते हुए आलाप ली—

"निकरि गए दुइनो भाई, बन का निकरि गए दुइनो भाई !

आ हाँ !! निकरि गए दुइनो भाई !

ओ ! हो !!

निकरि गए दुइनो भाई, बन का निकरि चले दुइनो भाई !

आगे-आगे राम चलत हैं—

पीछे जानकी माई ! हँ-हाँ - हाँ !

पीछे जानकी माई !

बन का निकरि गए दुइनो भाई !

ह, हा, हा, हाँ ! ह, हा, हा, हाँ !! ह, हा, हा, हाँ !!'

निकरि गये दुइनो भाई, बन का निकरि गए दुइनो भाई !

अ हाँ, हाँ निकरि गए दुइनो भाई !

यह सब राग-रंग चलते-चलते रात का पिछला प्रहर आ गया । कोई टस-से-मस न हुआ । वही मस्ती, वही संगीत और वही मदिरा का दौर ! सब-के-सब चेतना-हीन हो रहे थे । न तन का ध्यान, न कंठ का । न स्वर का, न ताल का । न बाजे का, न आलाप का । बाजा कहीं जा रहा था, तो स्वर कहीं । केवल "हो-हो, ही-ही" की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी । मस्ती में कोई झूम रहा था, तो कोई गिर रहा था । कोई गिरनेवाला था, तो कोई चारो खाने चित्त पड़ा था । सेनापति अब भी गा रहे थे—

"निकरि चले दुइनो भाई, बन का निकरि चले दुइनो भाई !

बन का..................।"

"धड़ाम !"

उसी समय एक गोला क़िले के आँगन में गिरा। सभी चौंक पड़े। रंग में भंग हो गया। महामंत्री चिल्लाए—

"अन्नदाता ! यवनों की सेना आ गई।"

"ह, ह, ह,! सेना आ गई?" सभी एक स्वर में बोले—"अररररररर कबीर !"

महामंत्री महाराज की ओर भागे।

सेनापति हज़ारों सैनिकों एवं ग्राम-वासियों के साथ अब भी गा रहे थे—

"बन का निकरि चले दुइनो भाई..................।"

यह गोला शाह शकी ने क़िले के प्रांगण में चेतावनी-स्वरूप फेंका था। गोले के गिरते ही भीषण गर्जना हुई, जो ढोल-मृदंग, करताल एवं जन-रव में डूब गई। सेनापति अब भी झूम-झूमकर उसी मस्ती से गा रहे थे। मानो कुछ हुआ ही नहीं।

सेना एवं सेनापति की यह दशा देख, बूढ़े महामंत्री क़िले के भीतरी कक्ष की ओर भागे। उन्हें भागता देख सब लोगों ने शोर किया, कबीर गाया एवं अट्टहास किया।

"सेना, ह ह ह ह ह !" जन-समूह चिल्लाया।

"पियो, ख़ूब पियो !" सब लोग हौज़ की ओर बढ़े।

गोले की गर्जना सुनकर महाराज भीतरी कक्ष से बाहर की ओर निकल आए। उन्हें देखते ही फिर सबने "अरररररर कबीर !" गाया। महाराज के होश उड़ गए। सेनापति, सेना, सरदार सभी तो बेहोश पड़े हैं? उन्होंने बढ़कर क़िले का द्वार बंद करवा लिया। कुछ थोड़े से सिपाहियों को, जो होश में थे, क़िले के फाटक पर खड़ा किया। महामंत्री को गोला-बारूद निकलवाने का आदेश दिया। प्रसिद्ध 'भैरों' तोप दुर्ग के फाटक पर लगवा दी। नंदू को

बुलाया। वह कुछ होश में था। उसे सुरंग से बाहर निकालकर, रातोरात रायबरेली सूचना लेकर भेज दिया। महाराज स्वयं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर घूमने लगे। रनिवास में हड़कंप मच गया। कंचुकी एवं सावित्री को छोड़कर, सभी रानियाँ एवं परिचारिकाएँ बेहोश थीं। मानो उन्हें किसी बात की खबर नहीं।

अजीब दृश्य था। बाहर क़िले पर गोले बरस रहे थे, और अंदर मदिरा के दौर चल रहे थे, फाग हो रहा था और ढोलक बज रही थी!

महाराज खड़े दाँत पीस रहे थे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करें।

शाह शर्की ने क़िले के दो ओर पूरी मोर्चाबंदी कर ली थी। पूर्व की ओर उसने तोपें लगा रक्खी थीं। उत्तर की ओर शातिर एवं सैयद साहब सेना-समेत डटे थे। शेष दो ओर कोई मैदान ही न था। दोनो ओर खाईं थी। मोर्चाबंदी इस प्रकार की गई थी कि कोई भी जीवित न बचे। जो प्राण बचाकर भागे भी, तो वह गंगा में डूब मरे या खाईं में। रात-भर शाह शर्की की तोपें आग बरसाती रहीं।

घोंसलों में सोते पक्षी जाग उठे। वृक्ष, लताएँ सभी जैसे चौंक पड़े हों। गोला फेंकते-फेंकते तोपों का मुख लाल पड़ गया, मगर क़िले की दीवारों पर कोई प्रभाव न हुआ। जो गोला जहाँ लगता था, वहीं धँस जाता था। शाह साहब यह स्थिति देखकर परेशान हो उठे। सैकड़ों मन बारूद नष्ट हो गई। हज़ारों गोले बर्बाद हो गए, मगर क़िले पर कोई प्रभाव न पड़ा। प्रभात होने में अधिक देर न थी। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि इतनी भीषण गोला-बारी होने पर भी, न तो क़िला ही कहीं से टूटा और न राजा दल के सैनिक ही दिखाई पड़े।

"क्या बात है ?" शाह शर्की ने आश्चर्य एवं परेशानी से अपने-आप प्रश्न किया, और घोड़ा बढ़ाकर फाटक की ओर चले। फाटक बंद था। दो-चार सैनिक राजद्वार पर एक तोप लिए खड़े थे। शाह साहब वापस लौट आए, और आँगन की ओर ध्यान लगाकर आहट लेने लगे। सेना के कोलाहल, गोलों की गरज एवं हाहाकार में उन्हें कुछ भी सुनाई न पड़ा। हाँ, ढोल की आवाज़ के साथ-साथ सैकड़ों सम्मिलित कंठों की क्षीण ध्वनि उनके कानों में पड़ी। वह सतर्क हो गए।

"अब शायद हमला होनेवाला है।" उन्होंने अपने-आप प्रश्न किया। वह राजा दल के सैनिकों की प्रतीक्षा करने लगे, किंतु प्रतीक्षा करने पर भी जब क़िले से एक भी गोला बाहर न आया, तो वह परेशान हो उठे। उन्होंने घोड़े की रास मोड़ी। ऐंड़ लगाई। घोड़ा उन्हें लेकर उत्तर की ओर भाग चला। वहाँ शातिर एवं सैयद साहब मोर्चा लगाए गोलाबारी कर रहे थे। सैनिकों की पंक्ति चीरते-फाड़ते शाह साहब आगे बढ़े। शातिर के निकट पहुँचकर बोले—"शातिर, क्या बात है ?"

"परवरदिगार !" शातिर शाह साहब को देखते ही चिल्लाया—"तोपों का मुँह लाल पड़ गया है, अब ये गोलाबारी नहीं कर सकतीं। हमारे सभी गोले बेकार हुए जा रहे हैं। मालूम पड़ता है, यह क़िला मिट्टी का नहीं, फ़ौलाद का है !"

"या अल्लाह !" शाह साहब ने लंबी साँस लेकर कहा—"बेटा, हिम्मत न हारना।" और वह सेना को जोश दिलाते हुए पूर्व की ओर लौट पड़े। सेना टिड्डी-दल की भाँति संपूर्ण क़िले के चारो ओर फैलने लगी। "शाह शर्की ज़िंदाबाद !" के नारों से गगन की छाती प्रकंपित हो रही थी। परंतु क़िले पर अब भी कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

भीतर महाराज बौखलाए-से घूम रहे थे। उनकी डाट-डपट का सरदारों पर कोई भी प्रभाव न पड़ा। वे अब भी मदिरा का दौर चला रहे थे। महाराज को रह-रहकर क्रोध आ रहा था। उनकी ऐसी इच्छा हुई कि वह भैरों-तोप का मुख सरदारों की ओर कर सबको उड़वा दें और स्वयं अकेले ही जूझ मरें।

बाहर तो यह दशा थी, भीतर सावित्री अपने बच्चे को गोद में लिए कंचुकी रानी के पास पहुँची और ज़ोर से चिल्लाकर बोली—"छोटी रानी! अब क्या किया जाय?"

कंचुकी पागलों-जैसी दौड़कर सावित्री से लिपट गई। बोली—"मौत!" सावित्री, 'होली हमारे लिये मौत बनकर आई है। सभी सरदार, सेना, सेनापति मदिरा के नशे में बेहोश हैं। बाहर गोले बरस रहे हैं, क़िला गिर रहा है। क्षण-भर में ही सर्वनाश होने-वाला है। हे भगवान्! अब क्या किया जाय?"

"रानी!" सावित्री चिल्लाई—"क़िले के गिरते ही वे रनिवास पर टूट पड़ेंगे, बोलो, क्या करूँ? यह मदिरा जो कुछ न कराए, कम है।"

"सावित्री!" कंचुकी ने उत्तर दिया—"इस तरह घबराने से काम न चलेगा। क़िला अभी नहीं गिरेगा। इस प्रकार की हज़ारों तोपें आग बरसाएँ, तब भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। बाहर मिट्टी का अंबार है। मिट्टी के बाद पत्थर हैं। पत्थर के बाद भवन। किंतु अब विनाश निकट है। तू सुरंग में छिप रह। मैं लड़ मरूँगी।" कंचुकी रानी ने निराशा से कहा।

"मैं आपके साथ हूँ।" सावित्री बोली—"कहीं नहीं जाऊँगी। यहीं मरूँगी। हे भगवान्....!"

दोनो ने तलवारें निकालकर अपने-अपने हाथों में ले लीं, और अंतःपुर के दोनो प्रवेश-द्वारों पर खड़ी हो गईं। सावित्री ने अपने बच्चे को सुरंग में बैठा दिया।

प्रभात हो रहा था। शाह शर्की परेशान थे। उनकी बुद्धि काम न कर रही थी। उसी समय उन्हें कुछ ध्यान आया। वह दौड़े हुए सेनापति के पास पहुँचे। और बोले—

"सिपहसालार! नक़्शा कहाँ है?"

सेनापति ने क़िले का नक़्शा निकालकर शाह की ओर बढ़ा दिया। शाह ने उसे ध्यान से देखा। फिर प्रसन्न होकर कहा—

"सभी तोपों को बीचोबीच में खिंचवा लाओ।"

तत्क्षण आदेश हुआ। तोपें क़िले के बीचोबीच लाकर खड़ी कर दी गईं। गोला-बारी होने लगी। गोलों की मार से क़िला धँस गया। सुरंग का मुख खुल गया। शाह ने गोला-बारी बंद करवा दी और सुरंग में बारूद भरने का आदेश दिया। सैकड़ों गाड़ी बारूद सुरंग में भर दी गई। जब सुरंग का थोड़ा-सा मुख ख़ाली रह गया, तो उन्होंने बारूद भरवाना बंद कर दिया। सेना को अलग हटने का आदेश दिया। स्वयं काफ़ी दूर जाकर खड़े हो गए। तोपें हटा ली गईं। शातिर एवं सैयद साहब भी हट गए। राज-द्वार पर रक्खी हुई तोप अब गोले बरसाने लगी थी।

× × ×

इधर यह सब हो रहा था, उधर नंदू रातोरात रायबरेली पहुँचा। वहाँ भी वही दशा थी। वही शराब, वही रंग, वही हौज़! हाँ, उसका उतना भीषण रूप वहाँ न था, जितना डलमऊ में। ख़बर पाते ही सेना तैयार हुई। बैलगाड़ियों में सामान लादा गया। तोपें निकाली गईं। सेना चल पड़ी। क़िले में हाहाकर मचा हुआ था। सभी सेनाध्यक्ष अपनी-अपनी सेना को सतर्क कर रहे थे। प्रधान सेनापति, घोड़े पर चढ़े शीघ्रता करवा रहे थे। अंत में प्रयाण की वेला आ ही गई।

महाराज तैयार हुए। रानी सुभद्रा ने उनके फेंटे में तलवार बाँधी। महाराज एक बार प्यासे नयनों से दुर्ग को निहारकर शिव

की प्रतिमा को सिर झुकाते हुए चल पड़े। गजराज घोड़े पर बैठने के पूर्व श्यामा के पास गया, और बोला—"श्यामा, बिदा दो। रण-क्षेत्र में जा रहा हूँ।"

श्यामा के नेत्र छलछला उठे। वह गजराज के सैनिक-वेश को निहारती रही—निहारती रही, फिर धीरे से बोली—"जाओ गजराज!" और वह बिलख पड़ी।

"पगली!" गजराज ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"यदि जीवित रहा, तो फिर मिलूँगा।"

"ऐसी बात न निकालो।" श्यामा फफक पड़ी। हिचकियों से उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। उसने रुँधे गले से कहा—"गजराज, आज तक केवल तुम्हारा मुख देखकर जीवन बिता रही थी। तुम्हें शायद इस बात का ज्ञान न होगा कि यह अभागिनी श्यामा कुमारी नहीं, सुहागन है।"

"सुहागन?" गजराज ने चौंककर पूछा।

"हाँ गजराज।" श्यामा ने बिलखते हुए उत्तर दिया—"मरने से पूर्व मेरे पिताजी मेरा और तुम्हारा मंगल-परिणय करके दोनो को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे, किंतु उन्हें विश्वासघाती मलखान ने मार डाला। वे अपनी इच्छाएँ समेटे हुए चले गए। मैं अभागिन शेष रह गई। उसके बाद तुम्हारा विवाह सावित्री से हो गया। सावित्री संबंध में मेरी बहन है। मैं इसका विरोध न कर सकी, और छाती पर पत्थर रखकर उसके विवाह में सम्मिलित हुई। उसके बाद, केवल तुम्हारा मुख देखकर जीवित रहने के लिये, मैंने दुर्ग में नौकरी कर ली। आज तक तपस्या करती रही। किंतु दुर्भाग्य मेरे पीछे हाथ-धोकर पड़ा रहा। अब तुम भी मुझसे अलग हो रहे हो।" कहती वह गजराज से लिपट गई।

गजराज आश्चर्य में डूबता-उतराता खड़ा रहा। उसकी छाती

धधक रही थी। उसने नेत्रों में आँसू भरकर श्यामा को कंठ से लगा-कर कहा—"श्यामा, यह रहस्य मैं नहीं जानता था। मैं तुम्हें एक बहन की तरह मानता था। उसी रूप में सदा मानूँगा और इस समय भी यह आशा करूँगा कि तुम एक वीरांगना की भाँति मेरे माथे पर तिलक लगाओगी। शीघ्रता करो। सेना कूच के लिये तैयार है।"

श्यामा ने आँचल से आँसू पोछकर काँपते हाथ ऊपर उठाया। गजराज का माथा झुका। श्यामा से तिलक न लगाया गया। हाथ काँप उठे।

कूच का गोला दगा। सेना चल पड़ी।

श्यामा को एक बार आँखों में भरकर गजराज उछलकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। फिर उसने घूमकर पीछे की ओर नहीं देखा।

श्यामा आँखों में आँसू भरे खड़ी-खड़ी उसे एकटक देखती रही।

---

[३०]

कड़े के क़िले में अब नीरवता का साम्राज्य था । सेना, सरदार-सिपाही, शाह एवं सैयद साहब, सब के जाने के पश्चात् वहाँ शांति विराज रही थी । घर-आँगन, बाहर-भीतर चारो ओर सन्नाटा था। इस नीरवता एवं सन्नाटे में अब भी दो व्यक्ति ऐसे थे, जिनके हृदय में उथल-पुथल मची थी । एक तो थी सलमा, दूसरा था वह बूढ़ा साधु, जो गंगा-तट पर अब भी क़िले के नीचे धूनी रमाए बैठा था।

सेना के चले जाने के पश्चात् भी सलमा ने अपने कक्ष का द्वार न खोला, न खाना खाया । न पानी पिया। वह बाहर भी नहीं निकली, और सिर-दर्द का बहाना किए पड़ी रही। धीरे-धीरे दिन ढल गया। साँझ हुई । सलमा अपने विचारों में खोई-खोई-सी उठी। झरोखे पर आई। झाँककर देखा, तो वही बूढ़ा साधु पीपल के वृक्ष के नीचे धूनी रमाए बैठा है। सलमा ने झरोखे का द्वार बंद कर लिया। वह कक्ष के बाहर निकली। सदरुन खाना बना तथा कुछ गुनगुना रही थी। अम्मी आँगन में ही पड़ी कुछ सोच रही थीं । सलमा ने मुँह-हाथ धोए, फिर सदरुन से कहा—"सदरुन ! मेरे लिये खाना न बनाना। मैं न खाऊँगी।"

"क्यों बीबी !" सदरुन ने पूछा—"दोपहर में भी तो नहीं खाया।"

सलमा विना उत्तर दिए ही अपने कक्ष में चली गई । भीतर से उसने द्वार बंद कर लिया। बिस्तरा ठीक किया, फिर लेट रही। आज उसने दीपक भी न जलाया, कपड़े भी न बदले । वह चिंता-मग्न पड़ी-पड़ी सोच रही थी—

"......अब सेना डलमऊ के निकट पहुँच रही होगी।" न अभी पहुँचेगी, तो रात के पिछले प्रहर तक अवश्य पहुँच जायगी। वहाँ इस समय होली का त्योहार मनाया जा रहा होगा। ख़ूब आनंद से सब लोग ख़ुशियाँ मना रहे होंगे। रंग-अबीर, गुलाल, पिच-कारी, मीठे-मीठे पकवान में मस्त होंगे। उन बेचारों को क्या पता कि यह उनकी अंतिम होली है। ये लोग तैयारी से पहुँचेंगे। क़िले पर रात में ही हमला करेंगे। उनकी ख़ुशी लूट लेंगे। एक ओर होली जलेगी, दूसरी ओर गोले दगेंगे। वे बेचारे उसी में जल-भुनकर मर जायँगे। उनका रंग, गुलाल सब कुछ यों ही पड़ा रह जायगा।" सोचते-सोचते सलमा कल्पना-सागर में ग़ोते लगाने लगी।

धीरे-धीरे सलमा की चेतना विचारों में डूब गई। उसके कानों में गोलों की गरज सुनाई पड़ने लगी। क़िले की फटती हुई दीवारें, गिरते हुए कगार उसे दिखाई पड़ने लगे। भीषण चीत्कार उसके कानों में गूँज उठा। उसे ऐसा लगा, मानो स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान सभी चीत्कार कर रहे हैं। क़िला गिर रहा है। तोपें आग बरसा रही हैं। सब दब-दबकर मर रहे हैं। बड़े-बड़े कगार गंगा के जल में गिर-गिरकर लहरों को प्रकंपित कर रहे हैं। राजा डल........ आह! वही तो हैं—लहू-लुहान, घायल घोड़े पर सवार! वह शातिर बढ़ा जा रहा है। उसने तलवार से वार किया। वार ख़ाली गया। घोड़ा उछलकर बाहर निकला। शातिर ने पीछा किया। सामने से सैयद साहब ने उन्हें घेर लिया, और तलवार का वज्र-प्रहार करते हुए ललकारा—

"ले सलमा का डोला!"

सलमा अपने-आप चीख़ उठी।

उसने ओढ़नी के छोर से मुख ढक लिया। एक-एक दृश्य आँखों में नाच उठा। जैसे वह कोई भयानक स्वप्न देख रही हो। यह सब

किसके कारण ? उसने अपने-आप प्रश्न किया। "इसका कारण मैं स्वयं हूँ। उसने मेरे साथ छेड़ख़ानी की है, मगर सभ्यता के साथ। और ये ? तहज़ीब को बलाए-ताक़ रखकर उस पर रात में अचानक हमला करने गए हैं। उसने मुझे अपने चमन की कोयल बनाना चाहा था, मगर मौसम आने पर। और ये, बे-मौसम ही उसे मटियामेट करने गए हैं। एक राजा के साथ, और ऐसे राजा के साथ, जिसने भलमंसाहत के साथ अब तक सब कुछ किया, मेरे नाम पर छल करते रहे। विश्वासघात का जाल फेंकते रहे। वह बेचारा फँस गया न ? उसने सैयद साहब एवं शातिर पर नहीं, सलमा के नाम पर विश्वास किया है। सलमा की मुहब्बत पर विश्वास किया है। उसी विश्वास में वह बेचारा मारा जा रहा है।"

"ओह !" सलमा ने करवट बदली। दर्द से देह सिहर उठी।

"कितना भोला रूप था उसका ?" उसने सोचा—"और कितने मीठे शब्द थे ! मेरे नाराज़ होने पर भी उसने कितनी शांति के साथ कहा था 'सलमा ! तुम्हारे पुरखों ने पद्मिनी को जौहर में जलने को विवश किया। अरगल की रानी को बीच मेले में घेर लिया। यदि मैं चाहूँ, तो आज उसी का बदला ले सकता हूँ, मगर विश्वास रक्खो, मैं ऐसा न करूँगा।' कितना शरीफ़ था वह ! उस समय मैं अकेली थी। चाहता, तो हाथ पकड़कर घसीट ले जाता। मगर ऐसा करना एक राजा की शान के ख़िलाफ़ था। उसने अपनी शान नहीं बिगाड़ी। और ये............?" सलमा ने क्रोध से मुँह बनाया—"मेरे नाम पर उसे धोखा दे रहे हैं। यह शातिर ? पाऊँ, तो गला घोट दूँ बदमाश का ! मुझे इसने बदनाम कर डाला।"

सलमा उठकर बैठ गई। उसने दीपक जलाया। राजा डल का अंतिम पत्र निकाला। उसे एक बार पुनः पढ़कर चारपाई पर रख दिया। उसकी छाती में तूफ़ान उठ रहा था।

वह पुनः लेट गई, और आँखें बंद कर सोचने लगी—"गंगा के किनारे वह तंबू में चौकी पर बैठी है। बाल खुले हुए हैं। ओढ़नी नीचे पड़ा है। वह मस्ती के साथ पैर हिला-हिलाकर लहरों के साथ खेल रही है। उसी समय वह अचानक आता है, और उसके नाराज़ होने पर कहता है—'सलमा, गंगा के रेत में हुस्न नहीं, तरबूज़ पनपते हैं।' आज उसी की दुर्गति हो रही होगी। या अल्लाह! मैं क्या करूँ? कहाँ डूब मरूँ........।" उसकी आँखें छलछला उठीं। "कल जब ये लोग जीत का डंका बजाते हुए आएँगे, मुझे दुनिया क्या कहेगी? यही न कि एक लड़की की मुहब्बत के पीछे एक राजा बर्बाद कर दिया गया। और, वह लड़की मैं हूँ! शरीफ़ आदमी मेरा मुख देखना पसंद न करेंगे। इतनी ख़ून-ख़राबी, इतना बड़ा विश्वासघात! इतने बड़े राजा की हत्यारिन मैं हूँ! मैं हूँ!! मैं हूँ!!!" सलमा ने क्रोध में अपने बाल नोच डाले। अपने हाथों से अपना मुख पीट डाला। वह उठकर बैठ गई।

"कल मैं अपना काला मुख किसे दिखाऊँगी? सारी दुनिया मेरी ओर उँगली उठाएगी। तब?"

हे दरिया-ए-गंगा, तुम मुझे अपनी गोद में ले लो! सुबह होने के पहले ही मैं इस संसार को छोड़ देना चाहती हूँ। मैं अब जीना नहीं चाहती। यह काला मुख लेकर कहाँ रहूँगी?" सलमा बिलख पड़ी। उसका मस्तिष्क चेतना-हीन होने लगा।

"अल्लाह!" उसने एक बार ऊपर की ओर देखा, फिर कहा—"मेरे मौला! मेरी लाज रखना।" और वह अस्त-व्यस्त पागलों-जैसी कक्ष में टहलने लगी। उसे फिर तोपों की गरज सुनाई पड़ने लगी, चीत्कार कानों में गूँज उठा। उसने हथेली से कसकर कान बंद कर लिए। उसे ऐसा लगा, मानो राजा डल का सिर उसके पैरों-तले पड़ा है। ख़ून की धार बह रही है, और वह

कह रहा है—"सलमा, लो। मना लो मेरी क़ब्र पर ईद! अब ख़ुश हो ?"

सलमा से अब न रहा गया। उसने धीरे से द्वार खोला। चारो ओर सन्नाटा था। अम्मी अपने कक्ष में थीं। सदरुन पड़ी सो रही थी। पहरे का सिपाही कहीं दूर पर चिल्ला रहा था। उसने हाथ में कटार उठाई। उसे परखा, और फिर अपनी कंचुकी में छुपा ली। धीरे-से कक्ष का द्वार खोलकर वह बाहर निकली। खिड़का से क़िले को पार किया। एक बार पीछे की ओर निहारा। छाती धड़क रही थी। पैर काँप रहे थे। वह आगे बढ़ी। सामने गंगा की तेज़ धारा बह रही थी। उसने ईश्वर का नाम लिया, और टीले से गंगा के जल की ओर झपटी—डूब मरने के लिये।

बूढ़ा साधु, जो निकट ही धूनी रमाए बैठा था, चौंक पड़ा। उसने झपटकर सलमा को पकड़ लिया।

"मुझे छोड़ दो।" सलमा चिल्लाई—"मैं पापिनि हूँ! कलंकिनी हूँ।........आज मेरे कारण राजा डल मर रहा है। बेचारा होली के दिन! आह!........छोड़........दो।"

"राजा डल ?" साधु चौंक पड़ा। उसने सलमा का हाथ पकड़कर पीछे की ओर खींच लिया। सलमा तट पर आ गई, और हाथ छुड़ाकर डलमऊ की ओर भागी। साधु से न रहा गया। उसने उसका पीछा किया। काली अँधेरी रात, ऊबड़-खाबड़ रास्ता। सलमा आगे-आगे भागी चली जा रही थी, साधु पीछे-पीछे था।

"यह आगे कहीं डूब मरेगी ?" साधु ने सोचा।

"लौट जाओ !" सलमा चिल्लाई—"मुझे अकेली ही मरने दो। मैं हमदर्दी के क़ाबिल नहीं।"

बूढ़ा साधु कुछ बोला नहीं। वह सलमा का पीछा करता रहा। सलमा दौड़ती रही। दौड़ते-दौड़ते उसकी साँस फूल आई। पाँव

थक गए। अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए। शरीर पसीने से भीग गया। आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। वह बेहोश होकर एक चट्टान से टकराकर गिर पड़ी। उसका सिर फट गया। रक्त की धार बह निकली। वह बेसुध पड़ी रही। कराहती रही। साँस तेज़ी से फूल रही थी। साधु, आँखों में आँसू-भरे, रात के सन्नाटे में अपना वस्त्र फाड़-फाड़कर उसके सिर पर पट्टी बाँधता रहा। गंगा हरहराती हुई बह रही थीं। रात ख़ामोश थी, और सितारे जाग रहे थे।

शाह इब्राहीम शर्की के पीछे-पीछे उनका बड़ा लड़का मुहम्मद शाह, एक सेना लिए, शाह के सहयोग के लिये डलमऊ की ओर बढ़ा जा रहा था। उसके साथ उसका छोटा भाई हुसेन शाह भी था। जब वह अपनी सेना-समेत ककोरन ग्राम के निकट पहुँचा, तो महाराज डल के छोटे भाई ककोर ने उसे घेर लिया। सुदामापुर * ग्राम के निकट दोनो में भीषण संग्राम हुआ। ककोर की सेना शाह के समक्ष न ठहर सकी, और वह सेना-समेत वहीं वीर गति को प्राप्त हुआ! शाही सेना पुनः डलमऊ की ओर चली।

इधर क़िले की सुरंग में बारूद भर चुकने के बाद शाह शर्की ने अपनी सेनाओं को दूर हटा दिया, और बाहर से उसी सुरंग पर गोलाबारी करने लगे। बारूद में आग लगी। संपूर्ण क़िला कंपायमान हो गया। एक भीषण धड़ाके के साथ समस्त क़िला कसमसाकर बैठ गया। मदिरा की नाँदें, घड़े, सुराहियों की धज्जियाँ उड़-उड़कर आकाश में छा गईं। सहस्रों व्यक्ति उसी में दबकर रह गए। किसी का सिर ऊपर उछला, तो किसी का धड़! किसी का हाथ, तो किसी का पैर। पेड़ों की पत्तियाँ झुलस गईं। पक्षी तड़-फड़ा कर रह गए।

"या अली!" शाह की सेना ने निनाद किया।

शाह के आदेश पर यवन-सेना क़िले में भीषण गोलाबारी

*यह स्थान डलमऊ से पूर्व की ओर लगभग १४ मील की दूरी पर है।

करती हुई धँस पड़ी। क़िले की दीवारें गोलों की धमक से फट-फट-कर गिरने लगीं। शाह की सेना घोर निनाद करती हुई आगे बढ़ी। महाराज डल अपने घोड़े-समेत पश्चिम की खाईं पार करके ऊपर चढ़े। वह पहले ही उस पार निकल गए थे। सेना, सेनापति, पुरजन, नौकर-चाकर सभी दबकर मर गए। जो जीवित बचे थे, प्राण बचाकर इधर-उधर भागने लगे। कंचुकी और सावित्री अन्य रानियों-समेत अंतःपुर की सुरंग में पहुँच गईं।

"हर-हर महादेव!" की गर्जना हुई।

"महाराज डल की जय!" का स्वर गूँज उठा।

शाह की सेना चौंक पड़ी। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा, तो सहस्रों अश्वारोही बढ़े चले आ रहे थे। शाही सेना क़िले में घुसने के बजाय एकबारगी लौट पड़ी। शाह ने सबको सतर्क किया। तोपों का मुख घुमा दिया गया। बात-की-बात में छोटे राजा की सेना शाही फ़ौज से भिड़ गई। छोटे राजा ने शाह को ललकारा। शाह आगे बढ़े। पीछे से महाराज, प्राण हथेली पर रखकर, शाह की ओर झपटे। उसी समय शातिर ने छोटे राजा पर वार किया। महाराज ने शातिर को भाले का निशाना बनाया। वह घायल होकर गिर पड़ा। उसका घोड़ा एक ओर भाग निकला। मृतप्राय शातिर को सैयद साहब ने उठा लिया।

थोड़ी ही देर में रणचंडी का प्रलय-नर्तन होने लगा। घुड़सवार, घुड़सवारों से भिड़ गए। पैदल पैदल के साथ जूझ पड़े। जो जिसे पाता, हलाल करके रख देता। "हर-हर महादेव!" एवं "अल्ला हो अकबर!" के घोषों से धरती कंपायमान हो रही थी। किसी को कुछ भी न सूझ पड़ रहा था। चारो ओर रक्त की धार बह रही थी। रुंड-मुंड कट-कटकर धरती पर लोट रहे थे। घायल पड़े कराह रहे थे। रक्त से गलियाँ भर गईं थीं। गंगा का जल लाल पड़

गया था। सभी एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे थे। रणचंडी का खप्पर मानो अभी भरा न था। तोपें आग बरसाते-बरसाते लाल पड़ गई थीं। जवानों के हाथ तलवार चलाते-चलाते थक गए थे। घोड़े लाशों को रौंदते-रौंदते शिथिल हो गए थे। चहुँ ओर आग बरस रही थी। ख़ून बह रहा था। घायल उठ-उठकर फिर लड़ने का असफल प्रयत्न कर रहे थे। अपना-पराया कुछ भी न सूझता था। यवन सेना-अपरंपार थी। भार शिव संख्या में बहुत कम थे। फिर भी किसी को मक्का-मदीना याद आ रहा था, तो किसी को प्रयाग और काशी।

"हर-हर महादेव!" की जय-घोष एक बार फिर गूँज उठा। भार शिवों की सेना प्राण हथेली पर लेकर टूट पड़ी।

"या अली!" शाह की सेना ने निनाद किया।

"जय मात गंगे!" दूसरी ओर से आवाज़ आई। भार शिवों की सेना में एक तूफ़ान-सा उठा। वह यवनों के बीच में समा गई। क़िले की गिरती दीवारें देख-देखकर उनका उत्साह हज़ार गुना बढ़ रहा था। वे रक्त के प्यासे हो रहे थे। आज उनके वंश की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उनके राजा की मर्यादा का प्रश्न था। वे भूखे शेरों की तरह झपट रहे थे। भाले के एक-एक झटके में तीन-तीन लाशें गिरा रहे थे। छोटे राजा और महाराज दौड़-दौड़कर सबको उत्साहित कर रहे थे। मा के दूध की शपथ दिला रहे थे। गंगा एवं शिव का स्मरण करा रहे थे, और स्वयं ख़ून से लथपथ दोनो हाथों से तलवार चला रहे थे।

"शाबाश गजराज!" छोटे राजा ने ललकारा।

गजराज और शाह शर्की के सेनापति की भिड़ंत थी। सेनापति ज़ाहिदअली ने गजराज पर एक भरपूर वार किया। गजराज का घोड़ा रामू उछल गया। वार ख़ाली गया। घोड़ा चौकड़ी भरक

पुनः पूर्व-स्थिति में आ गया। ज़ाहिदअली ने भाला उठाया। गजराज ने रामू को ऐड़ लगाई। घोड़ा उछलकर ज़ाहिद की छाती पर सवार हो गया। गजराज ने तलवार का करारा वार किया। तलवार ज़ाहिद की कलाई चीरकर निकल गई। भाला धरती पर गिर पड़ा।

"ख़बरदार!" शातिर ने गजराज को ललकारा। गजराज ने अपने भाले से ज़ाहिदअली की छाती पर वार किया। वह "या अली!" कहकर धराशायी हो गया। गजराज का भाला शातिर की ओर बढ़ा। शातिर प्राण बचाकर भागा। उधर शाह साहब और महाराज भिड़े हुए थे। दोनो में ख़ूब दाँव-पेच चल रहे थे। दोनो पक्के खिलाड़ी थे। दोनो के शरीर क्रोध से काँप रहे थे। पीछे से सैयद साहब ललकारते हुए बढ़े चले आ रहे थे। छोटे राजा उनकी ओर लपके। दोनो आपस में भिड़ गए, और प्राण होम कर लड़ने लगे।

"या अली!" शातिर चिल्लाया, और उसने झपटकर छोटे राजा की पीठ में भाला मारा। छोटे राजा डगमगा उठे। उनकी पीठ से ख़ून की मोटी धार फूट निकली। उन्होंने पलटकर शातिर पर वार किया। शातिर ने घोड़ा मोड़ दिया। भाला घोड़े की पीठ में धँस गया। घोड़ा शातिर को लिए धराशायी हो गया। शातिर घोड़े को छोड़, प्राण बचाकर भाग निकला। छोटे राजा ने बिना अपने घाव की परवा किए उसका पीछा किया। यह देखकर सैयद साहब पीछे से झपटे और उन्होंने छोटे राजा पर तलवार का प्रहार किया। घायल छोटे राजा उस प्रहार से डगमगा कर गिर पड़े।

महाराज ने अपनी आँखों से छोटे राजा को गिरते हुए देखा। उनका क्रोध चौगुना बढ़ गया। वह बाज़ की भाँति सैयद की ओर झपटे। सैयद पीठ दिखाकर भाग निकला। महाराज ने उसी क्रोध

में भाला चलाना प्रारंभ किया। जो सामने पड़ा, उसी को मौत के घाट उतार दिया। घोड़ा हिरन की तरह चौकड़ी भर रहा था। महाराज घमासान युद्ध कर रहे थे। शाह शर्की की सेना दहल उठी। महाराज जिधर झपटते, उधर ही मैदान साफ़ हो जाता। वह शाह की ओर पुनः झपटे। शाह घोड़े-समेत भागे। सेना भी पीछे-पीछे भागी। 'हर-हर महादेव की जय!' सर्वत्र गूँज उठी।

महाराज का अपूर्व साहस देखकर यवन-सेना के पैर उखड़ गए। भार शिवों ने सेना का पीछा किया। उसी समय शाह शर्की का लड़का मुहम्मदशाह अपनी सेना-सहित आ पहुँचा। यवन-सेना को पुनःबल मिला। वह लौट पड़ी। एक विचित्र ही दृश्य उपस्थित हो गया। यवनों की दूसरी सेना देखकर भार शिवों का उत्साह फीका पड़ गया। फिर भी वे प्राणोत्सर्ग कर लड़े जा रहे थे। दोनो सेनाएँ पुनः एक दूसरी पर टूट पड़ीं। हाहाकार मच गया। घायलों की कराह, तोपों की गरज, 'हर-हर महादेव!' एवं 'अल्ला हो अकबर' के जय घोषों के बीच महाराज आगे बढ़े। वह शाह शर्की पर दाँत लगाए थे।

महाराज को शाह की ओर झपटते देख, गजराज सैयद साहब की ओर बढ़ा। वह भाला तानकर सैयद साहब के प्राण लेना ही चाहता था कि एक सनसनाता हुआ गोला गजराज का पेट चीरता हुआ निकल गया। उसका मृत शरीर घोड़े की पीठ पर लटक गया। घोड़ा हिनहिनाता हुआ भाग चला। शातिर ने उसका पीछा किया। मगर घोड़ा हवा हो गया था। वह मालिक को लिए युद्ध-स्थल से बाहर की ओर सरपट भागा। थोड़ी दूर ही चला होगा, घोड़े से मृत शरीर गिर पड़ा। घोड़ा कान उठाकर हिनहिनाता हुआ गजराज की लाश के चारो ओर चक्कर लगाने लगा।

अब महाराज नितांत अकेले थे। थोड़े से सैनिकों की शक्ति पर

वह शाह की ओर झपटे। उनकी महान् आत्मशक्ति जाग उठी थी। शरीर लाल था, मुख लाल था, आँखें लाल थीं, तलवार लाल थी और भाले की नोक भी लाल थी। वह महाकाल भैरों-से प्रतीत हो रहे थे। उनका घोड़ा ख़ून और पसीने से लथपथ था। वह बाज़ की तरह शाह को दबोचने के लिये झपटे। शाह के माथे पर पसीना आ गया। वह प्राण बचाकर भागा। उसी समय सैयद ने महाराज को ललकारा—"ले सलमा का डोला!"

सैयद के इन शब्दों को सुनते ही महाराज की आँखों में ख़ून उतर आया। वह सैयद की ओर मुड़े। सैयद प्राण बचाकर भागा। शाह भी भागा। यवन-सेना में फिर भगदड़ मच गई। 'हर-हर महादेव की जय!' गूँजी। भार शिवों की सेना आगे बढ़ी। महाराज पूरी शक्ति से शाह की ओर पुनः बढ़े, किंतु वह भागता ही चला जा रहा था। महाराज पीछा कर रहे थे। यवन-सेना भागती हुई युद्ध-स्थल से पखरौली तक चली आई। लगभग दो मील की दूरी तक भागने के बाद यवन-सेना पुनः रुकी और वहीं पखरौली के मैदान में खुलकर युद्ध होने लगा।

"या अली" और "अल्ला हो अकबर!" के नारों से पुनः दिशाएँ गूँज उठीं। यवनों का साहस बढ़ा। शाह, शातिर एवं सैयद तीनो ने मिलकर महाराज को घेर लिया। उन पर चारो ओर से वार होने लगे। महाराज पूरी शक्ति से लड़ रहे थे। उन पर अस्त्रों की बौछार हो रही थी। वह पीछे की ओर मुड़कर वार करते, तो सामने सैयद प्रहार करता। सैयद पर झपटते, तो शाह का भाला उनकी पीठ में धँस जाता। महाराज से अब न सहा गया। अंत निकट था। उन्होंने दोनो हाथों से तलवार चलाना प्रारंभ किया। वह प्राणों पर खेलने लगे। महाराज के इस रण-कौशल पर सभी काँप उठे। तीनो सेनानी घायल हो चुके थे। सबके होश उड़ चुके

थे। तीनो को प्राण बचाना दूभर हो रहा था। उसी समय तीनो ने एक साथ महाराज पर आक्रमण किया। शाह के दोनो लड़के भी आ धमके। तीन के स्थान पर अब पाँच हो गए थे। महाराज पुनः दूने आवेश से उनकी ओर झपटे। उनका झपटना ही था कि शातिर की तलवार उनके पेट में धँस गई। वह लड़खड़ा उठे। तब तक सैयद ने एक झटका दिया। वह सँभल भी न पाए थे कि शाह ने उनकी पीठ में भाला मारा। महाराज लड़खड़ाकर गिर पड़े।

तीन दिनों के घमासान युद्ध के बाद मैदान शाह के हाथ लगा। सभी प्रसन्नता से उछल पड़े। "या अली, अल्ला हो अकबर" का जयघोष वायु-मंडल में गूँज उठा। शाही सेना ने विजय का डंका बजाया। बचे हुए सैनिक प्रसन्नता से एक-दूसरे से गले मिलने लगे। शाह की जय-जयकार हुई। गोले छूटे, और विजय-ध्वज फहरा उठा।

शातिर ने घोड़े से उतरकर महाराज का सिर अपनी तलवार से काट लिया। उसे भाले की नोक पर टाँगकर वह क़िले की ओर चला। आगे-आगे भाले पर सिर लिए शातिर, पीछे-पीछे शाह शर्की एवं अन्य सरदार तथा सैनिक। शाह का झंडा लहरा रहा था। जय-जयकार हो रही थी। क़दम-क़दम पर गोले छूट रहे थे। महाराज के सिर से एक-एक बूँद ख़ून टपक रहा था, जिसे देखकर मुस्किराता हुआ शातिर बोला—"यह ख़ून नहीं, सलमा की मुहब्बत टपक रही है।"

महाराज की पराजय का समाचार क़िले में पहुँचा। रनिवास में हाहाकार मच गया। सर्वस्व लुट चुका था। यवनों के अत्याचारों के भय से रानियाँ काँप उठीं, और यवन-सेना के दुर्ग में प्रवेश करने के पूर्व ही वे अपनी परिचारिकाओं-सहित जीवित जल मरीं। कंचुकी ने, मरने से पूर्व, सावित्री के बच्चे के हाथ में भोज-पत्र के एक

छोटे-से टुकड़े पर कुछ लिखकर बाँध दिया। बच्चे को दोनो ने प्यार किया, और फिर उसे सुरंग में छिपाकर, दोनो भीगे नयनों से जौहर में जल मरीं। चिताएँ धधक उठीं, और उन्हीं लपटों में संपूर्ण रनिवास समा गया।

दिन ढल चुका था। संध्या हो रही थी। दिन के साथ-साथ दिन-मान भी डूब चुका था। केवल सलमा-जैसी कुमुदिनी का राजा डल-जैसे सूर्य की लाश पर मुस्काना शेष था। शाही सेना उसी प्रकार घोर निनाद करती हुई, क़िले में घुसी। ध्वंस क़िला बिखरा पड़ा था। हज़ारों लाशें दीवारों के नीचे दबी पड़ी थीं। शराब की नाँदें, सुराहियाँ, घट—सब चकनाचूर हो गए थे*। ख़ून, रंग, गुलाल एवं अबीर से क़िले की धरती का कण-कण लाल था, जिसकी पहचान करना कठिन था कि कहाँ रंग है और कहाँ ख़ून!

शाह शर्की की सेना महाराज की सिर लिए हुए क़िले को लूटने लगी। जब वह लूटते-लूटते राजमहल में पहुँची, तो देखा, चिताएँ धधक रही थीं। लपटें उठ रही थीं, और जलते हुए मानव-अवयवों की गंध सर्वत्र छा रही थी। शाह यह दृश्य देखकर स्तंभित रह गए। उनकी सेना राजकोष, राजमहल एवं दुर्ग को लूट-लूटकर अपार धन-संपत्ति तट पर खड़ी नावों में भर रही थी।

शाह कुछ क्षण तक खड़े-खड़े चिताओं को देखते रहे। आगे बढ़ने की उनकी हिम्मत न पड़ी। वह दृश्य उनसे देखा न जा रहा था। वह लौट पड़े। डलमऊ के दुर्ग की लूट का सामान सैयद साहब को सौंपकर शाह अपने पुत्रों-सहित रायबरेली का क़िला लूटने के

---

* क़िले में आज भी इन नाँदों एवं सुराहियों के टुकड़े गड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो समूची नाँदें भी दृष्टिगोचर होती हैं। इन टुकड़ों के कुछ भग्नावशेष आज 'द्विवेदी' स्मारक-भवन' के संग्रहालय में 'विनाश के प्याले'-शीर्षक से संगृहीत हैं।

लिए रातोरात चल पड़े। सैयद साहब, शातिर एवं कुछ थोड़े-से सिपाही शेष रहे।

सब लोग जब क़िले का सामान लूटकर नीचे उतर रहे थे, तो साँझ हो रही थी। किंतु आज की साँझ कुछ विचित्र-सी थी। न तो पक्षी बोल रहे थे, और न वृक्षों की डालियाँ ही झूम रही थीं। पवन का चलना बंद हो गया था। लताएँ—स्तंभित थीं। गंगा का प्रवाह मंद था, तथा कल-कल-निनाद भी नहीं हो रहा था। आज गंगा के जल में न तो किनारे पर मछलियाँ ही उछल रही थीं और न कछारों से रँभाती हुई गायों का स्वर ही आ रहा था। मंदिरों के घंटे मौन थे। आज डलमऊ में कोई दीपक जलानेवाला न था। संपूर्ण नगर श्मशान बन गया था। उस भयानक सन्नाटे में, उस डरावनी संध्या में उन भयावनी पगडंडियों पर पड़ी लाशों को रौंदता हुआ शातिर भाले की नोक पर महाराज का सिर लिए हुए, क़िले से उतर रहा था।

वह इसे सलमा को उपहार-स्वरूप भेंट करेगा। पीछे-पीछे सैयद थे और कुछ सैनिक! सभी मौन, शिथिल एवं प्रकंपित!

संध्या सायँ-सायँ कर रही थी। गंगा की लहरें कुछ डूबते हुए सूर्य की लाली से तथा कुछ रक्त से लाल होकर धीरे-धीरे एक दूसरी को ढकेल रही थीं।

---

[३२]

संध्या के उस भयानक झुटपुटे में, क़िले से उतरकर शातिर थोड़ी ही दूर चला होगा कि उसे सामने से आती हुई एक काली छाया-सी दिखाई पड़ी। शातिर चौंका। वह उसे ध्यान से देखने लगा।

छाया अंधकार में झपटती हुई चली आ रही थी। वह अचानक शातिर से आकर भिड़ गई। शातिर ने उसे एक झटका दिया। छाया उछल पड़ी, और शातिर के कलेजे में कटार उतर गई। शातिर चीख़ पड़ा और लड़खड़ाकर वहीं गिर गया। जब तक सैयद साहब और सैनिक आगे बढ़ें, छाया शातिर के हाथ से भाला और राजा डल का सिर छीनकर भाग चली।

सैयद के सैनिकों ने उसका पीछा किया। वह भागती रही—भागती रही। सैनिक उसका पीछा करते रहे।

जब सैनिक उसके एकदम निकट आ गए, वह भाला फेंककर, सिर को छाती से चिपटाए, एक चीख़ के साथ, गंगा के प्रवाह में कूद पड़ी, और लहरों में डूबने-उतराने लगी। सैनिकों ने लपककर उसे पकड़ा, और घसीटकर तट पर लाए। किनारे तक आते ही वह बेहोश हो गई। सिर अब भी उसकी छाती में मज़बूती से चिपटा था। उसके पेट में कटार का एक ताज़ा घाव था। गंगा में कूदते समय उसने कटार अपने पेट में भोंक ली थी।

घाव से रक्त बह रहा था। सिर से भी ख़ून टपक रहा था। दोनो के रक्त एक-दूसरे से मिलकर गंगा के जल को पवित्र कर रहे थे।

"कोई औरत है!" सैनिक चिल्लाए।

"मारो हरामज़ादी को!" सैयद ने झपटते हुए क्रोध से कहा।

अब तक काफ़ी अँधेरा हो चुका था। मुखाकृति पहचानी नहीं जा सकती थी। सैयद साहब निकट आकर रुके। क्रोध से उनका शरीर काँप रहा था।

मशाल जलाई गई। प्रकाश हुआ। सैयद साहब उस छाया की ओर बढ़े, और उसे देखते ही बेहोश-से होकर गिर पड़े। उनके मुख से केवल एक चीख़ निकली, और अंधकार में समा गई। सम्मुख खड़े सैनिक सिहर उठे।

वह 'सलमा' थी।

सैयद साहब ने अपने को संयत करते हुए सलमा के सीने पर हाथ रक्खा। हृदय-गति मंद-मंद चल रही थी। सैयद साहब रो उठे। उन्होंने भर्राए स्वर में कहा—"सलमा बेटी! काश, मैं जानता कि तेरी मुहब्बत पाक है, तो मैं यह सब न करता..................!"

उन्होंने एक हृदय-बिदारक चीत्कार की। उनका कंठ अवरुद्ध हो चुका था। आँखों से आँसू बह-बहकर सलमा के रक्त की धारा से मिल रहे थे। सैयद सलमा के बालों पर हाथ फेरने लगे। उनके मुख से बोल नहीं फूट रहा था।

पिता के हाथों का स्नेह पाकर सलमा की आँखें खुलीं, उसने धीरे से कहा—"अब्बा!"

"हाँ बेटी!" सैयद साहब ने अस्फुट स्वर में कहा।

"वह देखो!" सलमा की उँगली ऊपर उठी—"चाँद निकल रहा है!"

सैयद साहब ने आकाश की ओर देखा।

चाँद निकल रहा था।

सलमा बोली—"अब्बा! यह चाँद निकल रहा है। और, फिर निकलेगा। मगर........मुझे ईद के चाँद की मुबारकबाद देनेवाला राजा डल फिर न मिलेगा! और न उसकी क़ब्र पर ईद मनानेवाली सलमा ही संसार में रहेगी........। अलविदा!

उपसंहार

बूढ़ा साधु आँखों में आँसू-भरे कुछ दूरी पर खड़ा सब कुछ देखता रहा। वह धीरे-धीरे क़िले की ओर बढ़ा। रात काफ़ी हो गई थी। लाशों पर चाँद अपनी चाँदनी का क़फ़न डाल रहा था। गीदड़ों के झुंड आपस में लड़-लड़कर लाशों पर टूट रहे थे। बूढ़ा साधु ध्वंस क़िले पर माथा टेककर बैठ गया।

और बैठा-बैठा आँसू बहाता रहा। सामने चिताओं की गर्म राख पड़ी थी। थोड़ी देर बाद वह उठा, और फूटे हुए कलश का एक टुकड़ा लेकर उसने अपनी झोली से बत्ती निकाली। क़िले में अंतिम बार दीपक जलाया। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर वहीं सिर झुकाकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद ही अचानक किसी बच्चे के रोने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। वह चौंक उठा। इधर-उधर देखने लगा।

बच्चा रोता रहा। साधु उठकर खड़ा हो गया। वह आवाज़ की ओर बढ़ा। रोने की आवाज़ फिर कानों में पड़ी। वह एक ओर मुड़ गया। सामने सुरंग का अँधेरा मुख था। साधु ने दीपक हाथ में लिया, और डरते-डरते सुरंग के भीतर प्रवेश किया। ख़ंदक में एक छोटा-सा बच्चा अपने दाहने पैर का अँगूठा चूस रहा था। साधु ने बच्चे को गोद में उठा लिया, और बाहर लाया। दीपक के प्रकाश में देखा। बच्चे की भुजा में एक भोज-पत्र बँधा था। उसमें कुछ लिखा था। साधु पढ़ने लगा—

"मेरे अपरिचित माता-पिताओ!

यह तीन महीने का छोटा-सा शिशु, महाराज उजालक के वंश की कन्या, सावित्री का पुत्र है। मैं इसे, भार शिवों के राजा डल की अर्धांगिनी होने के नाते, उनके राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करती हूँ। यह बच्चा, जिस किसी भी अपरिचित शत्रु-मित्र, भाई-बहन अथवा माता-पिता के हाथ लगे, मेरे इस 'राजकलश' की रक्षा करे तथा इस बच्चे को पानेवाला व्यक्ति सुरंग में वंश-वृक्ष के ताम्र-पत्र पर संरक्षक के स्थान पर अपना नाम अंकित कर दे। मैं स्वर्ग में भी उसकी मंगल-कामना करूँगी।

शुभाकांक्षिणी

—कंचुकी रानी"

बूढ़े साधु की आँखों से अजस्र जल-धारा बहने लगी। उसने सुरंग के ख़ंदक से ताम्र-पत्र निकाला, और उसमें 'राजकलश' के संरक्षक-स्वरूप अपना नाम लिख दिया—"रेवंत।"

प्रभात होने के पूर्व ही वह बच्चे को लेकर अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा।

गंगा की लहरें हाहाकार कर रही थीं। क़िले में चिताओं की गर्म राख धधक रही थी। रेवंत, राजकलश को छाती से लगाए, चला जा रहा था।
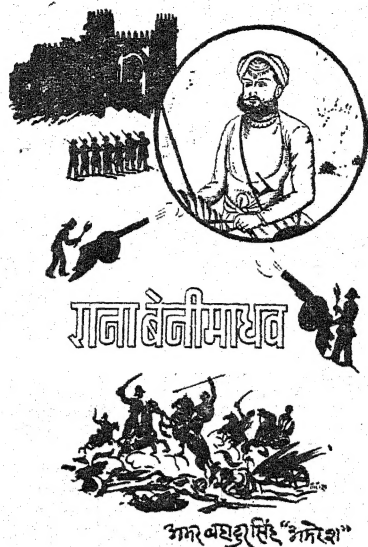
हमारे कतिपय ऐतिहासिक चरितोपन्यास

चंद्रगुप्त मौर्य— ले० मिश्रबंधु। इतिहास-प्रसिद्ध मौर्य-वंश के प्रवर्तक सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, जिनकी वीरता और दूरदर्शिता ने रोम-साम्राज्य के पाँव भारत पर न जमने दिए, का जीवन-चरित रोचक उपन्यास के रूप में। मूल्य ३॥)

विक्रमादित्य— ले० मिश्रबंधु। अतीव रोचक उपन्यास, जिसमें विक्रम-संवत् के जनक सम्राट् विक्रमादित्य की न्याय-प्रियता, कला-प्रियता एवं आदर्श शासन-व्यवस्था का अत्यंत रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। मूल्य ४॥)

उदयन— ले० मिश्रबंधु। इतिहास-प्रसिद्ध महाराज उदयन के अदम्य त्याग, शौर्य एवं सात्विक प्रणय का मनोहारी कथानक। मूल्य ४॥)

नूरजहाँ— ले० पं० गोविंदवल्लभ पंत। मुग़ल-सम्राज्ञी नूरजहाँ क्या सम्राट् जहाँगीर की प्रेयसी-मात्र ही थी? नूरजहाँ एक आदर्श नारी थी। वह वीर, दूरदर्शी, कुशल राजनीतिज्ञ एवं शासक थी। प्रस्तुत उपन्यास में आपको इसका आभास रोचक शैली में मिलेगा। मूल्य ४)

अमिताभ— अमित आभा-युक्त भगवान् गौतम बुद्ध का जीवन-चरित्र रोचक उपन्यास के रूप में। मूल्य २॥)